सूर्यकुमारी-पुस्तकमाला—१५

अकबरी दरबार

तीसरा भाग

अनुवादक

रामचंद्र वर्म्मा

प्रकाशक

नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी

संवत् १९९२]

परिचय

जयपुर राज्य के शेखावाटी प्रांत में खेतड़ी राज्य है। वहाँ के राजा श्रीअजीतसिंहजी बहादुर बड़े यशस्वी और विद्याप्रेमी हुए। गणित शास्त्र में उनकी अद्भुत गति थी। विज्ञान उन्हें बहुत प्रिय था। राजनीति में वह दक्ष और गुणग्राहिता में अद्वितीय थे। दर्शन और अध्यात्म की रुचि उन्हें इतनी थी कि विलायत जाने के पहले और पीछे स्वामी विवेकानंद उनके यहाँ महीनों रहे। स्वामीजी से घंटों शास्त्र-चर्चा हुआ करती। राजपूताने में प्रसिद्ध है कि जयपुर के पुण्यश्लोक महाराज श्रीरामसिंहजी को छोड़कर ऐसी सर्वतोमुख प्रतिभा राजा श्रीअजीतसिंहजी ही में दिखाई दी।

राजा श्रीअजीतसिंहजी की रानी आउआ (मारवाड़) चाँपावतजी के गर्भ से तीन संतति हुईं—दो कन्या, एक पुत्र। ज्येष्ठ कन्या श्रीमती सूरजकुँवर थीं जिनका विवाह शाहपुरा के राजाधिराज सर श्री नाहरसिंहजी के ज्येष्ठ चिरंजीव और युवराज राजकुमार श्रीउमेदसिंहजी से हुआ। छोटी कन्या श्रीमती चाँदकुँवर का विवाह प्रतापगढ़ के महारावल साहब के युवराज महाराजकुमार श्रीमानसिंहजी से हुआ। तीसरी संतान जयसिंहजी थे जो राजा श्रीअजीतसिंहजी और रानी चाँपावतजी के स्वर्गवास के पीछे खेतड़ी के राजा हुए।

इन तीनों के शुभचिंतकों के लिये तीनों की स्मृति, संचित कर्मों के परिणाम से, दुःखमय हुई। जयसिंहजी का स्वर्गवास सत्रह वर्ष की अवस्था में हुआ। सारी प्रजा, सब शुभचिंतक, संबंधी, मित्र और गुरुजनों का हृदय आज भी उस आँच से जल ही रहा है। अश्वत्थामा के व्रण की तरह यह घाव कभी भरने का नहीं। ऐसे आशामय जीवन का ऐसा निराशात्मक परिणाम कदाचित् ही हुआ हो। श्री सूरजकुँवर बाई जी को एक मात्र भाई के वियोग की ऐसी ठेस लगी कि दो ही तीन वर्ष में उनका शरीरांत हुआ। श्रीचाँदकुँवर बाईजी को वैधव्य की विषम यातना भोगनी पड़ी और भ्रातृवियोग और पति-वियोग दोनों का

असह्य दुःख वे झेल रही हैं। उनके एकमात्र चिरंजीव प्रतापगढ़ के कुँवर श्रीरामसिंहजी से मातामह राजा श्रीअजीतसिंहजी का कुल प्रजावान् है।

श्रीमती सूर्यकुमारीजी के कोई संतति जीवित न रही। उनके बहुत आग्रह करने पर भी राजकुमार श्रीउमेदसिंहजी ने उनके जीवन-काल में दूसरा विवाह नहीं किया। किंतु उनके वियोग के पीछे, उनके आज्ञानुसार, कृष्णगढ़ में विवाह किया जिससे उनके चिरंजीव वंशांकुर विद्यमान हैं।

श्रीमती सूर्यकुमारीजी बहुत शिक्षिता थीं। उनका अध्ययन बहुत विस्तृत था। उनका हिंदी का पुस्तकालय परिपूर्ण था। हिंदी इतनी अच्छी लिखती थीं और अक्षर इतने सुंदर होते थे कि देखनेवाले चमत्कृत रह जाते। स्वर्गवास के कुछ समय के पूर्व श्रीमती ने कहा था कि स्वामी विवेकानंदजी के सब ग्रंथों, व्याख्यानों और लेखों का प्रामाणिक हिंदी अनुवाद मैं छपवाऊँगी। बाल्यकाल से ही स्वामीजी के लेखों और अध्यात्म विशेषतः अद्वैत वेदांत की ओर श्रीमती की रुचि थी। श्रीमती के निर्देशानुसार इसका कार्यक्रम बाँधा गया। साथ ही श्रीमती ने यह इच्छा प्रकट की कि इस संबंध में हिंदी में उत्तमोत्तम ग्रंथों के प्रकाशन के लिये एक अक्षय निधि की व्यवस्था का भी सूत्रपात हो जाय। इसका व्यवस्थापत्र बनते बनते श्रीमती का स्वर्गवास हो गया।

राजकुमार उमेदसिंहजी ने श्रीमती की अंतिम कामना के अनुसार बीस हजार रुपए देकर काशी नागरीप्रचारिणी सभा के द्वारा इस ग्रंथमाला के प्रकाशन की व्यवस्था की है। स्वामी विवेकानंदजी के यावत् निबंधों के अतिरिक्त और भी उत्तमोत्तम ग्रंथ इस ग्रंथमाला में छापे जायँगे और अल्प मूल्य पर सर्वसाधारण के लिये सुलभ होंगे। ग्रंथमाला की बिक्री की आय इसी में लगाई जायगी। यों श्रीमती सूर्यकुमारी तथा श्रीमान् उमेदसिंहजी के पुण्य तथा यश की निरंतर वृद्धि होगी और हिंदी भाषा का अभ्युदय तथा उसके पाठकों को ज्ञान-लाभ होगा।

विषय-सूची

अकबरी दरबार

———

तीसरा भाग

शेख अब्बुलफजल

बादशाह इस्लाम शाह के शासन-काल में ६ मुहर्रम सन् ९५८ हि० का दिन था कि शेख मुबारक के घर में मुबारक-सलामत होने लगा—उन्हें चारो ओर से बधाइयाँ मिलने लगीं। साहित्य ने आँख दिखाई कि चुप रहो, देखो साहित्य और बुद्धि-मत्ता का पुतला गर्भ के परदे में से निकल कर माता की गोद में आ लेटा। पिता ने अपने गुरु के नाम पर पुत्र का नाम अब्बुलफजल रखा। पर गुण और योग्यता में वह उनसे भी कई आसमान और ऊपर चढ़ गया। और वैभव तथा प्रभुत्व का तो कहना ही क्या है! शेख मुबारक का हाल तो पाठक पहले पढ़ ही चुके हैं। इसी से समझ लें कि कैसे-कैसे कष्टों और आपत्तियों में उनका पालन-पोषण हुआ होगा। उनका समस्त विद्यार्थी-जीवन दरिद्रता के कष्ट, चित्त की उद्विग्नता और शत्रुओं के हाथों कष्ट सहते सहते ही बीता। पर वे उपाय-रहित आघात

नित्य नई शिक्षा और अभ्यास के पाठ थे। जब इतना धैर्य रखते और सहन करते हैं और इस उत्तमता से मार्ग चलते हैं, तब अकबर सरीखे सम्राट् के मन्त्री के पद तक पहुँचते हैं। उन्होंने मुबारक पिता की गोद में पलकर जवानी का रंग निकाला और उन्हीं के दीपक से जला कर अपनी बुद्धि का दीपक प्रज्वलित किया। उन दिनों मखदूम और सदर आदि इतने अधिक अधिकार रखते थे कि उन्हीं की बादशाही क्या बल्कि यों कहना चाहिए कि खुदाई थी। ज्यों-ज्यों उनकी अत्याचारपूर्ण आज्ञाएँ और फतवे प्रचलित होते थे, त्यों-त्यों इन के विद्याध्ययन की रुचि और शौक बढ़ता जाता था। प्रताप बलपूर्वक उछला पड़ता था; वर्तमान काल भविष्य को खींचता था और कहता था कि शत्रुओं के नाश में क्यों विलम्ब कर रहे हो।

अब्बुलफजल ने अकबरनामे का तीसरा खंड लिख कर उसकी समाप्ति पर अपने आरम्भिक विद्याध्ययन का विवरण कुछ अधिक विस्तार से लिखा है। यद्यपि उसमें की बहुत सी बातें व्यर्थ जान पड़ेंगी, तथापि ऐसे लोगों की प्रत्येक बात सुनने योग्य हुआ करती है। इस घटना-लेखक के हाथ चूम लीजिए, क्योंकि इसने जिस प्रकार और सब लोगों के हाल खुल्लम-खुल्ला लिखे हैं, उसी प्रकार अपना अच्छा और बुरा हाल भी साफ-साफ दिखलाया है। मनुष्य फिर भी मनुष्य ही है। भिन्न-भिन्न समयों में उसकी भिन्न-भिन्न अवस्थाएँ होती हैं। परन्तु सज्जन लोग उससे भी सज्जनता की ही शिक्षा लेते हैं। मनुष्य के रूप में रहनेवाले राक्षस या दुर्जन लोग फिसलते हैं और दलदल में फँस कर रह जाते हैं।

आरम्भिक विवरण

वर्ष सवा वर्ष की अवस्था में ही ईश्वर ने ऐसी कृपा की कि साफ बातें करने लगा। अभी पाँच ही वर्ष का था कि प्रकृति ने योग्यता की खिड़की खोल दी। ऐसी ऐसी बातें समझ में आने लगीं जो दूसरों को नसीब नहीं होतीं। पन्द्रह वर्ष की अवस्था में अपने पूज्य पिता के बुद्धि-कोष का कोषाध्यक्ष और अर्थ रूपी रत्नों का रक्षक हो गया और भांडार पर पैर जमाकर बैठ गया।

पढ़ाई-लिखाई से वह सदा उदासीन रहता था और दुनियाँ के रंग-ढंग से उसकी तबीयत कोसों भागती थी। प्रायः वह कुछ समझता ही न था। पिता अपने ढब से बुद्धि और ज्ञान के मन्त्र फूँकते थे। प्रत्येक विषय का एक निबन्ध लिख कर याद कराते थे। यद्यपि ज्ञान बढ़ता जाता था, तथापि विद्या का कोई आशय मन में न बैठता था। कभी तो कुछ भी समझ में न आता था और कभी सन्देह मार्ग रोकते थे। कहीं जबान साथ नहीं देती थी और कहीं रुकाव हकला कर देता था। यद्यपि भाषण करने में भी पहलवान था, तथापि अपने मन के भाव प्रकट नहीं कर सकता था। लोगों के सामने आँसू निकल पड़ते थे। स्वयं ही अपने आपको बुरा-भला कहा करता था। इसी खंड में एक और स्थान पर लिखते हैं—जो लोग विद्वान् कहलाते हैं, उन्हें प्रायः अन्यायी पाया; इसलिये एकान्त में रहने को जी चाहता था। दिन के समय पाठशाला में विद्या का ज्ञान फैलाता और रात को उजाड़ स्थानों में चला जाता। वहाँ

निराशा की गलियों के पागलों को ढूँढता और उन दरिद्र कोषाध्यक्षों से साहस की भिक्षा माँगता।"

इसी बीच में एक विद्यार्थी से प्रेम हो गया। कुछ समय तक ध्यान उसी ओर लगा रहा। अभी अधिक दिन नहीं बीते थे कि उसके साथ बातें करने और बैठने के लिये पाठशाला की ओर मन खिंचने लगा। उचाट मन और उखड़ी हुई तबीयत उधर झुक पड़ी। ईश्वर की माया देखो, मुझ को उड़ा दिया और मेरे स्थान पर किसी दूसरे को ला रखा। मानों मैं न रहा, बिलकुल बदल गया। लिखा है—

در دیر شدم ماحضرے آوردند –
یعنی زشراب ساغرے آوردند –
کیفیت او مرا زخود بیخود کرد –
بردند مراو دیگرے آوردند –

अर्थात् मैं मन्दिर में था, खाद्य पदार्थ मेरे सामने ले आए, मानों प्याले में भर कर शराब ले आए। उसके आनन्द ने मुझे आपे से बाहर कर दिया। मुझे ले गए और दूसरे को मेरी जगह ले आए।

ज्ञान के तत्वों ने चाँदनी खिला दी। जो पुस्तक देखी भी न थी, उसका उतना अधिक ज्ञान हो गया, जितना पढ़ने से भी न होता। यद्यपि यह स्वयं ईश्वर की देन थी, यह उत्कृष्ट पदार्थ स्वयं पवित्र आकाश से मेरे लिये उतरा था, तथापि पूज्य पिता जी ने बड़ी सहायता की। उन्होंने शिक्षा का क्रम टूटने न दिया। मन के आकर्षण का सब से बड़ा कारण वही बात

हुई। दस बरस तक आप कविताएँ करता था और दूसरों को सुनाता था। दिन और रात की भी खबर न होती थी। पता ही न लगता था कि भूखा हूँ या पेट भरा है। चाहे एकान्त में रहता था और चाहे समाज में रहता था, चाहे प्रसन्नता होती थी और चाहे शोक होता था, पर ईश्वरीय सम्बन्ध या अध्यात्म और विद्या तथा ज्ञान के अतिरिक्त और कुछ सूझता ही न था। इन्द्रियों के वशीभूत मित्र चकित होते थे, क्योंकि दो-दो तीन-तीन दिन तक भोजन नहीं मिलता था। पर वह बुद्धि का भूखा था; उसे कुछ भी परवाह न होती थी। उन मित्रों का विश्वास बढ़ता जाता था कि ये पहुँचे हुए महात्मा हो गए। मैं उत्तर देता था कि तुम्हें अभ्यास के कारण ही आश्चर्य होता है। और नहीं तो देखो कि जब रोगी की प्रकृति रोग का सामना करती है, तब वह भोजन की ओर से किस प्रकार उदासीन हो जाता है। उस पर किसी को आश्चर्य नहीं होता। इसी प्रकार यदि मन अन्दर से किसी काम में लग जाय और सब कुछ भुला दे, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है!

बहुत से ग्रन्थ तो यों ही कहते-सुनते कंठाग्र हो गए। विद्याओं के बड़े बड़े आशय, जो पुराने पृष्ठों में पड़े पड़े घिस-पिस गए थे, मन-रूपी पृष्ठ पर प्रकाशमान होने लगे। अभी दिल्लगी ने वह परदा भी न खोला था और बाल्यावस्था के निम्न स्थान से बुद्धि के उच्च स्थान पर भी न चढ़ा था कि उसी समय से बड़े बड़े धर्माचार्यों के सम्बन्ध में आपत्तियाँ सूझने लगीं। लोग मेरी बाल्यावस्था को देखते हुए मानते नहीं थे, मैं झुँझलाता था। अनुभव न था। मन में आवेश आता था, पर उसे पी जाता

था। विद्यार्थी जीवन के आरम्भ में मैं मुल्ला सदरउद्दीन और मीर सैयद शरीफ पर जो आपत्तियाँ किया करता था, वे सब कुछ मित्र लिखते जाते थे। अचानक मुतव्वल नामक पुस्तक पर ख्वाजा अब्दुलक़ासिम की टीका सामने आई। उसमें वे सब आपत्तियाँ लिखी हुई मिलीं। सब लोग चकित रह गए। उन्होंने मेरी बातों से इन्कार करना छोड़ दिया और मुझे कुछ दूसरी ही दृष्टि से देखने लगे। अब वह खिड़की मिल गई जिससे प्रकाश आता था; और अध्यात्म का द्वार खुल गया।

आरम्भ में जब मैं विद्यार्थियों को पढ़ाने लगा, तब अस्फ़ाहानी टीका की एक प्रति कहीं से मिल गई, जिसके आधे से अधिक पृष्ठ दीमकों ने खा डाले थे। लोग निराश हो गए कि यह निकम्मा है। मैंने पहले उसके सड़े-गले किनारे कतर कर उस पर पैवन्द लगाए। प्रभात में प्रकाश और ज्ञान के समय बैठता; विषय का आरम्भ और अन्त देखता; कुछ सोचता और उसका अभिप्राय स्पष्ट हो जाता। उसी के अनुसार मसौदा बनाकर वहाँ लिख देता और उसे स्पष्ट कर देता। उन्हीं दिनों वह पूरी पुस्तक भी मिल गई। मिलान किया तो ३२ स्थानों में भिन्न भिन्न शब्दों में कुछ अन्तर था और तीन चार जगह प्रायः ज्यों का त्यों था। सब लोग देखकर चकित हो गए। वह प्रेम की लगन जितनी ही बढ़ती जाती थी, मेरे मन को प्रकाश भी उतना ही अधिक प्रकाशमान करता जाता था। बीस वर्ष की अवस्था में स्वतन्त्रता का शुभ समाचार मिला; पर उससे भी मन भर गया। अब पहला पागलपन फिर आरम्भ हुआ। विद्याओं और गुणों की सजावट हो रही थी. यौवन का आवेश खब बढ रहा था. उच्चा-

कांक्षाओं का पल्ला फैला हुआ था। ज्ञान और बुद्धिमत्ता का संसार-दर्शक दर्पण हाथ में था। नए पागलपन का शोर कान में पहुँचने लगा और हर काम से रुकने के लिये जोर करने लगा। उन्हीं दिनों ज्ञान-सम्पन्न बादशाह ने मुझे स्मरण करके एकान्त के कोने से घसीटा; आदि, आदि।

अब्बुलफजल ने अपने पिता के साथ साथ शत्रुओं के हाथों भी बड़े बड़े कष्ट सहे थे। उनका अन्तिम आक्रमण सबसे अधिक कठोर और भीषण था। उसका कुछ विवरण शेख मुबारक के प्रकरण में दिया गया है। मुल्ला की दौड़ मसजिद तक। शेख मुबारक तो भाग्य में बँधे हुए कष्ट भोगकर फिर अपनी मसजिद में आ बैठे। उस ज्ञानी वृद्ध को कभी सरकारों और दरबारों का शौक नहीं हुआ। पर इन होनहार युवकों को प्रताप ने बैठने न दिया। उनके मन में अपने गुणों के प्रकाश की कामना उत्पन्न हुई। और सच भी है, चन्द्रमा और सूर्य अपना प्रकाश क्योंकर समेट लें? लाल और पुखराज अपनी चमक-दमक किस तरह पी जायँ? इसलिये सन् ९७४ हि० में शेख फैजी बादशाह के दरबार में पहुँचे। सन् ९८१ हि० में अब्बुलफजल की अवस्था बीस वर्ष की थी, जब कि उन पर भी ईश्वर का अनुग्रह हुआ। अब देखना चाहिए कि उन्होंने इस छोटी अवस्था में इस ईश्वरीय देन को किस सुन्दरता के साथ सँभाला।

अब्बुलफजल अकबर के दरबार में आते हैं

अकबर के साम्राज्य का निरन्तर विस्तार होता जाता था और उस साम्राज्य के लिये समुचित व्यवस्था की आवश्यकता

थी। विशेषतः इस कारण और भी अधिक आवश्यकता थी कि व्यवस्था करनेवाला पुरानी व्यवस्था को बदलना चाहता था और उसे अधिक विस्तृत करना चाहता था। वह देखता था कि केवल तलवार के बल पर राज्य का विस्तार करना ठीक नहीं है। बल्कि वह उन देशवासियों के साथ मिल कर साम्राज्य को दृढ़ करना चाहता था जो जाति, धर्म और रीति-रवाज सब बातों में विरुद्ध पड़ते थे। इसके अतिरिक्त तुर्क लोग भी थे, जो थे तो उसके स्वजातीय ही, पर जो संकुचित विचारवाले, कट्टर और इस काम के लिये अयोग्य थे। अकबर ने अपने बाप-दादा के प्रति उनकी जो बद-नीयती देखी थी, उसके कारण उसका मन उन लोगों की ओर से बहुत ही दुःखी और खिन्न था। दर-बार में धार्मिक विद्वान् और पुराने विचारों के अमीर भरे हुए थे। नई बात तो दूर रही, यदि समय के उपयुक्त कोई साधारण परिवर्त्तन भी होता, तो जरा सी बात पर चमक उठते थे। उस दशा में वे लोग समझते थे कि हमारे अधिकार छिन रहे हैं और हमारी अप्रतिष्ठा हो रही है। देश का पालन करनेवाले बादशाह ने इसी लिये एक विशाल भवन बनवा कर उसका नाम चार ऐवान रखा और विद्वानों, धर्मज्ञों और अमीरों आदि के अलग-अलग वर्ग बना कर रात के समय वहाँ अधिवेशन करना आरम्भ किया। उसने सोचा था कि कदाचित् समय की आवश्यकता और कार्य की उपयुक्तता देखकर लोगों में एक मत उत्पन्न हो; पर वे लोग वाद-विवाद में और आपस के ईर्ष्या-द्वेष के कारण परस्पर झगड़ने लगे। किसी प्रश्न का ठीक-ठीक स्वरूप ही स्पष्ट न होता था कि वास्तव में बात क्या है। वह हर एक को टटोल-

ता था और भाषणों तथा युक्तियों के चकमक को टकराता था; लेकिन वास्तविकता का पतिंगा न चमकता था। दुःखी होता था और रह जाता था। उसी अवसर पर मुल्ला साहब पहुँचे। उन्होंने यौवन के आवेश और कीर्त्ति तथा उन्नति की कामना से बहुतों को तोड़ा। उन्होंने ऐसे ढंग दिखलाए जिन से जान पड़ा कि नए मस्तिष्कों में नए विचार उत्पन्न होने की आशा हो सकती है। लोगों में इस नवयुवक के विचारों की भी चर्चा हो रही थी। जिस स्रोत में मुल्ला साहब पले थे, यह भी उसी की मछली था। बड़ा भाई दरबार में पहले ही से उपस्थित था। प्रताप ने उसे चुम्बक पत्थर के आकर्षण से दरबार की ओर खींचा। यद्यपि उस मैदान में ऐसे लोग भरे हुए थे जो उसके पिता के समय से उसके वंश के रक्त के प्यासे थे, फिर भी यह मृत्यु से कुश्ती लड़ता और अभाग्य को रेलता ढकेलता दरबार में जा ही पहुँचा। ईश्वर जाने फैजी ने किस अवसर पर बादशाह से निवेदन किया था और किस से कहलाया था। तात्पर्य यह कि दीपक से दीपक प्रकाशमान हुआ। स्वयं अकबरनामे में लिखा है और अपने आरम्भिक विचारों का नए ढंग से नक्शा खींचा है।

सन् ९८१ हि० में अकबर के शासन-काल का उन्नीसवाँ वर्ष था, जब कि अकबरनामे के लेखक अब्बुलफजल ने अकबर के पवित्र दरबार में सिर झुका कर अपने पद और मर्यादा को उच्चासन पर पहुँचाया। एकान्त के गर्भ में से निकलने पर पाँच वर्ष में व्यवहार का ज्ञान प्राप्त हुआ। शब्द और अर्थ के पिता ने शिक्षा की दृष्टि से देखा (अर्थात् ज्ञान ने ही शिक्षा दी)।

पन्द्रह वर्ष की अवस्था में परा और अपरा विद्याओं से परिचित हो गया। यद्यपि उन्होंने समझ का द्वार खोल दिया और ज्ञान के दरबार में स्थान मिला, तथापि अभाग्य, अहम्मन्यता और आपा साथ था। कुछ दिनों तक रौनक और भीड़-भाड़ पैदा करने का यत्न होता रहा। ज्ञान के इच्छुकों के समूह ने विचार की पूँजी बहुत बढ़ाई और इस वर्ग को ना-समझ और अन्यायी पाया। इसलिये विचार हुआ कि चल कर एकान्त-वास करना चाहिए और अपना स्थान छोड़ कर दूसरे स्थान में रहना चाहिए। केवल ऊपरी बातें देखनेवाले बुद्धिमानों में परस्पर विरोध था और बिना सोचे-समझे पुराने ढंग पर चलने-वाले लोगों की चलती थी। मैं आश्चर्य के मार्ग में चकित होकर खड़ा देखता था। चुप रह नहीं सकता था और बोलने की शक्ति नहीं थी। पूज्य पिता जी के उपदेश पागलपन के जंगल में जाने न देते थे। परन्तु मन की विकलता की ठीक चिकित्सा भी न होती थी। कभी खता देश के बुद्धिमानों की ओर मन खिंचता और कभी लुबनान पर्वत के तपस्वियों की ओर झुकता। कभी तिब्बत के लामा लोगों के लिये तड़पता, कभी दिल कहता कि पुर्त्तगाल के पादरियों का साथी बनूँ। कभी जी चाहता कि फारस के पंडितों और जन्दावेस्ता के भेद जाननेवालों में बैठ कर अपनी विकलता की आग बुझाऊँ; क्योंकि समझदारों और पागलों दोनों से चित्त बहुत दुःखी हो गया था; आदि आदि।

इस जादू का सा वर्णन करनेवाले ने कई जगह अपना हाल लिखा है। पर जहाँ जिक्र आया है, एक नये ही रंग से

तिलस्मात बाँधा है। 'आजाद' उस से भी अधिक चकित है। न सब को लिख सकता है और न छोड़ सकता है।

शेख अब्बुलफजल के लेख का संक्षेप यह है कि सौभाग्य ने सहायता की और बादशाह के दरबार में उनकी विद्या और गुणों आदि की चर्चा हुई। बादशाह ने बुलवाया, पर मेरा जी नहीं चाहता था। पूज्य बड़े भाइयों और शुभ-चिन्तक मित्रों ने एक स्वर से कहा कि बादशाह सब विषयों का तत्व जाननेवाला है। उसकी सेवा में अवश्य उपस्थित होना चाहिए। यहाँ दिल का पागलपन सम्बन्ध की शृंखलाएँ तोड़े डालता था। लौकिक ईश्वर (पूज्य पिता जी) ने रहस्य खोल कर समझाया कि परम प्रतापी बादशाह अकबर के वास्तविक गुणों को कोई नहीं जानता। वह दीन और दुनियाँ का संगम और सब तत्वों का प्रकाशक है। तुम्हारे मन में जटिल प्रश्नों के सम्बन्ध में जो गाँठें पड़ गई हैं, वह वहीं जाकर खुलेंगी। मैंने उनकी प्रसन्नता को अपनी इच्छा से श्रेष्ठ समझा। सांसारिक धन-सम्पत्ति से विद्या के कोषाध्यक्ष का (मेरा) हाथ खाली था। आयत उल् कुरसी की टीका लिखी। बादशाह आगरे में आए हुए थे। वहीं जाकर उन्हें अभिवादन करने का सौभाग्य प्राप्त किया। उक्त पृष्ठों ने मेरे खाली हाथ होने का निवेदन किया (अर्थात् भेंट की जगह कुछ नगद न देकर वही टीका दी)। वह अनुग्रह-पूर्वक स्वीकृत हुआ। मैंने देखा कि बादशाह के सेवा-रूपी रसायन से हृदय का ताप ठंढा पड़ गया और बादशाह के पवित्र व्यक्तित्व के प्रेम ने मेरे मन पर पूरा-पूरा अधिकार कर लिया। उस समय बंगाल की ओर युद्ध हो रहा था और उस पर चढ़ाई

की तैयारियाँ हो रही थीं। साम्राज्य के आवश्यक कार्यों के कारण अज्ञात एकान्तवासी की दशा पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया। वे चले गए और मैं रह गया।

वहाँ से भी भाई के पत्रों में लिखा हुआ आता था कि बादशाह तुझे स्मरण किया करते हैं। मैंने सूरः फतह (विजय मन्त्र) की टीका लिखना आरम्भ कर दिया *। जब पटने पर विजय प्राप्त करके लौटे और अजमेर गए, तब मालूम हुआ कि वहाँ भी स्मरण किया। जब प्रताप के झंडे फतहपुर में आए, तब पूज्य पिता जी से आज्ञा लेकर वहाँ गया। भाई के पास उतरा। दूसरे दिन जामः मसजिद में, जो बादशाही इमारत है, जाकर सेवा में उपस्थित हुआ। जब बादशाह आए, तब मैंने दूर से झुक कर अभिवादन किया और उनकी ज्योति समेटी। गुणग्राही बादशाह ने स्वयं दूरदर्शी दृष्टि से देख कर बुलाया। संसार और लोगों के हाल कुछ-कुछ पहले से ही मालूम थे। फिर पल्ला भी दूर का था। मैंने समझा कि कदाचित् मेरे किसी नाम-रासी को बुलाया हो। जब ज्ञात हुआ कि मेरे ही भाग्य ने साथ दिया

---

* इस वृद्ध शेख मुबारक और उसके नवयुवक पुत्रों का ढंग तो देखिए कि इनकी कोई बात बारीकी से खाली नहीं थी। पहली बार जब राजधानी में सेवा में उपस्थित हुए, तब आयत-उल्-कुरसी की टीका भेंट की। इसमें यह बारीकी थी कि आयत-उल्-कुरसी का पाठ आपत्तियों से रक्षा करने के उद्देश्य से करते हैं। बादशाह युद्ध करने जा रहे हैं। ईश्वर सब आपत्तियों से उनकी रक्षा करता है। फतहपुर में सूरः फतह की टीका भेंट की। इसमें यह बारीकी थी कि आपकी यह विजय शुभ हो और यह पूर्व के प्रदेशों पर विजयी होने की भूमिका है।

है, तब दौड़ा और उनके सिंहासन पर मस्तक रख दिया। उस दीन और दुनियाँ के समुच्चय ने कुछ देर तक मुझ से बातें कीं। सूर: फतह की टीका मैंने तैयार कर ली थी; वही भेंट की। बादशाह ने दरबार के लोगों से मेरे सम्बन्ध में वह वह बातें कहीं, जो स्वयं मुझे भी ज्ञात न थीं। इस पर भी दो वर्ष तक मेरा मन उचाट था। मन का पागलपन एकान्त की ओर खींचता था, लेकिन प्राणों के गले में बन्धन पड़ गए थे। अनुग्रह पर अनुग्रह बढ़ता जाता था। मैं तो कोई चीज नहीं था; पर फिर भी एक चीज बना दिया। पद में धीरे-धीरे वृद्धि होती गई; यहाँ तक कि अन्त में अभीष्ट पवित्र मन्दिर की ताली हाथ आ गई।

तात्पर्य यह है कि जब से अब्बुलफजल दरबार में उपस्थित हुए, तब से उन्होंने अपने स्वभाव-ज्ञान, नम्रतापूर्ण सेवा, आज्ञा-पालन, विद्या, योग्यता और शिष्टतापूर्ण हास्य-प्रियता से अकबर का मन इस प्रकार अपने हाथ में कर लिया कि अकबर जब बात करता था, तब इन्हीं दोनों भाइयों की ओर मुँह करके करता था। मखदूम और सदर के घर में तो मानों सोग छा गया। और ऐसा होना ठीक भी था; क्योंकि यदि वे लोग शेख मुबारक के उत्कृष्ट गुणों और महत्व आदि को दबा सकते थे, तो स्वयं बादशाह के बल पर ही दबा सकते थे। पर अब यह मैदान भी उनके हाथ से निकल गया था। थोड़े ही दिनों में उसके नवयुवक पुत्र दरबार के प्रश्नों और साम्राज्य के बड़े-बड़े कार्यों में सम्मिलित होने लगे।

मुल्ला साहब के वर्णन करने के ढंग में भी एक विशेष प्रकार का आनन्द है। जरा देखिए, इस घटना का कैसे मजे से वर्णन

करते हैं। वह लिखते हैं कि सन् ९८२ हि० में बादशाह अजमेर से लौटकर फतहपुर में ठहरे हुए थे। वहाँ उन्होंने खानकाह के पास एक प्रार्थना-मन्दिर प्रस्तुत कराया था जो चार ऐवान कहलाता था। इसका विवरण बहुत विस्तृत है। किसी और प्रकरण में वह दिया जायगा। उन्हीं दिनों नागौरवाले शेख मुबारक के सपूत बेटे शेख अब्बुलफजल ने, जिसे अल्लामी भी कहते हैं और जिसने संसार में बुद्धि और ज्ञान की हलचल मचा दी है और जिसने सब्बाहियों (एक विशेष सम्प्रदाय के अनुयायियों) के धार्मिक विश्वासों का दीपक प्रज्वलित किया है और जो दिन के समय दीपक जलाता था और जिसने अपने प्रत्येक विरोधी का अन्त कर दिया और जिसने समस्त धर्मों का विरोध करना अपना कर्त्तव्य समझ लिया है और जिसने इसी काम के लिये कमर कसी हुई है, आकर बादशाह की सेवा को अपने मन में स्थान दिया। उसने आयत उल् कुरसी की टीका भेंट की और उसकी तारीख "तफसीर अकबरी" (अकबरी टीका) कही गई। उसमें कुरान के सम्बन्ध में बहुत सी कठिन और सूक्ष्म बातें थीं। लोग कहते हैं कि वह टीका उसके पिता की की हुई थी। बादशाह ने दुष्ट और अभिमानी मुल्लाओं (जिसका अभिप्राय मुझसे है) के कान मलने के लिये उसको यथेष्ट उपयुक्त पाया।

इसके उपरान्त मखदूम और सदर के द्वारा शेख मुबारक और उसके पुत्रों पर जो धूआँधार आपत्तियाँ आई थीं, उनसे कुछ पंक्तियाँ काली करके मुल्ला साहब लिखते हैं कि अब तो हर बात में उन्हीं की चलने लगी। शेख अब्बुलफजल ने बादशाह का पक्ष लेकर और सेवा, जमानासाजी, बेईमानी और मिजाज पहचानकर

हद से ज्यादा खुशामद करके उन लोगों की, जिन्होंने उनके और उनके पिता के विरुद्ध चुगलियाँ खाई थीं और अनुचित प्रयत्न किए थे, बहुत बुरी तरह से बेइज्जत किया। उन पुराने गुम्बदों को जड़ से उखाड़ कर फेंक दिया। बल्कि ईश्वर के सभी सेवकों, शेखों, विद्वानों, ईश्वरचिन्तन में रत रहनेवालों, अनाथों, वृद्धों और सब लोगों की आर्थिक वृत्तियाँ काटने और सहायताएँ बन्द करने का कारण भी वही हुआ। पहले वह प्रायः कहा करता था—

یارب بجہانیاں دلیلے بفرست –
فرعون صفت چو پشہ پیلے بفرست –
فرعون و شان دست برآورد ستند –
موسے و عصا و رد نیلے بفرست –

अर्थात्—हे ईश्वर, इस लोकवालों के पास कोई तर्क भेज जो फरऊन के से अभिमानी हाथी का अभिमान तोड़ने के लिए मच्छर के समान हो। फरऊन और उनके साथ के लोग अत्याचार करने के लिए निकले हैं। तू मूसा और असा को नील नदी की लहरों की ओर भेज दे (जिसमें वे तो सकुशल पार उतर जायँ और फरऊन तथा उनके साथी नील नदी में डूब जायँ)। जब इस ढंग पर झगड़े उठने लगे, तब प्रायः कहने लग गया था—

آتش بدو دست خویش درخرمن خویش –
چوں خود زدہ ام چہ نالم از دشمن خویش –
کس دشمن من نیست منم دشمن خویش –
اے وائے من و دست من و دامن خویش –

अर्थात्—मैंने स्वयं अपने हाथ से अपने खलिहान में आग लगाई है। यह काम मैंने स्वयं किया है; इसलिए मैं अपने शत्रु की कैसे निन्दा कर सकता हूँ। मेरा कोई शत्रु नहीं है।' मैं स्वयं ही अपना शत्रु हूँ। मुझे अपने पर, अपने हाथ पर और अपने पल्ले पर बहुत दुःख और पश्चात्ताप है।

वाद-विवाद के समय यदि किसी प्रतिष्ठित विद्वान् का वाक्य प्रमाण-स्वरूप उपस्थित किया जाता था तो कहता था कि अमुक हलवाई, अमुक मोची, अमुक चमार के कथन के आधार पर हमसे हुज्जत करते हो। सच तो यह है कि उसने सब शेखों और विद्वानों की बातें मानने से जो इन्कार किया, वह भी उसके लिये शुभ ही प्रमाणित हुआ।

हम तो कहते हैं कि शेख अब्बुलफजल के सम्बन्ध में केवल मुल्ला साहब को ही यह ईर्ष्या नहीं हुई जो उनके समवयस्क और सहपाठी थे। बड़े बड़े वृद्ध और दरबार के बड़े बड़े गुणी स्तम्भ देख देखकर तड़पते थे और रह जाते थे।

यदि हम यह जानना चाहें कि अकबर में लोगों का मिजाज पहचानने की कितनी योग्यता थी तो केवल एक बात का जान लेना यथेष्ट है। वह यह कि अब्बुलफजल और मुल्ला साहब दोनों आगे पीछे दरबार में पहुँचे थे। बादशाह की दृष्टि किसी पर कम नहीं थी। मुल्ला साहब को बीस्ती का मन्सब प्रदान किया गया और व्यय के लिये रुपये भी दिए गए। कहा गया कि घोड़े उपस्थित करके दाग करा लो। पर उन्होंने स्वीकृत नहीं किया। अब्बुलफजल भी मसजिद में बैठनेवाले एक मुल्ला के ही पुत्र थे और सीधे मसजिद से निकल दरबार में पहुँचे थे। उन्होंने

तुरन्त आज्ञा का पालन किया। जो सेवा उन्हें मिली, की। वह क्या से क्या हो गए और यह बेचारे मुल्ला के मुल्ला ही रह गए। जरा देखिए, मुल्ला साहब कैसे मजे में इस आपत्ति का रोना रोते हैं।

अब्बुलफजल लेखन-कला का परम पंडित बल्कि सम्राट् था। अकबर ने भी परख लिया था कि इसका मस्तिष्क हाथों की अपेक्षा अधिक लड़ेगा। बल्कि हाथ की कलम तलवार से अधिक काट करेगी। इसलिये लेखन विभाग की सेवा उन्हें सौंपी गई और साम्राज्य की चढ़ाइयों आदि का इतिहास लिखने का काम भी उन्हीं को मिला। अब्बुलफजल प्रत्येक आज्ञा का पालन बहुत ही यत्न तथा परिश्रमपूर्वक करते थे। धीरे-धीरे बादशाह के मन में अपने प्रति बहुत अधिक विश्वास उत्पन्न कर लिया। सब प्रकार के परामर्श आदि में उनकी सम्मति आवश्यक हो गई। यहाँ तक कि जब बादशाह के पेट में दर्द होता था, तब हकीम भी उन्हीं की सम्मति से नियुक्त होता था। यदि फुन्सी पर मरहम लगता था तो भी नुसखे में इनकी सम्मति सम्मिलित रहती थी। अब अब्बुल फजल ने मुल्लाई की गलियों से घोड़ा दौड़ाकर मन्सबदार अमीरों के मैदान में झंडा गाड़ा।

सन् ९९३ हि० के जशन का विवरण लिखते हुए कहते हैं कि अमुक अमुक मन्सबदार अमीरों को इन-इन सेवाओं के पुरस्कार-स्वरूप ये मन्सब प्रदान किए गए। इस लेखक के लिये किसी सेवा ने सिफारिश न की। पर फिर भी हुजूर से हजारी मन्सब प्रदान किया गया। आशा है कि अच्छी सेवाएँ आज्ञाकारिता का मुख उज्वल करें।

सन् ९९७ हि० में जब अब्बुलफजल बादशाह के साथ लाहौर में थे, तब उनके पिता शेख मुबारक का देहान्त हो गया। बहुत अधिक दुःख हुआ। उनके उस दुःख की दशा इसी बात से जानी जा सकती है कि विकल होते थे और बार बार यह शेर पढ़ते थे जो अरफी ने अपने अवसर पर कहा था—

خوں، که از مهر تو شد شیرو بطفلي خوردم -
باز آں خوں شد و از دیده بروں مے آید -

अर्थात्—मैंने बाल्यावस्था में वह रक्त पान किया था जो तेरी कृपा से दूध हो गया था। पर पीछे से वह फिर रक्त ही हो गया और आँखों के मार्ग से बाहर निकल पड़ा।

स्वयं लिखते हैं कि आज बादशाह के प्रताप रूपी चित्र का चित्रकार मैं जरा बेहोश हो गया और नाना प्रकार के दुःखों में डूब गया। समाचार मिला कि मेरे वंश की परम उज्वल रमणी, सतीत्व की माता और कृपा करनेवाली इस असार संसार को छोड़कर परम धाम को सिधारी।

दीन-दुःखियों पर कृपा करनेवाले बादशाह ने आकर अपने अनुग्रह की छाया की और मोती बरसानेवाले श्रीमुख से कहा कि यदि संसार के सब लोग अविनश्वर होते और एक के सिवा कोई नाश के मार्ग में न जाता तो भी उसके मित्रों के लिये उसकी इच्छा के सामने सिर झुकाने के सिवा और कोई उपाय नहीं था। पर जब यात्रियों के इस निवास-स्थान में कोई अधिक समय तक न ठहरेगा, तब सोचो कि अधीरता के परिताप का क्या अनुमान किया जा सकता है। हृदय शीतल करनेवाले इस वचन से मन में

ज्ञान उत्पन्न हो गया और उस समय के लिये जो उपयुक्त काम थे, उनमें लग गया।

सन् ९९९ हि० में स्वयं लिखते हैं कि आज पुत्र अब्दुल-रह्मान के घर में प्रकाशमान तारे ने प्रकाश बढ़ाया। अनेक प्रकार से आनन्द-मंगल होने लगा। अकबर बादशाह ने पश्वतन नाम रखा। आशा है कि वह वैभव और सफलता या विजय की वृद्धि करे और सभ्यता उसके दीर्घायुष्य में सम्मिलित हो।

इसी सन् में लिखते हैं कि शाहजादा सलीम जहाँगीर के अल्पवयस्क पुत्र खुसरो की पढ़ाई के आरम्भ का दरबार हुआ। सबसे पहले बादशाह ने ईश्वर के दरबार में नम्रता और अधीनता दिखलाई और शाहजादे से कहा—'कहो अलिफ'। फिर इन्हें आज्ञा दी कि थोड़ी देर तक नित्य बैठकर इसे पढ़ाया करो। इन्होंने थोड़े दिनों बाद पढ़ाने का काम अपने छोटे भाई शेख अब्बुलखैर को सौंप दिया।

सन् १००० हि० में लिखते हैं कि शाही प्रताप की बातें लेखबद्ध करनेवाले (मुझ) को दो-हजारी मन्सब प्रदत्त हुआ है। आशा है कि सेवाएँ स्वयं ही अपने मुँह से इसके लिये धन्यवाद दें और हजूर की गुणग्राहकता पास और दूर सभी जगहों में प्रकट हो।

सन् १००४ हि० (१५९५ ई०) में फैजी के लिखे हुए ग्रन्थों को देखा। उनके खंड खंड इधर उधर बिखरे पड़े थे। बड़े भाई के कलेजे के टुकड़े इस दुर्दशा में देखे नहीं गए। उनका क्रम लगाने की ओर प्रवृत्त हुआ। दो वर्ष इस काम में लगे। इसी बीच में ढाई हजारी मन्सब मिला। आईन-अकबरी में

मन्सबदारों की जो सूची दी है, उसमें अपना नाम और पद भी लिखा है।

अब्बुलफजल बड़े सुरते और सयाने थे। वह यह भी जानते थे कि सारे दरबार में एक अकबर को छोड़कर और कोई मेरा हृदय से शुभचिन्तक नहीं है। लेकिन फिर भी वे एक चाल चूके और बहुत चूके। शेख मुबारक ने कुरान की टीका लिखी थी। उन्होंने उसकी प्रतियाँ प्रस्तुत कीं और ईरान, तूरान तथा रूम आदि देशों में भेजीं। ईर्ष्यालु लोग हर समय ताक लगाए बैठे रहते थे। उन्होंने ईश्वर जाने किस ढंग और रूप से यह बात अकबर से निवेदन की। उसे कुछ बुरा मालूम हुआ। चुगली खानेवालों की बातें किसने सुनी हैं कि किसने क्या क्या मोती पिरोए होंगे। कदाचित् यह कहा हो कि यह श्रीमान् के सामने धर्मनिष्ठ मुसलमानों को अन्ध-परम्परा का अनुयायी कहता है और अनुकरण तथा धर्म के दोष बतलाता है। वास्तव में इसके विचार धर्म के विरुद्ध हैं। या यह कहा हो कि ऊपर से तो हुजूर से कहता है कि मैं आपके सिवा और किसी को नहीं जानता, बल्कि हुजूर को धर्म और शरअ के अनुसार चलनेवाला मानता है। और कदाचित् गुप्त रूप से यह भी कहा हो कि इसने उस टीका के खुतबे में हुजूर का नाम सम्मिलित नहीं किया। सम्भव है कि यह उक्त बादशाहों के दरबार में अपना प्रवेश करने के लिये मार्ग बना रहा है। तात्पर्य यह कि उन लोगों की बातों ने अथवा अब्बुलफजल के इस कृत्य ने अकबर के हृदय पर बुरा प्रभाव डाला। एक इतिहास में लिखा है कि जहाँगीर ने यह विषय अपने पिता के सामने उपस्थित किया था। अब्बुलफजल खूब

रंग-ढंग पहचाननेवाले आदमी थे। उन्होंने इस बात पर बहुत अधिक दुःख प्रकट किया। जैसे कोई किसी के मर जाने पर सोग में बैठता हो, उसी तरह घर में बन्द होकर बैठ रहे। दरबार में आना-जाना छोड़ दिया। लोगों से मिलना-जुलना भी छोड़ दिया और अपने-पराए सब का आना-जाना भी बन्द कर दिया। जब बादशाह को यह समाचार मिला, तब उसने बहुत उदारता से काम लिया और कहला भेजा कि आकर अपनी सेवाएँ सँभालो। इस बीच में कई बातें कहलाई गईं और उनके उत्तर भेजे गए। अन्त में स्वयं लिखते हैं कि मैं अन्तर्यामी के रास्ते पर बैठा और सोचने लगा कि अरे मन, तू दूरदर्शी बादशाह की कम-समझी को क्या दोष देता है। नासमझी तो तेरी है। इस प्रकार की बातें शत्रुओं की आकांक्षाएँ पूरी करती हैं। यह तुझे क्या खयाल आ गया कि तू उलटा चलने लगा। यह समय इस प्रकार की शिकायतें और दुःख करने के लिये उपयुक्त नहीं है, आदि आदि। तात्पर्य यह कि फिर जब बादशाह ने बुलवाया, तब मन से पहली बातें दूर करके दरबार में गए और अनेक प्रकार के अनुग्रहों ने दुःखों और चिन्ताओं से हल्का कर दिया।

सन् १००५ हि० में लिखते हैं कि बादशाह ने काश्मीर जाते समय रजौड़ी में पड़ाव डाला। शाहजादा सलीम जहाँगीर बिना आज्ञा लिए दरबार में उपस्थित हुआ। मार्ग में कुछ अव्यवस्था हो गई थी। ऐसा प्रायः हो जाया करता था; इसलिये बादशाह ने उसे कुछ दिनों तक दरबार में उपस्थित होने से वंचित रखा और अपनी अप्रसन्नता प्रकट करने के लिये आज्ञा दे दी कि इसका डेरा पीछे हट कर रहा करे। शाहजादे ने

अपना न्याय कराने में इनसे भी सहायता ली; और जब उसने दुःख और लज्जा प्रकट की, तब उसका अपराध क्षमा हुआ।

यह तो स्पष्ट ही है कि अब्बुलफजल अकबर का मुसाहब, परामर्शदाता, विश्वसनीय, प्रधान लेखक, इतिहासकार, नियमों आदि का ज्ञाता और उसकी जबान बल्कि यों कहना चाहिए कि उसकी बुद्धि की कुंजी था अथवा यों कहो कि वह सिकन्दर के सामने अरस्तू था। यों मुँह से लोग चाहे जो कुछ कहें, पर यदि प्रश्न किया जाय कि वह इन पदों की योग्यता रखता था या नहीं, तो आकाश से उत्तर मिलेगा कि उसका पद इन सब से बहुत उच्च था। उसका आज्ञाओं को प्रचलित करने का ढंग, अमीरों के कार्यों आदि का संशोधन और उनके परिश्रम में सदा त्रुटियाँ दिखलाना भी पराकाष्ठा का था। कहनेवाले अवश्य कहते होंगे और अनजान लोग अब भी समझते होंगे कि अब्बुल-फजल सदा अकबर के सामने बैठ कर बातों के तोते-मैना बनाते होंगे। विकट समस्याओं और कठिन अवसरों के उपस्थित होने पर काम कर दिखलाना कुछ और ही बात है। यदि शेख साहब स्वयं युद्ध-क्षेत्र में होते तो उन्हें पता चलता कि वहाँ पग-पग पर क्या-क्या कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं। यह सब ठीक है। लेकिन इसमें भी कोई सन्देह नहीं है कि जब यह पहाड़ स्वयं इनके सिर पर आकर पड़ा, तब भी इन्होंने उसे परले सिरे की वीरता और सुन्दरता के साथ सँभाला। देखनेवाले चकित होते थे कि मसजिद में बैठनेवाले एक मुल्ला का लड़का साम्राज्य का भार उठाए चला जाता है और कैसी ख़ूबसूरती से जाता है। यहाँ संक्षेप में इनके कार्यों के कुछ उदाहरण दिए जाते हैं।

सन् १००६ हि० में इनकी उन्नति ने अपनी चाल बदली। दक्षिण के मामले बहुत पेचीले हो गए। अकबर ने इस चढ़ाई की व्यवस्था शाहजादा मुराद को सौंपी थी। बहुत से अनुभवी सेनापति और प्रसिद्ध सरदार सेनाएँ दे कर उसके साथ किए थे। शाहजादा आखिर नौजवान लड़का था। ऐसे पुराने सेनापतियों को दबाना उसका काम नहीं था। जब वह एक के परामर्श के अनुसार काम करता था, तब दो उसके विरुद्ध होकर सहायता करने के बदले उसका परिश्रम निरर्थक कर देते थे। सब से बड़ी खराबी यह थी कि शाहजादे को शराब की लत पड़ गई थी। उसने उसकी बहुत बुरी दशा कर रखी थी। इसलिये प्रायः बहुत से काम नष्ट हो गए। जब इस सम्बन्ध के समाचार निरन्तर दरबार में पहुँचे, तब अकबर बहुत चिन्तित हुआ। अब उसके पास इसके अतिरिक्त और कोई उपाय न था कि जिस अब्बुलफजल का अलग होना वह किसी तरह सहन न कर सकता था, उसे दरबार से जुदा कर के वहाँ भेजे।

अकबर अपनी सेनाएँ लिए पाँच वर्ष से पंजाब में घूम रहा था और लाहौर में छावनी छाई थी। इसके भी अच्छे ही फल प्राप्त हुए थे। काश्मीर पर विजय प्राप्त हो गई थी और सीमा-प्रान्त के यूसुफजई आदि इलाकों की चढ़ाइयों का यथेष्ट अभीष्ट परिणाम हो चुका था। अब्दुल्लाखाँ उजबक के उपद्रव बन्द होते गए और देशों पर विजय प्राप्त करनेवाला वह बादशाह अपने अयोग्य पुत्र के दुष्कर्मों से सन् १००५ हि० में स्वर्ग सिधार गया था। उसके देश की व्यवस्था बिगड़ गई थी। अकबर को अपने पूर्वजों के देश पर अधिकार करने के लिये इस से अच्छा और

कोई अवसर न मिल सकता था। लेकिन बुरहान उल्मुल्क के राज्य के नष्टप्राय हो जाने के कारण दक्षिण का परोसा हुआ थाल भी सामने था। बहुत दिनों से अमीरों और सेनाओं का उधर आना-जाना भी हो रहा था। मुराद की अवस्था के सब समाचार सुन कर उसने जान लिया था कि दक्षिण की सेना सेनापति से खाली होना चाहती है। उसने अपने दोनों पुत्रों को बुलाया। उसका विचार यह था कि सलीम को सेना देकर तुर्किस्तान की चढ़ाई पर भेजे। लेकिन वह शराबी कबाबी लड़का बदमस्त हो रहा था। दानियाल के सम्बन्ध में समाचार मिला कि वह इलाहाबाद से भी आगे निकल गया है। यह भी सुना कि उसका उद्देश्य अच्छा नहीं जान पड़ता। इसलिये वह विवश होकर स्वयं ही इस विचार से लाहौर से निकला कि उसे साथ लेता हुआ अहमदनगर को जाय और दक्षिण की ओर से पहले निश्चिन्त होकर तब तूरान की चढ़ाई की व्यवस्था करे।

अकबर को अब्बुलफजल की नेक-नीयती, बुद्धिमत्ता और उपायों पर इतना भरोसा था कि वह उसके कथन को स्वयं अपने कथन के तुल्य समझता था। जिस विषय में अब्बुलफजल किसी को कोई वचन देता था, उस विषय में उस वचन को वह स्वयं अपना वचन समझता था। इस बात की पुष्टि उस पत्र की लिखावट से होती है जो अब्बुलफजल ने शाहजादा दानियाल को लिखा था। यह मूल पत्र फारसी में है और इसका आशय इस प्रकार है—

"श्रीमान् सम्राट् ने कल रात को स्नानागार में स्वयं अपने श्रीमुख से कहा था कि अब्बुलफजल, मैंने अच्छी तरह सोच

समझ कर यही निश्चय किया है कि दक्षिण की चढ़ाई पर या तो तुम जाओ और या मैं जाऊँ। इसके अतिरिक्त और किसी प्रकार काम में न सफलता हो सकती है और न होगी। यदि तुम जाओगे तो विश्वास है कि शाहजादा तुम्हारे कहने के बाहर या विरुद्ध न जायगा। जब तक तुम वहाँ रहोगे, वह किसी दूसरे से परामर्श या मन्त्रणा न करेगा और कम साहसवाले, अदूरदर्शी और अयोग्य व्यक्तियों की बातें न सुनेगा। इसलिये उचित यही है कि तुम पहली तारीख को अपने रहने आदि का सामान पहले से भेज दो और आठवीं तारीख को तुम चले जाओ। सेवक ने यह निवेदन कर दिया है कि बकरियाँ और भेड़ें या तो बलिदान के काम आती हैं और या मांस पकाने के लिये। दूसरा क्या उपयोग हो सकता है? जब श्रीमान् की ऐसी आज्ञा है, तब मुझे उसमें कोई आपत्ति नहीं है।"

सन् १००७ हि० में शेख को यह आज्ञा हुई कि सुलतान मुराद को अपने साथ ले आओ। साथ ही यह भी आज्ञा हुई कि यदि दक्षिण पर चढ़ाई करनेवाले अमीर उस देश की रक्षा का भार लें तो शाहजादे के साथ चले आओ। और नहीं तो शाहजादे को भेज दो और स्वयं वहीं रहो। आपस में एका रखो और सब लोगों से ताकीद कर दो कि मिरजा शाहरुख की अधीनता में रहें।

मिरजा को भी झंडा और नक्कारा देकर मालवे की ओर भेज दिया जहाँ उसकी जागीर थी। उसके भेजने का उद्देश्य यह था कि वह वहाँ जाकर सेना का प्रबन्ध करे और जब दक्षिण में बुलाहट हो, तब तुरन्त वहाँ पहुँच जाय।

शेख बुरहानपुर के पास पहुँचा। खान्देश का शासक बहादुरखाँ आसीर के किले से उतर कर चार कोस लेने के लिये आया। उसने बहुत आदरपूर्वक बादशाह का आज्ञापत्र और खिलअत लेकर नम्रतापूर्वक अभिवादन किया। उसने शेख को ठहराना चाहा, पर वह नहीं रुके और सवार होकर बुरहानपुर जा पहुँचे। बहादुरखाँ भी वहाँ जा पहुँचे। शेख ने बहुत सी ऐसी बातें कहीं जो ऊपर से देखने में तो कड़वी थीं, पर जिनका प्रभाव बहुत मधुर हो सकता था। उन्होंने यही समझाया कि तुम्हारे लिये सबसे अच्छी बात यही है कि तुम चढ़ाई में शाही सेना के साथ मिल जाओ। उसने इस सहज सी बात के लिये बड़े मुश्किल हीले-हवाले किए। हाँ अपने पुत्र कबीरखाँ को दो हजार सैनिक देकर रवाना किया। साथ ही उसने शेख को उनकी दावत करने के लिये अपने घर ले जाना चाहा। लेकिन उन्होंने कहा कि यदि तुम युद्ध में हमारे साथ चलते तो हम भी तुम्हारे यहाँ चलते। उसने बहुत से उपहार आदि उपस्थित किए। भला अब्बुलफजल को बातें बनाना कौन सिखा सकता था! उन्होंने ऐसे तोते-मैना उड़ाए कि उसके होश उड़ गए। वह आसीर चला गया और ये आगे बढ़े। ऐसी अवस्था में वह जो कुछ नाज़ दिखलाते थे, वह सब ठीक था; क्योंकि उसके चाचा खुदावन्दखाँ से इनकी बहन ब्याही हुई थी। साथ ही उसका पिता राजीअलीखाँ अकबर के दरबार में बहुत आना-जाना रखता था और वहाँ उसकी बहुत राह-रस्म थी। इसी लिये वह सुहेलखाँ दक्खिनी की चढ़ाई में खानखानाँ के साथ गया था और वहाँ बहुत वीरतापूर्वक लड़ कर युद्ध-क्षेत्र में मारा गया था।

अब्बुलफजल स्वयं लिखते हैं कि बहुत से अमीरों को इस चढ़ाई का काम मेरे सपुर्द होना अच्छा नहीं लगा। उन्होंने आपस में मिल कर ऐसा पेच मारा कि उनकी बातों में आकर मेरे पुराने पुराने साथी मुझ से अलग हो गए। विवश होकर मैंने नई सेना की व्यवस्था की। भाग्य सहायक था। बहुत सा लश्कर जमा हो गया। अशुभचिन्तकों ने भर्त्सना की जाली लगा कर मुझसे कहा कि यह क्या करते हो, इसमें धोखा खाओगे। लेकिन मैं अपने विचार और कार्य से न हटा। वे उपद्रव खड़ा होने की आशा में आँखें खोले ही रहे और मैं शाहजादे की छावनी से तीस कोस पर जा पहुँचा। वहाँ तेज चलनेवाले पत्रवाहक मिरजा यूसुफखाँ आदि शाहजादे के लश्कर से पत्र लेकर पहुँचे कि विलक्षण रोग ने घेर लिया है। सबको छोड़ कर अकेले तुरन्त यहाँ पहुँचो। सम्भव है कि हकीमों को बदल देने से कुछ लाभ हो और छोटे-बड़े सब नष्ट होने से बच जायँ। यद्यपि दरबारियों की ओर से मेरा मन सन्तुष्ट नहीं था और साथी भी रोकते थे, पर मैंने सब को शैतानों का मिथ्या विश्वास समझा और जितनी शीघ्रता से हो सका, आगे बढ़ा। सारी चिन्ता यही थी कि मैं अपना जीवन सम्राट् के काम में खपा दूँ और मौखिक निष्ठा को कार्य रूप में परिणत करके दिखला दूँ। देवलगाँव पहुँच कर और भी तीर हो गया और सन्ध्या होते होते वहाँ जा पहुँचा। वहाँ मैंने वह दृश्य देखा जो किसी को न देखना पड़े। अवस्था चिकित्सा की सीमा से आगे बढ़ चुकी थी। साथ में आदमी तो बहुत अधिक थे, पर सब व्यग्र और चिन्तित थे। किसी को कुछ सूझता न था। सरदारों का यह

विचार था कि शाहज़ादे को लेकर शाहपुर लौट चलो। मैंने कहा कि इस समय सभी छोटे-बड़ों के दिल टूट रहे हैं। विलक्षण वलवा सा हो रहा है। शत्रु पास है और देश पराया है। ऐसी अवस्था में यहाँ से चलना मानों जान-बूझ कर आफत का शिकार होना है। इस बात-चीत में शाहज़ादे की विकलता और भी बढ़ गई। अवस्था और भी खराब हो गई और शाहज़ादे का शरीरान्त हो गया। कुछ लोग तो बद-नीयती से, कुछ लोग असबाब सँभालने की चिन्ता में और कुछ लोग बाल-बच्चों की रक्षा के विचार से अलग हो गये। पर इस विकट विपत्ति के समय भी ईश्वर ने मेरी सहायता की और मैं हिम्मत न हारा। जो कुछ कर्त्तव्य था, उसी में लग गया। रथी को स्त्रियों समेत शाहपुर भेज दिया और उस यात्री को वहीं गड़वा दिया। कुछ लोग पुरानी छावनी से निकल कर उपद्रव करने लगे। उन लोगों को जितना ही दबाने का प्रयत्न किया गया, उतना ही उनका दिमाग और खराब होता गया। इसी बीच में मेरी वह सेना आ पहुँची जो पीछे रह गई थी। वह तीन हज़ार से अधिक थी। अब मेरी बात और भी चमकी। जो लोग सीधी तरह से बात करने पर टेढ़े चलते और लड़ते थे, वे अब मानने की बात पर कान धरने लगे। लेकिन छोटे से बड़े तक सब का यही विचार था कि यहाँ से लौट चलना चाहिए। उन्होंने मुनइमखाँ के मरने की, बंगाल के विद्रोह की, शहाबउद्दीन अहमदखाँ के गुजरात से निकल आने की, और इस देश के उपद्रवों तथा उत्पातों की बातें अलग अलग रंग से सुनाईं। मेरी प्रवृत्ति स्वयं परमात्मा की ओर थी और आँखें बादशाही प्रताप के प्रकाश से

प्रकाशित थीं। इसलिये जो बात सारे संसार को अच्छी लगती थी, वह मुझे बुरी जान पड़ती थी। बहुत से दुष्ट विचारोंवाले लोग अलग हो गए। मैंने वास्तविक काम बनानेवाले परमात्मा की ओर दृष्टि रखी और आगे ही बढ़ने का विचार किया। दक्षिण पर विजय प्राप्त करने के लिये झंडा आगे बढ़ाया। इस बढ़ने से लोगों के मन में कुछ और ही बल आ गया। सीमा पर के लोगों को उपकृत और कृतज्ञ ही कर रखा था। उन्हें तथा इस देश के बहुत से रक्षकों को दबाए रखने के लिए जोरदार पत्र लिख भेजे। दरिद्रों की ओर से हाथ रोके। शाहजादे के खजाने में जो कुछ हुजूर की सेवा में भेजने योग्य नहीं था, जो कुछ अपने पास था और जो कुछ ऋण मिल सका, वह सब कुछ निछावर कर दिया। जो लोग चले गए थे, वे भी थोड़े समय में लौट आये और फिर सब काम जोरों से होने लगा। शाहजादे के कुल इलाके का प्रबन्ध अच्छी तरह हो गया। हाँ, नासिक का रास्ता भी खराब था और वह स्थान भी दूर था; इसलिये वहाँ देर में समाचार पहुँचा और वहाँ के लोग न आ सके। जब शाहजादे की मृत्यु का समाचार वहाँ पहुँचा, तब वहीं का शासक देश का सब काम करता था। उसने निराश होकर सेना को तितर-बितर कर दिया। जिन लोगों को मैंने भेजा था, उन्होंने साहस से काम नहीं लिया। इसलिये जो देश हाथ से निकल गया था, वह तो न आ सका। हाँ, और बहुत से इलाके सम्मिलित हो गये।

अकबर के प्रताप ने आकर इस घटना की भविष्यद्वाणी कर दी होगी, इसी लिये उसने पहले से शेख अब्बुलफजल को भेज

दिया था। यदि शेख वहाँ न जा पहुँचते और उस दशा में शाहजादे की मृत्यु हो जाती तो सारी सेना नष्ट हो जाती। सब देशों में बड़ी बदनामी होती और ऐसी कठिनाइयाँ उपस्थित होतीं कि बरसों में भी देश न सँभलता। सम्राट् के पार्श्ववर्त्तियों ने मेरे निवेदन न सुने और दुष्ट उद्देश्य से शाहजादे के मरने का समाचार छिपाया। यदि बादशाह को इस दुर्घटना का समाचार मिल जाता तो वह तुरन्त सेना और कोष भेज देता। मैं तो ईश्वर के दरबार में अपना निवेदन कर रहा था और कृपालु सम्राट् की मुझ पर कृपा नित्य बढ़ती जाती थी। सेना का ऐसा प्रबन्ध हो गया जिसका लोगों को सहज में अनुमान भी न हो सकता था। दूर और पास के लोग चकित हो गए। ईश्वर की महिमा का ज्ञान होना मनुष्य की शक्ति के बाहर है। भला मुझ दुर्बल से क्या हो सकता है!

दरबार में जो लोग मेरे सम्बन्ध में व्यंग्य-वचन कहते थे और उलटी-सीधी बातें बनाते थे, उन्हें मौन और पश्चात्ताप ने दबा लिया। अशुभचिन्तक लोग अनेक प्रकार की झूठी बातें बनाते थे और कहते थे कि बादशाह ने स्वयं जान-बूझकर शेख को दरबार से दूर फेंक दिया है। पर उस वास्तविक काम बनानेवाले परमात्मा ने इसी को मेरा सिर ऊँचा करने का साधन बना दिया और उन लोगों को सदा के लिये लज्जा के घर में बैठा दिया। मैं युद्ध की व्यवस्था करने लगा। सुन्दरदास को सेना देकर तुलतुम के क़िले पर भेजा। उसने बुद्धिमत्ता से वहाँ के कुछ निवासियों को बुलाया। उन्हीं में से एक जाकर किलेदार को अपने साथ ले आया। थोड़ी ही रगड़-झगड़ में किला हाथ आ गया।

सोईद्बेग और मेरा पुत्र दोनों कारागार में थे। थोड़े ही दिनों में बादशाह ने मेरे पुत्र को भी दक्षिण की चढ़ाई में सम्मिलित होने के लिए नियुक्त करके दौलताबाद भेजा। क़िलेवाले ने लिखा कि यदि आप पक्का वचन दें और हमारा सन्तोष हो जाय कि हमारा माल-असबाब न छीना जायगा तो हम किले की चाभियाँ दे देते हैं। इसका भी प्रबन्ध हो गया। कुछ हब्शी और दक्खिनी उपद्रवी इधर के इलाके में थे। अपने पुत्र अब्दुर्रहमान को पन्द्रह सौ सवार अपने और उतने ही बादशाही सवार देकर उन लोगों को दमन करने के लिये भेजा। जब शाहज़ादे की मृत्यु का समाचार फैला, तब मैंने मिरज़ा शाहरुख को बुलाया। ऐसी दुर्घटनाएँ होने पर लोग हजारों हवाइयाँ उड़ाते हैं; इसलिये ईश्वर जाने मिरज़ा क्या सोच कर रह गए। मुझे तो मिरज़ा से यह आशा थी कि यदि आज्ञापत्र न भी पहुँचेगा और समय आ पड़ेगा तो वह बेचैन हो कर आप ही मेरी सहायता के लिये आ पहुँचेंगे। लेकिन वह कहनेवालों की बातों में आ गए। जब बराबर क्रोधयुक्त आज्ञापत्र पहुँचे और अन्त में बादशाह ने हुसैन सजावल को भेजा, तब विवश होकर उन्होंने भी अपने स्थान से प्रस्थान किया। अब वे भी आकर शाही सेना में सम्मिलित हो गए। मैं स्वागत कर के डेरों में ले आया। ऐसे वीर और सच्चरित्र रत्न के आने से दिल खुल गया। शेर ख्वाजा नामक पुराना अनुभवी सरदार सुलतान मुराद के साथ एक सेना का अफसर होकर गया था और सीमा पर वीर नामक परगने की रक्षा कर रहा था। वर्षा ऋतु आई। समाचार मिला कि दक्खिनियों ने सेनाएँ एकत्र करना आरम्भ किया है और

अम्बर तथा फरहाद पाँच हजार हब्शी तथा दक्खिनी सवार और साठ मस्त हाथी लेकर आनेवाले हैं। शेर ख्वाजा के पास केवल तीन हजार सेना थी। लेकिन वह आप ही निकल कर और नगर से कई कोस आगे बढ़ कर शत्रु पर जा पड़ा। लेकिन उसके पास सेना कम थी, इसलिये वह लड़ता-भिड़ता पीछे हटा और किले में बन्द होकर बैठ गया। उस युद्ध में वह घायल भी हो गया था। लेकिन फिर भी यह समाचार फैल गया कि उसने शत्रु को परास्त कर दिया। उसने मेरे पास भी पत्र भेजा था। मैंने और सेना भेज दी। जब यह समाचार पहुँचा, तब मन्त्रणा के लिये सभा हुई। किसी की सम्मति नहीं थी। पानी मूसल-धार बरस रहा था। उसी समय मैं बिना सेना आदि लिए अकेला चल पड़ा। लश्कर की व्यवस्था शाहरुख के सुपुर्द कर दी। अपने पुत्र शेख अब्दुर्रहमान को दौलताबाद से बुलाया और कहा कि गंग नदी के तट पर जाओ और सैनिकों को समेटो। कहीं मैं और कहीं मेरा लड़का, दोनों जगह-जगह चौकियाँ जमाते फिरते थे। उद्देश्य यह था कि आगे का काम चलता रहे और पीछे की ओर से निश्चिन्त रहें। बादशाही सर-दारों में कोई अच्छा साहसी दिखाई नहीं पड़ता था। मिरजा यूसुफखाँ बीस कोस पर थे। मैं अकेला उधर चल पड़ा। रात के समय वहाँ पहुँच कर उसे भी सहायता के लिये प्रस्तुत किया। इधर-उधर की सेनाओं को समेट कर साथ लिया। लश्कर की अवस्था ठीक करके आगे बढ़ा। गोदावरी नदी चढ़ाव पर थी। परन्तु सौभाग्यवश वह सहसा आप ही उतर गई। सेना पैदल ही चल कर पार उतर गई। शत्रु की जो सेना नदी किनारे

पड़ी थी, वह हरावल की झपट में आ गई। दूसरे दिन लश्कर बीर के किले के चारों ओर से भी उठ गया। मैंने ईश्वर को अनेकानेक धन्यवाद दिए और खुशी के जलसे किए। गंग नदी के तट पर छावनी डाली। अब उस देश में आतंक छा गया। जब अकबर ने देखा कि यहाँ के सरदारों से दक्षिण का युद्ध नहीं सँभलता, तब उसने दानियाल को और सेना देकर भेजा। साथ ही खानखानाँ को शिक्षक का मन्सब दिया *।

अब्बुलफजल लिखते हैं कि उसी दिन बड़े शाहजादे सलीम अर्थात् जहाँगीर को अजमेर का सूबा देकर राणा पर चढ़ाई करने का काम उसके सपुर्द किया। सम्राट् को उससे बहुत प्रेम है और वह प्रेम निरन्तर बढ़ता ही जाता है। परन्तु वह मद्यप है और उसे अच्छे-बुरे का ज्ञान नहीं है। कुछ दिनों तक बादशाह ने उसे अपनी सेवा में उपस्थित होकर सलाम करने से रोक दिया था। लेकिन मरियम मकानी के सिफारिश करने पर सलाम करने की आज्ञा मिल गई। उसने फिर वचन दिया कि मैं ठीक मार्ग पर चलूँगा और साम्राज्य की सेवा करूँगा। बादशाह मालवे में जाकर शिकार खेलने लग गए जिसमें चारों ओर जोर रहे। खानाखानाँ को दानियाल के साथ रहने के लिये भेज दिया। साथ ही यह भी आज्ञा दे दी कि जिस समय खानखानाँ वहाँ पहुँचे, उस समय अब्बुलफजल दरबार के लिये प्रस्थान करे। मैंने बहुत खुशियाँ मनाईं और इसी बीच में तबाले का किला जीत लिया।

---

* विशेष बातें जानन के लिये खानखानाँ का प्रकरण देखो।

अकबर को समाचार मिला था कि बड़ा शाहज़ादा मार्ग में विलम्ब कर रहा है। इसलिये उसने भी अब्दुलअही मीर-अदल को अनेक प्रकार के उपदेश देकर भेजा। मैं अहमद-नगर की ओर चल पड़ा। बुरहान-उल्-मुल्क की बहन चाँद बीबी अब उसके पोते बहादुर को दादा का उत्तराधिकारी बनाकर सामना करने के लिये तैयार हुई। कुछ सेना ने उसकी अधीनता स्वीकृत कर ली। आभंगखाँ बहुत से उपद्रवी हबशियों को साथ लिए हुए उस बालक को बादशाह मानता था। पर साथ ही वह चाँद बीबी के प्राण लेने की चिन्ता में था। वह बेगम बादशाही अमीरों के पास खुशामद के सँदेसे भेजा करती थी। साथ ही उधर दक्खिनियों से भी मित्रता की बातें करती थी। मुझसे भी वह उसी प्रकार की बातें करने लगी। मैंने उत्तर दिया कि यदि तुम दूरदर्शिता तथा बुद्धिमत्तापूर्वक आकर बादशाही दरबार के साथ सम्बद्ध हो जाओ तो इससे अच्छी और कौन सी बात हो सकती है। सब शर्तें तै करने और पक्का वचन देने का भार मैं अपने ऊपर लेता हूँ। और नहीं तो व्यर्थ बातें करने से कोई लाभ नहीं और आगे से बात-चीत बन्द। उसने शुभचिन्तक समझ कर मित्रता का बन्धन दृढ़ किया। सच्ची शपथों के साथ अपने हाथ का लिखा निश्चय-पत्र भेजा। उसमें लिखा था कि जब तुम आभंगखाँ को परास्त कर लोगे, तब मैं किले की कुंजियाँ तुम्हारे सपुर्द कर दूँगी। लेकिन इतना है कि दौलताबाद मेरी जागीर रहे। साथ ही यह भी आज्ञा हो कि मैं कुछ दिनों तक वहीं जाकर रहूँ। जब चाहूँ, तब दरबार में उपस्थित होऊँ। बहादुर को दरबार में भेज दूँगी। मुझे दुःख है कि साथियों के

सहायता न देने से काम में देर हो गई। शाहगढ़ में लश्कर देर तक पड़ा रहा और शाहजादे के आने में बहुत विलम्ब हुआ। आभंगखाँ की अशुभ-चिन्तना और भी बढ़ गई। उसने शमशेर-उल्-मुल्क को, जिसके वंश में बरार का शासन था, कैदखाने से निकाल कर सेना को साथ लिया और दौलताबाद से होता हुआ वह बरार की ओर चल पड़ा। उसने सोचा था कि वहाँ शाही सेना की सब सामग्री और बाल-बच्चे हैं। यह लोग घबरायँगे और लश्कर में खलबली मच जायगी। मुझे तो पहले से ही इसकी खबर थी। मैं मिरजा यूसुफखाँ आदि को सेना देकर उधर भेज चुका था। परन्तु वे लोग निश्चिन्त होकर मधुर स्वप्न देखते रहे। उसने बरार प्रदेश में पहुँच कर खलबली मचा दी। बहुत से रक्षकों के पैर उखड़ गए। बहुत से लोग प्रेम से विह्वल होकर बाल-बच्चों की रक्षा करने के लिये उठ दौड़े। मैंने उधर सेना भेजी और स्वयं अहमदनगर की ओर चल पड़ा कि बाहर के उपद्रवियों की गरदन दबाऊँ और चाँद बीबी की बात का खरा-खोटा देखूँ। एक ही पड़ाव चले थे कि शत्रुओं ने सब ओर से सिमट कर अहमदनगर की रक्षा के लिये उधर प्रस्थान किया। लेकिन अकबर के प्रताप ने खबर उड़ा दी कि शमशेर-उल्-मुल्क मर गया। यूसुफखाँ भी चौंक कर दौड़े। कई सरदारों को आगे बढ़ा दिया। उन्होंने दम न लिया। मारामार चले गए। रात के समय एक जगह जा पकड़ा। बड़ी हलचल मची। उसी अवस्था में शमशेर-उल्-मुल्क मारा गया और विजय का डंका बजा।

युद्ध विजय के मार्ग पर चल रहा था। लश्कर गंग

नदी के तट पर मेंग-पटन नामक स्थान में था। इतने में शाहजादे की आज्ञाएँ निरन्तर पहुँचने लगीं कि तुम्हारा परिश्रम पास और दूर सब जगह के लोगों को विदित हो गया है। हम चाहते हैं कि हमारे सामने अहमदनगर फतह हो। तुम अपना विचार छोड़ दो। अब हमें मार्ग में विलम्ब न होगा। यहाँ लश्कर में एक नया उपद्रव खड़ा हुआ। जब शाहजादा बुरहानपुर पहुँचा, तब बहादुरखाँ आसीर के किले से नीचे न उतरा। शाहजादे ने चाहा कि उस उद्दंड की गरदन मसल डाले। मिरजा यूसुफखाँ अहमदनगर के युद्ध-क्षेत्र में था। वह और आगे बढ़ना चाहता था। उसे भी बुला लिया। यह देखकर और लोगों ने भी उधर का ही रुख किया। बहुत से सरदार बिना आज्ञा के भी उठ दौड़े। जो शत्रु अब तक मन ही मन काँप रहा था, वह अब शेर हो गया। कई बार उसने रात के समय छापे मारे। बहादुरों ने खूब दिल लड़ाए और अच्छी धकापेल की। ईश्वर ने रक्षा की जिससे बराबर विजय पर विजय होती गई और शत्रु तितर-बितर हो गए। अब आभंगखाँ ने नम्र बन कर खुशामद करना शुरू किया।

अहमदनगर

अकबर के पास दानियाल और बहादुरखाँ के सम्बन्ध के सब समाचार पहुँचे। (कदाचित् अब्बुलफजल ने भी लिखा होगा कि शाहजादा लड़कपन करता है। अहमदनगर का बनता हुआ काम बिगड़ जायगा। आसीर का काम तो हुजूर जब चाहेंगे, बना-बनाया है ही।) शाहजादे के नाम आज्ञापत्र निकला कि

अहमदनगर पर चढ़े चले जाओ। बहादुरखाँ का न आना उद्दंडता के कारण नहीं है। इस मामले को हम समझ लेंगे। शाहजादा चल पड़ा। बादशाह आगे बढ़े। बहादुरखाँ ने अपने पुत्र कबीरखाँ को कुछ खवासों के साथ हुजूर की सेवा में भेजकर अच्छे अच्छे उपहार भेंट किए। यद्यपि अमीरों का आना-जाना बराबर हो रहा था और उसे लिखा भी जा रहा था, तथापि वह स्वयं सेवा में उपस्थित न हुआ। विवश होकर उस पर चढ़ाई करने की आज्ञा दी गई। अब्बुलफजल के पास आज्ञापत्र पहुँचा कि सेना की व्यवस्था मिरजा शाहरुख को सौंप कर बुरहानपुर में चले आओ। यदि बहादुरखाँ उपदेश मान कर साथ दे तो उसे पिछले अपराधों की क्षमा का सुसमाचार सुनाकर साथ ले आओ। नहीं तो शीघ्र सेवा में उपस्थित हो, क्योंकि कुछ परामर्श करना है।

जब ये बुरहानपुर के पास पहुँचे, तब बहादुरखाँ आकर मिला। वह उनके उपदेश सुन कर साथ चलने को प्रस्तुत हो गया। लेकिन घर जाकर फिर बदल गया। वहाँ से उसने कुछ ऊट-पटाँग उत्तर भेज दिया। ये आज्ञानुसार आगे बढ़े। यहाँ नौरोज के जशन की धूमधाम हो रही थी। रात का समय था। परियाँ नाच रही थीं। गवैए तान ले रहे थे। तारों भरे आकाश और चाँदनी रात की बहार थी। पास ही फूलों से भरा चमन था। दोनों के मुकाबले हो रहे थे। शुभ मुहूर्त में पहुँच कर बादशाह के चरणों के आगे सिर रख दिया। अकबर के हृदय के प्रेम का इसी से अनुमान कर लेना चाहिए कि उसने उसी समय यह शैर पढ़ा—

فرخندہ شبی باید وخوش مہتابی –
تا با تو حکایت کنم از ہر بابی –

अर्थात्—रात हँस पड़े और चन्द्रमा प्रसन्न हो (अर्थात् सुहावनी और चाँदनी रात हो) जिसमें मैं तुझसे प्रत्येक विषय में बातें करूँ ।

शेख इसके धन्यवाद में बहुत देर तक उसी प्रकार चुपचाप खड़े हैं । खान आजम शेख, फरीद बखशी बेगी को और उन्हें आज्ञा हुई कि आसीर की जागीर को घेर लो और उस पर मोरचे लगा दो । शीघ्र ही इस आज्ञा का पालन हो गया । शेख फरीद अपनी सेना की कमी और शत्रु की सेना की अधिकता के विचार से दूरदर्शिता करके तीन कोस पर थम गए । लेकिन कुछ उच्च दृष्टिवाले लोगों ने (सम्भवतः खान आजम से अभिप्राय है) शिकायत की जिससे हुजूर मन में कुछ दुःखी हुए । जब शेख सेवा में आए और उन्होंने वास्तविक समाचार सुनाया, तब बादशाह का चित्त शान्त हो गया । उसी दिन अब्बुलफजल को चार-हजारी मन्सब और खानदेश प्रान्त का प्रबन्ध दिया गया । उन्होंने जगह-जगह आदमी बैठाए । एक ओर अपने भाई शेख अब्बुल बरकात को बहुत से बुद्धिमानों के साथ भेजा और दूसरी ओर अपने पुत्र शेख अब्बुर्रहमान को । बादशाही सेवकों के साहस ने थोड़े ही समय में उद्दंडों की गरदने खूब मसल दीं । बहुतों ने आज्ञा-पालन का सुख भोगा । सेना ने अधीनता स्वीकृत की । जमींदारों को सन्तोष हो गया और उन्होंने अपने अपने खेत सँभाले ।

अब्बुलफजल ने बादशाह की कृपाओं और अनुग्रहों तथा

अपनी योग्यता और बुद्धिसत्ता से अपने लिये ऐसी पहुँच कर ली थी कि उसके उपायों और लेखों की कमन्दों ने इलाकों के हाकिमों को खींच कर दरबार में उपस्थित कर दिया। भाई और बेटा खान्देश प्रदेश में घोर परिश्रम कर रहे थे। बादशाह ने शेख को चार-हजारी मन्सब देकर उसकी प्रतिष्ठा बढ़ाई। सफदर अलीखाँ, जो राजी अलीखाँ का पोता और शेख का भान्जा था, बादशाह के बुलाने पर आगरे से चल कर उसकी सेवा में उपस्थित हुआ। वह खानदानी सरदार था, इसलिये उसे हजारी मन्सब प्रदान किया गया और यह सोचा गया कि इसके कारण देश में अच्छा प्रभाव उत्पन्न होगा। अब्बुलफजल को प्रबन्ध के लिये जहाँगीर के इलाके से बड़ा इलाका मिला था। अकबर-नामे का अध्ययन करने से लोगों के मन के हाल जगह-जगह खुलते हैं। इस युद्ध में जो घटना घटी थी, यहाँ केवल उसके विवरण का अनुवाद दे दिया जाता है। शेख स्वयं लिखते हैं—"इस वर्ष साम्राज्य में जो बड़ी बड़ी घटनाएँ हुई, उनमें सब से बड़ी घटना शाहजादे की अयोग्यता और अनुचित आचरण है। वह राणा उदयपुर के कान उमेठने के लिये भेजा गया था। लेकिन उसने आनन्द-मंगल, मद्य-पान और बुरे लोगों के साथ में कुछ समय अजमेर में ही बिता दिया। फिर उदयपुर को उठ दौड़ा। उधर से राणा ने आकर हलचल मचा दी और बसे हुए स्थान लूट लिए। माधवसिंह को सेना देकर उधर भेजा। राणा फिर पहाड़ों में घुस गया और लौटती हुई सेना पर उसने रात के समय छापा मारा। बादशाही सरदार अड़े, परन्तु क्या हो सकता था। विफल होकर लौट आए। यह कार्य अच्छी तरह

से होता हुआ न दिखाई दिया। मुसाहबों के कहने से शाहजादे ने इसलिये पंजाब जाने का विचार किया कि वहाँ चलकर मन के हौसले निकाले जायँ। अचानक समाचार मिला कि बंगाल में अफगानों ने उपद्रव मचाना आरम्भ कर दिया है। राजा मान-सिंह ने उधर का मार्ग दिखलाया। उस चढ़ाई को अपूर्ण छोड़ कर चढ़ दौड़ा। आगरे से चार कोस ऊपर चढ़ कर जमना पार उतरा। मरियम मकानी को सलाम करने भी न गया। इन चालों से वह दुःखी हुई। फिर भी प्रेम के मारे आप पीछे गईं। सोचा कि सम्भव है कि आज्ञाकारिता के मार्ग पर आ जाय। उनके आने का समाचार सुनते ही शाहजादा शिकारगाह से नाव पर बैठा और झट नदी के मार्ग से आगे बढ़ गया। वह निराश होकर लौट आई। उसने इलाहाबाद पहुँच कर लोगों की जागीरें जब्त कर लीं। बिहार का खजाना तीस लाख से भी अधिक था। वह ले लिया और बादशाह बन बैठा। बादशाह को उसके साथ असीम प्रेम था। कहनेवालों ने वास्तविक से भी अधिक बातें बनाईं और लिखनेवालों ने प्रार्थना-पत्र भेज कर सम-झाईं। परन्तु पिता को किसी बात पर विश्वास न हुआ। आज्ञा-पत्र भेज कर उससे समाचार पूछा तो उसने अपनी राजनिष्ठा की एक लम्बी-चौड़ी कहानी लिख भेजी और कहा कि मैं निर्दोष हूँ और सेवा में उपस्थित होता हूँ।"

इस बीच में अब्बुलफजल निरन्तर अपना काम कर रहे थे। बहादुरखाँ और उसके सरदारों को बराबर पत्र लिखते थे जिनका कहीं थोड़ा और कहीं पूरा प्रभाव प्रकट होता था। एक अवसर पर अपने प्रिय सम्राट् के सम्बन्ध में लिखते हैं—

"लाल बाग में आकर विश्राम किया। उस बाग की शोभा वर्णन करने का काम इस लेखक के सपुर्द था। मैं देर तक नम्रता तथा अधीनतापूर्वक धन्यवाद देता रहा। मेरे लिये आज्ञा-कारिता तथा सेवकों के उपर्युक्त आचरण करने के द्वार खुले।"

आसीर की विजय

आसीर * पर्वत के ऊपर एक बहुत अच्छा और मजबूत किला है। ऊँचाई और मजबूती में और कोई किला उसकी समता नहीं कर सकता। उत्तर की ओर पर्वत के बीच में माली का किला है। जो आसीर के उस अनुपम और अद्भुत किले में जाय, वह इस किले में से होकर जाय। इस किले के उत्तर में छोटी माली है। इसकी थोड़ी सी दीवार तो हाथ की बनाई हुई है और बाकी पहाड़ की धार दीवार बन गई है। दक्षिण में ऊँचा पहाड़ है जिसका नाम करदह है। इसके पास की पहाड़ी साँपिन कहलाती है। विद्रोहियों ने प्रत्येक स्थान को तोपों और सैनिकों से दृढ़ कर रखा था। वे अदूरदर्शी सोचते थे कि यह टूट न सकेगा। अनाज मँहगा, मंडियाँ दूर, अकाल से सब लोग दुःखी हो रहे थे। उधर किलेवालों ने आस-पास के लोगों को धन देकर फुसला लिया था।

बादशाही सरदार अपने अपने मोर्चों से आक्रमण करते थे, पर शत्रु पर कुछ भी प्रभाव न पड़ता था। शेख ने एक पहाड़

---

* यह किला आसा अहीर का बनवाया हुआ है जो किसी समय में बड़ा साहसी और विजयी वीर था। वह असंख्य धन-सम्पत्ति और कोष उस किले की नींव में दबाकर संसार से उठ गया था।

की घाटी से एक ऐसे चोर रास्ते का पता लगाया जहाँ से अचानक माली की दीवार के नीचे जा खड़े हों। बादशाह से निवेदन करके आज्ञा ले ली। जो अमीर घेरे में परिश्रम कर रहे थे, उन सबसे मिल कर निश्चय किया कि अमुक समय में आक्रमण करूँगा। जब नगाड़े और करनाय का शब्द सुनाई पड़े, तब तुम सब लोग भी नगाड़े बजाते हुए निकल पड़ना। सब लोगों ने विवश होकर यह बात मान तो ली, पर बहुतों को यह बात कहानी सी ही जान पड़ी।

एक दिन बहुत अँधेरी रात थी और वर्षा हो रही थी। कुछ विशिष्ट सिपाहियों की टोलियाँ बना कर अपने साथ ले लीं और धीरे-धीरे साँपिन पहाड़ी पर चढ़ते रहे। पिछली रात के समय सेना ने उसी चोर रास्ते से होकर माली का द्वार जा तोड़ा। बहुत से साहसी वीर किले में घुस गए और वहाँ नगाड़े तथा करनाय बजाने लगे। यह सुनते ही अब्बुलफजल स्वयं दौड़े। पौ फटने के समय सब लोग वहाँ जा पहुँचे। अब्बुलफजल दूसरी ओर से रस्से डाल कर सब से पहले आप किले में जा कूदे। फिर और वीर भी च्यूँटियों की तरह पंक्ति बाँध कर चढ़ गए। थोड़ी ही देर में सब शत्रु नष्ट हो गए। वहाँ से शेख आसीर के किले की ओर चल पड़े, क्योंकि माली पर अधिकार हो ही गया था। इस पराजय के कारण बहादुरखाँ का साहस जाता रहा। उधर से समाचार आया कि दानियाल और खानखानाँ ने अहमदनगर जीत लिया। सब से बड़ी कठिनता यह हुई कि किले में बीमारी फैल गई और अनाज के खेत ऐसे सड़ गए कि मनुष्यों का तो कहना ही क्या, पशु तक मुँह न

डालते थे। प्रजा और सरदार सब के जी छूट गए। कुछ समय तक आगा-पीछा होता रहा। अन्त में उन्होंने घबरा कर आसीर का किला भी सौंप दिया। यह घटना सन् १००९ हि० (सन् १६०१ ई०) की है।

सुलतान बहादुर गुजराती के गुलामों या दासों में से एक पुराना बुड्ढा था जो सुलतान का अधिकार और वैभव नष्ट हो जाने पर (हुमायूँ के शासन-काल के आरम्भ में) यहाँ आ बैठा था। किले की कुंजियाँ उसी के सपुर्द थीं। अब वह अन्धा हो गया था। उसके कई जवान लड़के थे। चौकसी के बुर्ज उनमें से एक एक के हवाले थे। जब उसने सुना कि किला शत्रुओं को सौंप दिया गया, तब उसने प्राण त्याग दिए। अब जरा उसके पुत्रों का साहस देखिए। पिता की मृत्यु का समाचार सुन कर वे बोले कि अब इस राज-लक्ष्मी का प्रताप नष्ट हो गया। अब जीवित रहना निर्लज्जता-पूर्ण है। यह कह कर उन सब ने भी अफीम खा ली। नासिकवालों ने पहले तो शरण माँगी थी, पर अमीरों की उदासीनता के कारण वे भी बलवान् होते गए और उनका विषय भी एक विकट प्रश्न बन गया। खानखानाँ को अहमदनगर और उन्हें अच्छी खिलअत और खासे का घोड़ा और झंडा तथा नगाड़ा देकर उधर रवाना किया।

इधर तो अकबर का प्रताप देशों पर विजय प्राप्त करने में अद्भुत चमत्कार दिखला रहा था, उधर शुभचिन्तकों के निवेदन-पत्र तथा मरियम मकानी का पत्र आया कि जहाँगीर खुल्लम-खुल्ला विद्रोही हो गया। बादशाह ने सब काम उसी प्रकार छोड़े और अमीरों को सेवाएँ सौंप कर आप उधर चल पड़ा।

नासिक का झगड़ा आरम्भ हो गया था। जब उन्हें बाद-शाह का आज्ञापत्र पहुँचा कि खानखानाँ के साथ जाओ, तब वे चकित रह गए। यहाँ तो उन्होंने बहुत से वीरों को समेटा था। नासिक का किला और विद्रोहियों की गरदन टूटना चाहती थी; ईश्वर जाने, जो बहाने बनानेवाले बादशाह की सेवा में उपस्थित थे, उन्होंने (अर्थात् खानखानाँ के पक्षपातियों ने) बादशाह की मति बदल दी या उन्हें वास्तविक बातों का पता न लगा। खान-खानाँ का पक्षपात सीमा से बढ़ गया जो मुझे यहाँ से बुला लिया। विवश होकर अपने पुत्र अब्दुर्रहमान को वहाँ का काम सौंप कर बादशाह की आज्ञा का पालन किया। जब यहाँ पहुँचे, तब खानखानाँ कभी तो उन्हें मन्त्रणा और परामर्श में रखते थे, कभी किसी उद्दंड को दबाने के लिये और कभी किसी दक्खिनी सरदार को डराने-धमकाने के लिये भेजते थे। शेख मन में तो दुःखी थे, परन्तु उनकी प्रकृति ही कुछ ऐसी थी कि बाद-शाह की आज्ञाओं का पालन इस प्रकार करते थे कि मानों स्वयं अपनी इच्छा से ही कर रहे हैं। उनका हृदय धैर्य का पर्वत था और साहस किसी बहुत बड़े नद के समान था। यहाँ भी आज्ञा-पालन को अपना कर्त्तव्य समझ कर समय की प्रतीक्षा करते थे।

यह दुनिया भी बहुत ही विलक्षण और चालबाज है। यह धर्मनिष्ठ व्यक्ति को भी नास्तिक बना देती है। पहले शेख और खानखानाँ में इतनी अधिक मित्रता थी कि यदि दोनों के पत्र-व्यवहार देखे जायँ तो ऐसा मालूम होगा कि मानो प्रेमी और प्रेमिका के पत्र हैं। जब दोनों का मामला इस बूढ़ी दुनिया पर आ पड़ा तो ऐसे बिगड़े कि सब भूल गए।

शेख और उनका पुत्र दोनों ही बुलाए जाने पर भी अकबर के दरबार में अपनी बुद्धिमत्ता और वीरता से ऐसे ऐसे काम करते थे कि देखनेवाले चकित हो जाते थे।

अकबर-नामे के ३६ सन् जलूसी के अन्त में एक स्थान पर कुछ ऐसी लिखावट मिलती है जो अच्छी तरह देखनेवाले को यह बतला देती है कि उस योग्य कार्यकर्त्ता को चाहे जो सेवा सौंपी जाय, परन्तु उसका आतंक कितना अधिक था।

लिखते हैं—"इस लेखक को नासिक की चढ़ाई पर भेजा। मार्ग में शाहज़ादे की सेवा का सौभाग्य प्राप्त किया। उन्होंने यह इच्छा प्रकट की कि हमारी सेवा में आ जाओ। मैंने भी स्वीकृत कर लिया। वही राज्य की चढ़ाई थी जिसकी आफत मेरे सिर रखना चाहते थे। मैंने उत्तर दिया कि मुझे श्रीमान् की आज्ञा का पालन करने में कोई आपत्ति नहीं है। परन्तु आप काम पर पूरा ध्यान नहीं देते। आपने ऐसा भारी काम कुछ लोभी अदूरदर्शियों पर छोड़ दिया है। जहाँ इतनी लापरवाही और संकुचित दृष्टि हो, वहाँ काम किस प्रकार चल सकता है? खैर; किसी प्रकार कुछ समझे। स्वयं सब काम करने का भार लिया और खिलअत तथा एक घोड़ा देकर मुझे उधर भेजा। जमधर और नामवर हाथी भी प्रदान किया।"

मोतमिदखाँ ने इकबालनामे में लिखा है कि सन् १००९ हि० (१६०१ ई०) में हथनाल सहित बीस हाथी और दस बढ़िया घोड़े पुरस्कार में मिले। सन् १०१० हि० में एक खासे का घोड़ा और उसके साथ एक घोड़ा अब्दुर्रहमान को भी प्रदान किया। इसके बाद बीस घोड़े फिर भेजे। एक घोड़ा शेख अब्बुलखैर

को भी प्रदान किया और कहा कि शेख को भेज दो। इसी सन् में शेख को पचास हजार रुपया पुरस्कार मिला। लेकिन इस प्रकार के पुरस्कारों की कोई सीमा नहीं थी, क्योंकि ऐसे पुरस्कार सदा मिलते रहते थे। इसी वर्ष शेख को पंज-हजारी मन्सब भी प्रदान किया गया। तात्पर्य यह कि लगभग तीन वर्ष इसी प्रकार दक्षिण में बीते। एक हाथ में झंडा और तलवार थी और दूसरे हाथ में कागज और कलम थी। सन् १०१० हि० के रमजान मास में वहीं अकबर-नामे का तीसरा खंड समाप्त किया होगा; और उसी से उनकी रचनाओं का अन्त भी हो गया।

इस अरस्तू ने अपने सिकन्दर के हृदय पर यह बात भली भाँति अंकित कर दी थी कि सेवक केवल श्रीमान् के व्यक्तित्व से ही सम्बन्ध रखता है। और वास्तव में यही बात थी भी। वह कहता था और सच कहता था कि आपकी शुभ कामना करना और आपके कामों के लिये अपने प्राण निछावर कर देना ही मेरा धर्म और कर्त्तव्य है। मैं इसी को सब कामों से बढ़ कर समझता हूँ। जिसकी बात होगी, स्पष्ट रूप से निवेदन कर दूँगा। मुझे अमीरों बल्कि शाहजादों से भी कोई मतलब नहीं है। शेख वास्तव में सदा ऐसा ही करते भी थे, इसलिये अकबर के हृदय में भी यह बात भली भाँति अंकित हो गई थी। सब शाहजादे और उनमें भी विशेषतः सलीम इन्हें अपना चुगली खानेवाला समझता था, और इसी लिये सब इनसे अप्रसन्न रहते थे। अकबर ने दक्षिण के युद्ध से लौटकर सलीम (जहाँगीर) के साथ ऊपर से देखने में अपना सम्बन्ध बिलकुल ठीक कर लिया था। सन्-१०११ हि० (१६०२ ई०) में फिर सलीम ने सीधा मार्ग

छोड़कर उलटे मार्ग पर चलना आरम्भ किया। इस बार वह ऐसा बिगड़ा कि अकबर घबरा गया। उसे इस बात का भी ध्यान था कि शाहजादा सलीम को अमीर लोग साम्राज्य का उत्तराधिकारी समझते हैं; इसलिये वे अवश्य ही अन्दर अन्दर उससे मिले होंगे। मानसिंह की बहन उससे ब्याही हुई थी, जिसके गर्भ से शाहजादा खुसरो उत्पन्न हुआ था। खान आजम की कन्या खुसरो से ब्याही हुई थी। इसलिये बादशाह ने अब्बुलफजल को लिखा कि युद्ध की सब व्यवस्था अपने पुत्र अब्दुर्रहमान को सौंप दो और तुम अकेले इधर चले आओ। अब्बुलफ़जल ने इसके उत्तर में बहुत ही धैर्यपूर्वक निवेदन-पत्र भेजा जिसमें लिखा था कि ईश्वर के अनुग्रह और आपके प्रताप से सब काम ठीक हो जायगा। चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं है। यह सेवक श्रीमान् की सेवा में उपस्थित हो रहा है।

इस प्रकार अब्बुलफजल ने अहमदनगर में अब्दुर्रहमान को युद्ध सम्बन्धी सब बातें समझा-बुझा कर लश्कर और सामान वहीं छोड़ दिया और स्वयं केवल उन आदमियों को लेकर चला, जिनके बिना काम नहीं चल सकता था। शेख से सलीम बहुत अप्रसन्न था। वह यह भी जानता था कि यदि शेख बादशाह की सेवा में पहुँच जायँगे, तो मेरी ओर से बादशाह और भी अप्रसन्न हो जायँगे। इसलिये वह इधर उधर के राजाओं और सरदारों से मिल कर ऐसे उपाय करने लगा जिसमें स्वयं उसका काम खराब न हो। जब उसने सुना कि शेख दक्खिन से अकेला चला है, तब उसने सोचा कि यह बहुत अच्छा अवसर है। उन दिनों राजा मधुकर शाह का पुत्र राजा नरसिंह-

देव, जो वीरसिंह देव जी उडेचा (ओड़छा) बुँदेला का सरदार था, डाके डाल कर अपना समय बिताता था। वह इस विद्रोह में शाहजादे के साथ था। सलीम ने उसे गुप्त रूप से लिख भेजा कि किसी प्रकार मार्ग में शेख को मार डालो। यदि ईश्वर की कृपा से मुझे राज-सिंहासन प्राप्त हुआ, तो तुम्हें यथेष्ट पुरस्कार और पद आदि से सम्मानित किया जायगा। वह बादशाही दरबार में बहुत अप्रतिष्ठित हुआ था, इसलिये उसने बहुत प्रसन्नता से यह सेवा स्वीकृत कर ली और दौड़ा हुआ अपने इलाके में जा पहुँचा।

जब शेख उज्जैन में पहुँचा, तब समाचार मिला कि राजा इस प्रकार इधर आया हुआ है। शेख के जान निछावर करने-वाले साथियों ने कहा कि हमारे साथ बहुत ही थोड़े आदमी हैं। यदि यह समाचार सत्य हो तो उसका सामना करना बहुत कठिन होगा। इसलिये अधिक उत्तम यह है कि यह मार्ग छोड़ कर चाँदे की घाटी से चलें। परन्तु शेख की मृत्यु आ चुकी थी, इसलिये उन्होंने ला-परवाही से कहा कि ये सब लोग बकते हैं। चोर में इतना साहस कहाँ जो बादशाह के सेवकों का मार्ग रोके!

सन् १०११ हि० के रबी उल् अव्वल मास की पहली तारीख थी। शुक्र का दिन और प्रातःकाल का समय था। शेख अपने पड़ाव से उठा। दो तीन आदमी साथ थे। बाग डाले, जंगल का आनन्द लेता हुआ, ठंढी-ठंढी हवा खाता हुआ और बातें करता हुआ चला जाता था। बरा की सराय वहाँ से आध कोस रह गई थी और अन्तरी का कस्बा तीन कोस था। सवार ने दौड़ कर निवेदन किया कि वह सामने धूल उड़ रही है और

इधर को ही आती हुई जान पड़ती है। शेख ने बाग रोकी और ध्यान से देखा। उसके साथ जान निछावर करनेवाला गदाईखाँ अफगान था। उसने निवेदन किया कि यह ठहरने का समय नहीं है। शत्रु बहुत वेग से आता हुआ जान पड़ता है। हमारे साथ आदमी बहुत थोड़े हैं। इस समय उचित यही है कि तुम धीरे-धीरे चले जाओ। मैं इन भाइयों और साथियों सहित यथा-साध्य प्रयत्न करके रोकता हूँ। हमारे मरते-मारते तक अवकाश है। यहाँ से अन्तरी कस्बा दो तीन कोस है। अच्छी तरह वहाँ पहुँच जाओगे। फिर भय की कोई बात न रह जायगी। राय-रायान और राजा राजसिंह दो तीन हजार आदमियों के साथ वहाँ उतरे हुए हैं। शेख ने कहा कि गदाईखाँ, बड़े आश्चर्य की बात है कि ऐसे अवसर पर तुम ऐसा परामर्श देते हो। जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर बादशाह ने मुझ फकीर को मसजिद के कोने से निकाल कर सदर मसनद पर बैठाया। मैं आज उनकी इस निशानी को मिट्टी में मिला दूँ और इस चोर के आगे से भाग जाऊँ, तो भला किस मुँह से और फिर किस प्रतिष्ठा से मैं अपने बराबरवालों के साथ बैठ सकूँगा? यदि जीवन समाप्त हो चुका है और भाग्य में मरना ही लिखा है, तो क्या हो सकता है? यह कहकर बहुत वीरता से घोड़ा उठाया। गदाईखाँ फिर घोड़ा मार कर आगे आया और बोला कि सिपाहियों को ऐसे मौके बहुत पड़ते हैं। यह अड़ने का समय नहीं है। पहले अन्तरी में जाओ और वहाँ से आदमियों को साथ लाकर फिर इनपर आक्रमण करो। अपना बदला चुकाना तो सिपाहियों का पेच है। परन्तु शेख की मृत्यु आ

चुकी थी, इसलिये वह किसी प्रकार न माना। यहाँ यह बातें हो रही थीं कि शत्रु लोग सिर पर आ पहुँचे। उन्होंने हाथ हिलाने का भी अवकाश न दिया। शेख बहुत वीरता से तलवार पकड़ कर डटा। कुछ अफगान साथ थे, जो जान निछावर करके कीर्तिशाली बने। शेख को यों तो कई घाव लगे थे, लेकिन बरछे का एक ऐसा घाव लगा कि घोड़े से नीचे गिर पड़ा। जब युद्ध का निपटारा हो गया, तब लाश की तलाश होने लगी। जो साहसी किसी समय अकबर का सिंहासन पकड़ कर निवेदन और आपत्तियाँ करता था और चिन्तन रूपी घोड़े पर चढ़ कर विचार-जगत् को परास्त करता था, एक वृक्ष के नीचे निर्जीव पड़ा है। घावों से रक्त बह रहा है और इधर उधर कई लाशें पड़ी हैं। उसी समय सिर काट लिया और शाहजादे के पास भेज दिया। शाहजादे ने पाखाने में डलवा दिया। कई दिनों तक वहीं पड़ा रहा। भाग्य में यही लिखा था! और नहीं तो शाहजादे की अप्रसन्नता कौन-सी ऐसी बड़ी बात थी। वह कितना ही अधिक अप्रसन्न होता, पर कह सकता था कि देखो, खबरदार, शेख का बाल न बाँका होने पावे। उसे जीवित पकड़ लाओ और हमारे समक्ष उपस्थित करो। लेकिन शराबी-कबाबी और अनुभवहीन लड़के को इतना ज्ञान कहाँ था कि समझता कि जीवित व्यक्ति पर तो हर समय अधिकार रहता है। जब मर ही गया, तब क्या हो सकता है!

अकबर के अमीरों के हृदय का भाव एक इस बात से प्रकट हो जाता है कि कोकलताशखाँ ने तारीख कही थी—

تیغ اعجاز نبی الله سر باغی برید –

अर्थात्—ईश्वर के नवी की करामात रूपी तलवार ने विद्रोही का सिर काटा।

लेकिन कहते हैं कि स्वप्न में स्वयं शेख ने उससे कहा था कि मेरे मरने की तारीख तो स्वयं "वन्दः अब्बुलफजल" के अक्षरों से निकलती है। दुःख है कि मुल्ला वदायूनी उस समय जीवित नहीं थे। यदि होते तो बड़ी खुशियाँ मनाते और ईश्वर जाने क्या-क्या फूल-पत्तियाँ लगा कर इस घटना का उल्लेख करते।

जहाँगीर जिस प्रकार हर एक काम ला-परवाही से कर गुजरता था, उसी प्रकार लापरवाही से अपनी तुजुक में लिख भी लेता था। जब उसने सिंहासन पर आसीन होकर अमीरों को मन्सब प्रदान किए हैं, तब लिखता है कि बुँदेले राजपूतों में से राजा नरसिंह देव पर मेरी कृपादृष्टि है। वीरता, सज्जनता और सरलता आदि गुणों में वह अपनी बराबरी के और लोगों से विशेषता रखता है। उसे तीन हजारी मन्सब प्रदान किया गया है। उसकी इस पद-वृद्धि का कारण यह है कि आखीर के दिनों में पिता जी ने अब्बुलफजल को दक्षिण से बुलाया। भारतवर्ष के शेखजादों में वह अपने पांडित्य तथा बुद्धिमत्ता के कारण विशेषता रखता था और उसने अपनी इस प्रकट अवस्था को प्रेमपूर्ण व्यवहार के अलंकार से अलंकृत कर के भारी मूल्य पर पिता जी के हाथ बेचा था। उसका हृदय मेरी ओर से स्वच्छ नहीं था। सदा प्रकट तथा गुप्त रूप से मेरी चुगली खाया करता था। उन दिनों, जब कि दुष्ट उपद्रवियों के उपद्रव तथा बहकाने के कारण पिता जी मुझसे कुछ अप्रसन्न थे, यह निश्चित

था कि यदि वह पिता जी की सेवा में उपस्थित हो जायगा, तो इस उड़ती हुई धूल को और भी अधिक बढ़ा देगा; और मेरे सम्बन्ध में बाधक होगा और ऐसा कर देगा कि मुझे विवश होकर उपयुक्त सेवाएँ करने से वंचित रहना पड़ेगा। नरसिंह देव का देश उसके मार्ग में पड़ता था; और उन दिनों वह भी विद्रोहियों में था। मैंने बार बार उसके पास सँदेसे भेजे कि यदि तुम इस उपद्रवी को रोक कर इसकी हत्या कर डालोगे तो तुम पर पूर्ण अनुग्रह किया जायगा। सामर्थ्य ने उसका साथ दिया। जिस समय शेख उसके प्रान्त में से होकर जा रहा था, उस समय वह आकर उस पर टूट पड़ा। थोड़े से साहस में उसके साथियों को तितर-बितर कर डाला और उसका सिर इलाहाबाद में मेरे पास भेज दिया। यद्यपि इस घटना से स्वर्गीय पिता जी को बहुत दुःख हुआ, लेकिन कम से कम इतना अवश्य हुआ कि मैं निश्चिन्त और निर्भय होकर उनकी सेवा में उपस्थित होने के लिये गया। फिर धीरे धीरे मन की मैल सफाई में बदल गई।

भारतवर्ष के इतिहास-लेखक आखिर इन्हीं बादशाहों की प्रजा थे। यदि वे वास्तविक बातें लिखते तो बेचारे रहते कहाँ ?

मुल्ला मुहम्मद कासिम फरिश्ता अपने विश्वसनीय इतिहास में इस घटना के सम्बन्ध में केवल इतना लिखते हैं कि इस सन् में दक्षिण से शेख अब्बुलफजल बादशाह की सेवा में उपस्थित होने के लिये आ रहे थे। मार्ग में डाकुओं ने उन्हें मार डाला। बस। और इनका यह लिखना कुछ अनुचित भी नहीं था। पाठक देख सकते हैं कि वास्तविक बातें लिखने के अपराध में मुल्ला अब्दुल कादिर के घर और उनके पुत्र पर जहाँगीर के

हाथों क्या क्या विपत्तियाँ पड़ीं। और यदि वे स्वयं जीवित रहते तो ईश्वर जाने उनकी क्या गत होती।

डिलीट नामक एक डच यात्री ने इस घटना का विवरण लिखा है। उसे अपने लेख में किसी का भय नहीं था। इसलिये उसने जो कुछ लिखा, वह यदि ठीक ही लिखा तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं। उसने लिखा है कि सलीम इलाहाबाद में आया और साम्राज्य पर अपना अधिकार जताने लगा। उसने अपने नाम का खुतबा पढ़वाया और अशर्फियाँ तथा रुपए भी अपने नाम से ढलवाए। बल्कि इस प्रकार की अशर्फियाँ और रुपए आदि महाजनों के लेन-देन में डलवा कर आगरे तक भेजवाए। उद्देश्य यह था कि बाप देखे और जले। बाप ने यह सब हाल शेख को लिखा। उसने उत्तर दिया कि श्रीमान् निश्चिन्त रहें। जहाँ तक शीघ्र हो सकता है, मैं सेवा में उपस्थित होता हूँ और शाहज़ादे को, चाहे उचित और चाहे अनुचित रूप से, आपकी सेवा में उपस्थित होना पड़ेगा।

कई दिनों में सब कामों की व्यवस्था करके शेख ने दानियाल से आज्ञा ली। दो तीन सौ आदमी साथ लेकर चल पड़ा। आज्ञा दी कि असबाब पीछे आवे। सलीम को सब समाचार मिल रहे थे। वह जानता था कि शेख के मन में मेरे प्रति कैसे भाव हैं। वह भयभीत हुआ कि अब पिता और भी अप्रसन्न होगा। इसलिये जिस प्रकार हो, शेख को रोकना चाहिए। राजा उज्जैन के सूबे में रहता था। उसे लिखा कि नरदा और ग्वालियर के आस-पास घात में लगे रहो और जहाँ अवसर पाओ, उसका सिर काट कर भेज दो। इसके लिये बहुत कुछ

पुरस्कार तथा पंज-हजारी मन्सब का वचन दिया। राजा ने प्रसन्नता से स्वीकृत कर लिया। एक हजार सवार और तीन हजार पैदल लेकर घात में आ लगा और जासूसी के लिये करावल इधर-उधर फैला दिए कि समाचार देते रहें। शेख को इस बात का बिलकुल पता न था। जब काले बाग में पहुँचा और नरदा की ओर बढ़ा, तब राजा को समाचार मिला। वह अपने साथियों के साथ आकर अचानक टूट पड़ा और चारों ओर से घेर लिया। शेख और उसके साथी बहुत वीरतापूर्वक लड़े, पर शत्रुओं की संख्या बहुत अधिक थी, इसलिये सबके सब कटकर खेत रहे। शेख का शव देखा गया तो उसमें बारह घाव थे। एक वृक्ष के नीचे पड़ा था। वहाँ से उठाकर सिर काटा और शाहजादे के पास भेज दिया। वह बहुत प्रसन्न हुआ।

इस विषय में तैमूरी वंश के सभी इतिहास-लेखक शेख को दोषी ठहराते हैं और कहते हैं कि वह अहंमन्य था और अपनी बुद्धि के आगे किसी को कुछ समझता ही न था। यहाँ भी उसने अहंमन्यता की और उसका फल पाया। परन्तु वास्तव में यह विषय विचारणीय है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उसे अपने उत्कृष्ट गुणों तथा बुद्धिमत्ता का ज्ञान था। अकबर के दरबार में उसने जी तोड़ कर जो जो परिश्रम किए थे, और जान निछावर करके जो जो सेवाएँ की थीं, उन पर उसे पूरा भरोसा था। साथ ही उसने यह भी सोचा होगा कि मेरे जैसे व्यक्ति के लिये शाहजादा कभी ऐसी आज्ञा न देगा कि जान से मार डालो। बल्कि यह भी सोचा होगा कि उस शराबी-कबाबी लड़के ने कह भी दिया होगा तो भी जो सरदार होगा, वह मुझे मार डालने का कभी

विचार न करेगा। बहुत होगा तो बाँध कर उसके सामने उपस्थित कर देगा। अमीर लोग विद्रोह करते हैं, सेना की सेना काट डालते हैं, देश लूट कर उजाड़ देते हैं, फिर भी तैमूरी दरबारों में उनके अपराध इस प्रकार क्षमा कर दिए जाते हैं कि उनका देश और मन्सब ज्यों का त्यों उनके पास बना रहता है, बल्कि पहले से भी अधिक उच्च पद प्राप्त करते हैं। यहाँ तो कोई बात भी नहीं है। इतना ही है कि शाहजादा यह समझता है कि मैं उसके पिता से उसकी चुगलियाँ खाता हूँ। फिर इतनी सी बात के लिये मैदान से भागने और भगोड़ा कहलाने की क्या आवश्यकता है। मैं नामर्दी और कायरता का कलंक क्यों अपने सिर लूँ। क्यों न यहीं डट जाऊँ। अधिक से अधिक परिणाम यही होगा कि ये लोग मुझे पकड़ कर शाहजादे के सामने ले जायँगे। यदि ये सिकन्दर और अफ्लातून क्रोध के भूत बन जायँ, तो भी मैं इन्हें परी बनाकर शीशे में उतार लूँ। वह तो मूर्ख शाहजादा है। दो मन्तर ऐसे फूँकूँगा कि उठ कर मेरे साथ हो जाय और हाथ बाँध कर पिता के पैरों पर जा पड़े। लेकिन वही बात है कि भावी बहुत प्रबल होती है। उसने सोचा कुछ और था, लेकिन वहाँ कुछ और ही मामला निकला। और पाठक भी जरा विचार करके देखें कि वह बुँदेला भी धाड़-मार लुटेरा ही था जो ऐसा काम कर गुजरा। कोई राजा होता और राजनीति की रीति बरतनेवाला होता तो इस जंगलीपन से शेख की हत्या न करता। न बात, न चीत, न लड़ाई का आगा, न पीछा, कुछ मालूम ही न हुआ। सैंकड़ों भेड़िए थे जो थोड़ी सी भेड़ों पर आ पड़े और बात की बात में चीर-फाड़ कर भाग गए।

अब इधर का हाल सुनिए कि जब शेख के मरने का समाचार दरबार में पहुँचा, तब वहाँ सन्नाटा छा गया। सब लोग चकित हो गए। सोचते थे कि बादशाह से क्या कहें; क्योंकि अकबर जानता था कि वही एक अमीर ऐसा है जो सब प्रकार से मेरा सच्चा हितैषी है; और इनमें से कोई अमीर ऐसा नहीं है जो हृदय से मेरी शुभ कामना करता हो। इसलिये लोग सोचते थे कि बादशाह के मन में न जाने क्या-क्या विचार उत्पन्न हों और किधर बिजली गिरे। तैमूरी वंश में यह पुरानी प्रथा थी कि जब कोई शाहजादा मरता था, तब उसकी मृत्यु का समाचार बादशाह के सामने बेधड़क नहीं कह देते थे। उसका वकील या प्रतिनिधि हाथ में काला रूमाल बाँध कर सामने आता था और चुपचाप खड़ा रहता था। इसका अर्थ यही होता था कि मेरे स्वामी का देहान्त हो गया।

शेख को अकबर अपनी सन्तान से भी बढ़ कर प्रिय समझता था, इसलिये उसका वकील भी चुपचाप सिर झुकाए हुए और हाथ में काला रूमाल बाँधे धीरे-धीरे सिंहासन की ओर बढ़ा। अकबर चकित हो गया। उसने पूछा—कुशल तो है? क्या हुआ? जब उसने सारी घटना निवेदन की, तब वह इतना अधिक शोकाकुल और विकल हुआ, जितना किसी पुत्र के लिये भी नहीं हुआ था। कई दिनों तक उसने दरबार नहीं किया और न किसी अमीर से बात की। दुःख करता था, रोता था, बार-बार छाती पर हाथ मारता था और कहता था कि हाय शेखू जी, यदि तुम्हें साम्राज्य लेना था तो मुझे मार डालना चाहिए था, शेख को भला क्या मारना था। जब सिर कटा हुआ उसका शव

आया, तब यह शेर पढ़ा—

शیخ ما از شوق بےحد چوں سوئے ما آمادہ—

زشتیاق پائے بوسی بےسروپا آمادہ—

अर्थात्—जब मेरा शेख बेहद शौक से मेरी ओर आया, तब मेरे पैर चूमने की प्रबल कामना से बिना सिर और पैर के आया।

उस समय शेख की ५२ वर्ष और कुछ महीनों की अवस्था थी। मरने के दिन नहीं थे। परन्तु मृत्यु न दिन देखती है और न रात। जब आ जाय, तभी उसका समय है।

अब्बुलफजल की कबर अब तक अन्तरी में मौजूद है जो ग्वालियर से पाँच छः कोस की दूरी पर है। वहाँ महाराज सिन्धिया का राज्य है। उस पर एक छोटी-सी साधारण इमारत बनी है। अब्बुलफजल ने अपने पिता और माता की हड्डियाँ लाहौर से इसलिये आगरे पहुँचाई थीं, जिसमें उनकी वसीयत पूरी हो। परन्तु स्वयं उसकी लावारिस लाश का उठानेवाला कोई न हुआ। वह जहाँ गिरा, वहीं मिट्टी में मिल गया। यह उसके मन के प्रकाश तथा अच्छी नीयत की बरकत है कि आज तक अन्तरी के लोग प्रत्येक बृहस्पतिवार को वहाँ हजारों दीपक जलाते और चढ़ावे चढ़ाते हैं।

अकबर अपने लड़के को तो क्या कहता, राय-रायान को सेना देकर भेजा कि जाकर नरसिंहदेव को उसके दुष्कृत्य का दंड दो। अब्दुर्रहमान को आज्ञापत्र लिख भेजा, जिसका आशय यह था कि तुम राय-रायान के साथ हो जाओ और अपने पिता का बदला चुका कर संसार पर यह बात प्रकट कर दो कि तुम

अपने पिता के पुत्र हो। ये दोनों बहुत दिनों तक जंगलों और पहाड़ों में उसके पीछे मारे मारे फिरे, लेकिन वह कहीं न ठहरा। लड़ता रहा और भागता रहा। शेख ने सच कहा था कि डाकू है। वह किस तरह जम कर लड़ता ! आखिर दोनों थक कर चले आए।

दुःख की कलम और अभाग्य की स्याही से लिखने योग्य बात यह है कि जो कुछ योग्यता और गुण था, वह अब्बुलफजल और फैजी के साथ इस संसार से उठ गया। इतने भाई थे और इकलौता लड़का था। सब खाली रह गए।

अब्बुलफजल का धर्म

अकबरी दरबार की सैर करनेवालों को मालूम है कि शेख मुबारक का क्या धर्म था। अब्बुलफजल भी उन्हीं के अनुकरण पर चलनेवाला उनका पुत्र था। इसी से पाठक समझ सकते हैं कि उसके धार्मिक विचार भी पिता के ही विचारों से उत्पन्न हुए होंगे। हाँ, संसार के रंग-ढंग से उसकी रंगत में भी कुछ अन्तर आ गया था। यद्यपि ये सब बातें शेख मुबारक, फैजी और मुल्ला साहब आदि के प्रकरणों में बतलाई जा चुकी हैं, तथापि सच तो यह है कि मुझे भी इनके बार-बार कहने में कुछ विशेष आनन्द आता है। इसलिये मैं फिर एक बार अपने दिल का अरमान निकालता हूँ। सम्भव है कि बातों में वास्तविक बात के ऊपर से परदा उठ जाय और उसका सच्चा स्वरूप सामने आ जाय। पाठकों को इस बात का पहले से ही ज्ञान है और अब फिर उन्हें यह बात मालूम होनी चाहिए कि शेख मुबारक एक

बहुत बड़ा तत्वज्ञ पंडित था और ऐसा प्रकाशमान् मस्तिष्क लेकर आया था जो विद्या रूपी दीपक के लिये उसका प्रकाश बढ़ानेवाली कंदील के समान था। उसने प्रत्येक विद्या के ग्रन्थ पूर्ण पंडितों से पढ़े थे और स्वयं भी विद्यार्थियों को पढ़ाता था। उसकी दृष्टि सब प्रकार की विद्याओं पर समान रूप से छाई हुई थी। इसके अतिरिक्त उसे विद्या सम्बन्धी जो कुछ ज्ञान प्राप्त हुआ था, वह ग्रन्थों के शब्दों तक ही परिमित नहीं था; और बात वही थी जो उसकी समझ में आ गई थी।

उस समय और भी कई विद्वान् थे जो पुस्तकी विद्या में चाहे पूरे रहे हों या अधूरे, परन्तु भाग्य के पूरे अवश्य थे, जिसके कारण वे अपने समय के बादशाह के दरबार में पहुँच कर बादशाही ही नहीं, बल्कि खुदाई के अधिकार जतला रहे थे। उन लोगों के हाथ घी में तर और उँगलियों को सम्पत्ति की कुंजियाँ देखकर बड़े बड़े गद्दी-नशीन विद्वान् शेख और मसजिदों के अधिकारी उनके चारों ओर बैठकर उन्हीं के नाम जपा करते थे। शेख मुबारक को शाही दरबार में जाने का शौक नहीं था। ईश्वर ने उसका हृदय ही ऐसा बनाया था कि जब वह अपनी मसजिद के चबूतरे पर बैठता था और उसके सामने कुछ विद्यार्थी पुस्तकें खोलकर बैठते थे, तब वह ऐसा लहकता और चहकता था कि उस प्रकार का आनन्द बाग में न तो फूल को मिलता था और न बुलबुल को। सच बात तो यह है कि बादशाहों के दरबार और अमीरों की सरकार की ओर उसके शौक का पैर उठता ही नहीं था। हाँ, जब उक्त विद्वान् लोग किसी दीन पर अनुचित रूप से अधिकार जतलाते थे और फतवों के बल

पर अत्याचार करते थे और वह आकर इनकी सेवा में निवेदन करता था, तब ये उसे आयतों आदि की ढाल से तैयार कर देता था, जिससे उसके प्राण बच जाते थे। इस बात में वह किसी की परवाह नहीं करता था। उन लोगों को भी इस बात की खबर मिल जाती थी और वे अपने जलसों में उग्र शब्दों में इसकी चर्चा करते थे। कभी शीया बतलाते थे, कभी महदवी ठहराते थे; और उन दिनों ऐसे अपराधों के लिये प्राण-दण्ड ही हुआ करता था। परन्तु वह अपनी योग्यता और गुणों के बल से बलवान् रहता था। सुनकर हँस देता था और कहता था कि ये लोग हैं कौन और क्या हैं और समझते क्या हैं! कभी बात-चीत का अवसर आ पड़ेगा तो समझा देंगे।

शेख मुबारक के इस रंग-ढंग ने उसे प्रायः विपत्ति में डाला। उस पर बड़े बड़े कष्ट आए। लेकिन उसे कुछ भी परवाह नहीं हुई। उनके विरोधों को वह हँसी-खेल समझ कर निबाहता रहा। उस समय के एशिया में प्रचलित धर्मों तथा विशेषतः इस्लाम के भिन्न भिन्न सम्प्रदायों की पुस्तकों पर उसका ज्ञान चाँदनी की तरह खिला हुआ था। जब शत्रुओं ने इस प्रकार पीड़ित करना आरम्भ किया, तब वह भिन्न भिन्न ग्रन्थों को कुछ और ही दृष्टि से देखने लगा। जब इस प्रकार का कोई प्रश्न उपस्थित होता था, तब वह तुरन्त ग्रन्थों के वचनों से शत्रुओं की चालों को रोक देता था या उसके जोड़ का विरुद्ध प्रश्न दिखला कर ऐसा सन्देह उत्पन्न कर देता था कि वे लोग दिक होकर रह जाते थे। लेकिन जो कुछ कहता था, वह सोच-समझ कर, वास्तविकता की जाँच कर के और प्रमाणों

आदि के आधार पर कहता था; क्योंकि विरोधियों के फतवों में बादशाही बल होता था। यदि इसका कथन सत्य न ठहरता तो प्राणों पर संकट आ बनता।

हुमायूँ, शेर शाह और सलीम शाह के शासन-काल में उन लोगों की खुदाई थी। अकबर के शासन-काल में भी कुछ वर्षों तक साम्राज्य उन्हीं के कथनानुसार चलता रहा। नवयुवक बादशाह चाहता था कि समस्त भारत में मेरे साम्राज्य का विस्तार हो। इस देश में भिन्न-भिन्न धर्मों और जातियों के लोगों का निवास था, इसलिये यह आवश्यक था कि वह सब लोगों के साथ अपनायत और प्रेम के साथ पैर आगे बढ़ावे। इस प्रयत्न में उसे कुछ सफलता भी हुई थी, परन्तु उक्त विद्वान् लोग इस मार्ग में चलने को कुफ्र और धर्म-भ्रष्टता समझते थे। अब देश का पालन करनेवाले के लिये यह आवश्यक हुआ कि ऐसे कर्मचारी रखे जो इस ढब के हों। फैजी और अब्बुलफजल सर्वथा विद्वान् थे और उनकी तबीयत में सभी रंग थे। उन्होंने अपने स्वामी की आज्ञा और सेवा-धर्म का पालन उसकी इच्छा से भी बढ़ कर अच्छी तरह कर दिखाया। साम्राज्य के कार्यों का मूल सिद्धान्त यह रखा कि ईश्वर सब का स्वामी और सृष्टि के सब लोगों को सुखी तथा सम्पन्न करनेवाला है। हिन्दू, मुसलमान और अग्नि-पूजक आदि सब उसकी दृष्टि में समान हैं। बादशाह ईश्वर की छाया है। उसे भी इसी बात पर ध्यान रखना उचित है। इस छोटी सी बात में कई काम निकल आए। साम्राज्य की नींव दृढ़ हो गई। सम्राट् का सामीप्य प्राप्त हो गया। जिन शत्रुओं से प्राणों का भय था, वे आप से आप

टूट गए। हाँ, जो लोग पहले से यह समझे बैठे थे कि साम्राज्य और वैभव केवल इस्लाम का ही हक है, उनका तथा उनके वंशजों का कार-बार पहले की तरह चमकता हुआ न रह गया। उन लोगों ने इन्हें बदनाम कर दिया। पर वास्तव में बात यही है कि ये लोग बादशाह की आज्ञा का उसकी इच्छा से भी कई दरजे बढ़ कर पालन करते थे। यदि बादशाह की इच्छा देखी तो अम्मामा हटा कर उसके स्थान पर खिड़कीदार पगड़ी पहन ली; अबा उतार कर जामा पहन लिया, आदि आदि। एक हिन्दू को शेख सदर ने शरअ के अनुसार फतवा देकर मरवा डाला। इन लोगों ने बात पड़ने पर शेख सदर का साथ नहीं दिया, बल्कि बादशाह के कथन का समर्थन करते रहे। इसी सम्बन्ध में मुल्ला साहब इन लोगों पर चोट करते हैं। फिरंग देश के त्यागी धर्माधिकारियों को पादरी कहते हैं; और जो पूर्ण विद्वान् साधु समय के अनुसार आज्ञाओं में परिवर्त्तन कर सकते हैं और बादशाह भी जिनकी आज्ञा के विरुद्ध नहीं चल सकता, उन्हें पापा कहते हैं। वे लोग इंजील लाए और उन्होंने ईश्वर, ईसा और मरियम के सम्बन्ध के तर्क उपस्थित किए और ईसाई धर्म की सत्यता प्रमाणित करके उस धर्म का प्रचार किया। बादशाह ने शाहजादा मुराद को आज्ञा दी और उसने ईश्वरीय अनुग्रह का शुभ शकुन समझ कर उसके कुछ पाठ पढ़े। अब्बुल-फजल अनुवाद के लिये नियुक्त हुए। उसमें बिस्मिल्लाह के स्थान पर था—

اے نامے تو ژزو کرسٹو —

अर्थात्—हे ईश्वर, तेरा नाम जेसस क्राइस्ट है।

शेख फैजी ने कहा—

سبحانک لاشریک یا ھو –

अर्थात्—हे ईश्वर, तू पवित्र है और कोई तेरा शरीक या साझी नहीं है।

फिर एक स्थान पर आक्षेप करते हैं कि गुजरात के नौसारी नामक स्थान से अग्नि-पूजक लोग आए। उन्होंने जरदुश्त के धर्म के तत्व बतलाए और अग्नि की पूजा को सब से बड़ी पूजा बतलाकर अपनी ओर खींचा। कियानियों का रंग-ढंग और उनके धर्म के सिद्धान्त बतलाए। आज्ञा हुई कि शेख अब्बुल-फजल इसकी व्यवस्था करें और जिस प्रकार अज्म देश के अग्नि-कुंड हर समय प्रज्वलित रहते हैं, उसी प्रकार यहाँ भी हर समय दिन और रात प्रज्वलित रखो; क्योंकि यह अग्नि भी ईश्वर के प्रभुत्व के लक्षणों में से एक लक्षण है और उसके प्रकाशों में से एक प्रकाश है।

अस्तु; इन बातों से तो कोई हानि नहीं, क्योंकि साम्राज्य की बातें कुछ और हैं, देश की राजनीति का धर्म अलग है। इन बातों के लिये स्वयं अकबर पर भी आक्षेप नहीं हो सकता; फिर ये तो उसके सेवक थे। स्वामी की जो आज्ञा होती थी, उसका पालन करना इनका धर्म था। यहाँ तक तो सब कुछ ठीक है; पर आगे कठिनता यह है कि जब शेख मुबारक का देहान्त हो गया, तब शेख अब्बुलफजल ने अपने भाइयों सहित सिर का मुंडन कराया। वास्तव में बात केवल यही थी कि बादशाह प्रत्येक धर्म के साथ प्रेम तथा अनुराग प्रकट करता था और हिन्दुओं

से उसका चोली दामन का साथ था; इसलिये इस विषय में ये लोग उससे भी बढ़कर थे।

जब पहले अतका का देहान्त हुआ था, और फिर मरियम मकानी का शरीर छूटा था, तब दोनों बार अकबर ने सिर मुँड़ाया था। उस समय यह तर्क उपस्थित किया गया था कि प्राचीन काल में तुर्क बादशाह भी इसी प्रकार सिर मुँड़ाया करते थे। इन्होंने भी इसी में बादशाह की प्रसन्नता देखी, इसलिये सिर मुँड़ाया। ये सब बातें केवल बादशाह को प्रसन्न करने के लिये और उसकी नीति का समर्थन करने के लिये थीं। और नहीं तो फैजी और अब्बुलफजल अपने विचार तथा वाक् शक्ति से अफलातून और अरस्तू के तर्कों को रूई की भाँति धुनकते थे। भला वे लोग अकबर के दीन इलाही पर हृदय से विश्वास रखते होंगे या इस प्रकार के कृत्यों पर उनका विश्वास हुआ होगा? तोबा! तोबा!

ये लोग सब कुछ करते होंगे, और फिर आकर अपने जलसों में कहते होंगे कि आज कैसा मूर्ख बनाया! देखा, एक मसखरा भी न समझा। और वास्तव में बात यह है कि इनके शत्रु जैसे प्रबल थे, और जैसे कठिन अवसर इन पर आकर पड़ते थे, वे इस प्रकार की युक्तियों के बिना टूट भी नहीं सकते थे। याद कीजिए, मखदूम उल्मुल्क आदि का सँदेसा और अब्बुलफजल का उत्तर कि हम बादशाह के नौकर हैं, बैंगनों के नौकर नहीं हैं।

अब्बुलफजल के पत्र देखिए जिनमें खानखानाँ का वह पत्र दिया है जो उन्होंने अब्बुलफजल के नाम भेजा था। उसमें यह

भी लिखा था कि यदि तुम्हारी सम्मति हो तो ऐरज को दरबार में भेज दूँ जिसमें उसे धर्म और नियम आदि का ज्ञान हो। यहाँ मेरे साथ लश्कर में है और जंगलों में मारा-मारा फिरता है। शेख ने इस पत्र के उत्तर में जो पत्र भेजा था, उसमें इस सम्बन्ध में लिखा था कि दरबार में ऐरज को भेजने की क्या आवश्यकता है। कदाचित् तुम यह समझते हो कि यहाँ आने से उसके धार्मिक विश्वास में सुधार हो जायगा। पर यह आशा रखना व्यर्थ है। अब पाठक समझ सकते हैं कि जब उसकी कलम से यह वाक्य निकला था, तब दरबार के सम्बन्ध में उसके वास्तविक विचार क्या थे।

इसके रचे हुए ग्रन्थों को देखिए। जहाँ जरा-सा अवसर मिलता है, कितने शुद्ध हृदय से ईश्वर की वन्दना करता है और अध्यात्म दर्शन के प्रश्नों के रूप में उपस्थित करता है। यदि अफलातून होता तो वह भी इसके हाथ चूम लेता। अब्बुलफ़जल के दूसरे और तीसरे खंडों को देखिए। उनकी प्रशंसा या तो शेख शिबली ही कर सकते हैं और या जुनैद बुगदादी ही। आजाद क्या कहे!

लाहौरवाले शेख अब्बुल मआली ने अपने एक निबन्ध में लिख दिया है कि मैं पहले शेख अब्बुलफजल को अच्छा नहीं समझता था। लेकिन एक रात को देखा कि उसी को लाकर बैठाया है और वह हजरत मुहम्मद साहब का कुरता पहने हुए है। पूछने पर विदित हुआ कि उसे एक प्रार्थना के कारण क्षमा मिली है, जिसका पहला वाक्य इस प्रकार है—

الہی نیکاں رابوسیلہ نیکی سرفرازی بخش و بداں را
بمقتضائے کرم دلنوازی کن

अर्थात्—हे परमात्मा, जो लोग पुण्यात्मा हैं, उनके पुण्यों के कारण तू उनका सिर ऊँचा कर; और जो लोग पापी हैं, उनको अपने अनुग्रह के द्वारा प्रसन्न कर।

जखीरत उल् अखवानैन नामक ग्रन्थ में लिखा है कि अब्बुलफजल रात के समय फकीरों की सेवा में जाया करता था, उन्हें अशर्फियाँ भेंट देता था और कहता था कि अब्बुलफजल का धर्म ठिकाने रखने के लिये ईश्वर से प्रार्थना करो। और यह तो बार-बार कहा करता था कि हाय, क्या करूँ। कहता था और ठंढी साँस लेता था।

अकबर ने काश्मीर में एक विशाल भवन बनवाया था और आज्ञा दे दी थी कि हिन्दू मुसलमान जिसका जी चाहे, वहाँ जाकर बैठे और ईश्वर का चिन्तन करे। इस पर निम्न लिखित लेख अंकित था जो अब्बुलफजल का लिखा हुआ था। जरा इन शब्दों को देखिए कि किस शुद्ध हृदय से निकले हैं—

लेख का आशय*

हे ईश्वर, जिस घर में देखता हूँ, सब तुझको ही ढूँढ़ते हैं और जिसके मुँह से सुनता हूँ, तेरी ही प्रशंसा सुनता हूँ। मुसल-

---

* मूल इस प्रकार है—

الٰہی بہرخانہ کہ مے نگرم جو یائے تواند ، و بہر زباں کہ مے شنوم گویائے تو —

کفر و اسلام دررہت پویاں—
وحدہ لاشریک لہ گویاں—

मान और अन्य धर्मवाले यही कहते हैं कि तू एक है और तेरे समान कोई दूसरा नहीं है। मसजिद में तुझे ही लोग स्मरण करते हैं और मन्दिर में तेरे ही लिए शंख बजाते हैं। सब तुझको स्मरण करते हैं और तेरा उनमें पता ही नहीं है। मैं कभी मन्दिर में जाता हूँ और कभी मसजिद में। तुझको ही मैं घर-घर ढूँढ़ता हूँ। जो तेरे सच्चे सेवक हैं, उनके लिए इस्लाम और गैर-इस्लाम

اگر مسجد ست بیاد تو نعره قدوس میزنند و اگر کلیساست بشوق تو ناقوس می جنبانند —

رباعی

ای تیر غمت را دل عشاق نشانه —
خلقی بتو مشغول و تو غائب زمیانه —
گه معتکف دیرم وگه ساکن مسجد —
یعنی که ترا می طلبم خانه بخانه —

اگر خاصان ترا بکفر و اسلام کاری نیست این هر دو را درپردهٔ اسلام تو باری نه —

کفر کافر را و دین دیندار را —
ذره درد دل عطار را —

این خانه بهنیت ایتلاف قلوب موحدان هندوستان و خصوصاً معبود پرستان عرصه کشمیر تعمیر یافته —

بفرمان خدیو و تخت افسر —
چراغ آفرینش شاه اکبر —

से कोई झगड़ा नहीं है। प्रत्येक धर्म्म उनके अनुयायियों के सन्तोष और समाधान मात्र के लिए है। यह भवन उन भारत-वासियों में एकता उत्पन्न करने के लिये है जो एक-ईश्वर को माननेवाले हैं; और विशेषतः काश्मीर के ईश्वरोपासकों के लिए बनाया गया है। सिंहासन के स्वामी अकबर बादशाह की आज्ञा से, जो चारों तत्त्वों और सातों ग्रहों के योग से एक पूर्ण अस्तित्व के रूप में प्रकट हुआ है, बनाया गया है। जिन दुष्टों की दृष्टि सत्य की ओर नहीं है, वे इस भवन को नष्ट करेंगे। उन्हें उचित है कि वे पहले अपने प्रार्थना-मन्दिर को गिरावें, क्योंकि यदि दृष्टि हृदय की ओर है तो सबके साथ अनुकूलता रखनी चाहिए। और यदि केवल शरीर पर दृष्टि है तो वह इस भवन को गिरा सकता है। हे परमात्मा, जब तूने कार्य्य करने की आज्ञा दी, तब कार्य्य का आधार विचार या नीयत पर रक्खा। तू भीतरी विचारों से परिचित है; और बादशाह को उनके विचारों का फल देता है।

نظام اعتدال هفت معدن –

کمال امتزاج چار عنصر –

خانه‌خرابے که نظر صدق نینداخته این خانه را خراب سازد-باید که نخست مصید خود رابیندازد-چه اگر نظر به دل‌است باهمه ساختنی ست و اگر چشم بر اب و گل‌است همه براندآختنی –

خداوندا چوداد کاردادی – مدار کاربرنیت نهادی –
توئی برکارگاه نیت آگاه –بەپیش شاه داري نیت‌شاه–

ब्लाक्मैन साहब लिखते हैं कि यह भवन आलमगीर के समय में गिर गया था।

मुल्ला साहब के इतिहास को देखकर दुःख होता है कि जिस पिता से शिक्षा प्राप्त की, उसी के धर्म और विश्वास पर टोकरे भर मिट्टी डाली। बात यह है कि जब एक अभीष्ट पदार्थ पर दो इच्छुकों के शौक टकराते हैं, तब इसी प्रकार की चिनगारियाँ उड़ती हैं। दरबार में दो नवयुवक आगे-पीछे पहुँचे। शिष्य के विचार थोड़े दिनों तक भी अपने गुरु तथा शिक्षक के साथ ठीक न रहे। यह अवश्य था कि अब्बुलफजल ने बादशाह का मिजाज, समय की आवश्यकता और अपनी अवस्था का विचार करते हुए कुछ ऐसी बातें की थीं कि मुल्ला साहब का फतवा उनके विरुद्ध हो गया। लेकिन सच बात तो यह है कि उनकी दिन पर दिन होनेवाली उन्नति और हर समय उनका बादशाह के पास रहना मुल्ला साहब से देखा नहीं जाता था। इसलिये वह बिगड़ते थे, तड़पते थे और जहाँ अवसर पाते थे, वहाँ अपने मन की भड़ास निकालते थे। फिर भी योग्यता का प्रभाव देखो कि अपनी विद्या, गुण और रचनाओं में कोई विशेषता न दिखला सके। लेकिन उनकी ईर्ष्या का कलुषित रूप देखना चाहिए कि जहाँ उन्होंने अब्बुलफजल द्वारा बादशाह को अपनी टीकाएँ भेंट करने का उल्लेख किया, वहाँ भी एक व्यंग्य रख दिया और कह गए कि लोग कहते हैं कि वे टीकाएँ उसके पिता की की हुई थीं। अच्छा, मान लीजिए कि यही बात है; तो भी उसके बाप का माल है; कुछ आपके बाप का तो नहीं है। वह नहीं तो उसका बाप तो ऐसा था। तुम्हारा तो बाप भी ऐसा नहीं था। और यदि वे वास्तव

में अब्बुलफजल की ही की हुई टीकाएँ हों, तो इससे बढ़कर अभिमान की बात और क्या होगी कि बीस वर्ष की अवस्था में एक नवयुवक इस प्रकार की टीका लिखे जिसे विद्वान् और समझदार लोग शेख मुबारक जैसे विद्वान् की की हुई टीका समझें। जब अब्बुलफजल ने सुना होगा, तब उसके हृदय में कई चमचे खून बढ़ गया होगा। इन बाप-बेटों के सम्बन्ध में मुल्ला साहब की विलक्षण दशा है। किसी की बात हो, किसी का उल्लेख हो, जहाँ अवसर पाते हैं, इन बेचारों में से किसी न किसी पर एक नश्तर मार देते हैं। विद्वानों का उल्लेख करते हुए शेख हसन मूसली के प्रकरण में कहते हैं कि यह शाह फतहउल्ला का शिष्य है; और सच तो यह है कि गणित, विज्ञान, तत्त्व-ज्ञान आदि सब प्रकार की विद्याओं का पूर्ण पंडित है, आदि आदि। वह काबुल की विजय के अवसर पर हुजूर की सेवा में पहुँचा था। बड़े शाहजादे की शिक्षा पर नियुक्त हुआ। शेख अब्बुलफजल ने भी ये विद्याएँ गुप्त रूप से उससे पढ़ीं और अनेक सूक्ष्म बातों का उससे ज्ञान प्राप्त किया। फिर भी उसका सम्मान नहीं करता था। स्वयं फर्श पर बैठता था और गुरु को जमीन पर बैठाता था। भला पाठक ही विचार करें कि कहाँ शेख हसन, कहाँ उसके पांडित्य की पूर्णता! कहीं का जिक्र और कहीं की फिक्र। बेचारे अब्बुलफजल को एक ठोकर मार गए। बेचारे फैजी को भी इसी प्रकार नश्तर मारते जाते हैं। कहीं एक ही तीर में दोनों को छेदते जाते हैं। पाठक फैजी का प्रकरण देखें।

शेख की लेखन-कला

शेख की लेखन-प्रणाली की प्रशंसा नहीं हो सकती। उसमें

यह एक ईश्वरीय देन थी, जो वह ईश्वर के यहाँ से अपने साथ लाया था। वह प्रत्येक अभिप्राय ऐसी सुन्दरता से व्यक्त करता है कि समझनेवाला देखता रह जाता है। बड़े-बड़े लेखकों को देखिए; जब वे अपने लेखों में ओज लाना चाहते हैं, तब वे उसे बाहर के या बसन्त और उपवन सम्बन्धी वर्णनों से रँग लेते हैं और सौन्दर्य से सुन्दरता माँग कर अपने लेखों में रंग और नमक लाते हैं। परन्तु लेखन कला पर पूर्ण अधिकार रखनेवाला यह शेख सीधे-सादे शब्दों में अपने पवित्र विचार और वास्तविक अभिप्राय ऐसी सुन्दरता से प्रकट करता है कि हजारों रंगीनियाँ उस पर निछावर होती हैं। यदि उसके सादेपन के बाग में रंग भरनेवाला चित्रकार आकर कलम लगावे, तो उसके हाथ कलम हो जायँ। वह लेखन कला का ईश्वर है और अपने विचारों से जैसी सृष्टि चाहता है, शब्दों के ढाँचे में ढाल देता है। मजा यह है कि जिस अवस्था में लिखता है, नया ढंग लाता है; और जितना ही लिखता जाता है, उसकी भाषा का ओज उतना ही बढ़ता और चढ़ता चला जाता है। सम्भव नहीं कि मन में किसी प्रकार की शिथिलता का अनुभव हो। उसकी शोभा और आनन्द कुछ मूल में ही विशेष रूप से दिखाई पड़ती है। तो भी जहाँ तक हो सकेगा, यहाँ उसकी कुछ विशेषताएँ बतलाने का प्रयत्न किया जायगा।

उसके परम श्रेष्ठ गुणों के सम्बन्ध में जो ये शब्द लिखे गए हैं, उनके सम्बन्ध में पाठकों को यह न समझना चाहिए कि आज-कल जो बहुत ही साधारण कोटि की लेख-प्रणाली प्रचलित है, उसे देख कर लिखे गए हैं। बल्कि जिस समय अकबर के दरबार में दूर-दूर के देशों के गुणी उपस्थित थे और

भारतवर्ष की राजधानी में विदेशों के विद्वानों और पंडितों का जमवट था, उस समय भी वह सारी भीड़ को चीर कर और सब को कोहनियाँ मार कर आगे निकल गया था। उसके हाथ और कलम में बल था, जिसे देशों के बड़े-बड़े गुणी खड़े देखा करते थे और वह आगे बढ़ता जाता था और उन सब से आगे निकल जाता था। और नहीं तो कौन किसे बढ़ने देता है! यद्यपि वह मर गया है, तथापि उसके लेख सब से आगे और ऊँचे दिखाई पड़ते हैं।

उसी समय अमीन अहमद राजी ने तजकिरः हफ्त अकलीम नामक ग्रन्थ लिखा था। उस ईरानी के न्याय की भी भूरि-भूरि प्रशंसा करनी चाहिए कि भारतीय शेख के लेखों की जी खोल कर प्रशंसा की है; और कहा है कि लेखन कला तथा विद्या और बुद्धि आदि में उसकी समता करनेवाला और कोई दिखलाई नहीं देता।

शेख की रचनाएँ

अकवर-नामे के पहले खंड में तैमूर के वंश के लोगों का विवरण है; परन्तु वह विवरण कुछ संक्षिप्त है। वावर का हाल कुछ अधिक विस्तार से लिखा है और हुमायूँ का उससे भी अधिक विस्तार के साथ। यहाँ पहला खंड समाप्त होता है। फिर अकवर के शासन काल के सत्रह वर्षों का हाल है। अकवर तेरह वर्ष की अवस्था में सिंहासन पर बैठा था। वह तेरह वर्ष और शासन के सत्रह वर्ष कुल मिलाकर तीस वर्षों का हाल हुआ। यहाँ दूसरा खंड समाप्त होता है।

जिस प्रकार गुणी लेखक लोग अपनी रचनाओं की भूमिका में नम्रतापूर्वक अपनी कृति की त्रुटियों आदि के सम्बन्ध में क्षमा माँगते हैं, उसी प्रकार शेख ने भी इसकी भूमिका में इस प्रकार की कुछ बातें लिखी हैं। उसका यह न्यायपूर्ण लेख प्रशंसनीय है कि मैं भारतवासी हूँ और फारसी में लिखना मेरा काम नहीं था। बड़े भाई के भरोसे पर यह काम आरम्भ किया था; परन्तु दुःख है कि यह थोड़ा ही लिखा गया था कि उनका देहान्त हो गया। दस वर्ष का हाल उन्होंने इस प्रकार देखा है कि उन्हें इस पर भरोसा नहीं था और मेरी तुष्टि नहीं हुई थी।

दूसरा खंड अकबर के शासन काल के १८वें वर्ष से आरम्भ किया है और शासन काल के ४६वें वर्ष अर्थात् सन् १११० हि० पर समाप्त किया है। इसके बाद के अकबर के शासन का हाल इनायत उल्ला मुहिब्ब ने लिख कर तारीखे अकबरी पूरी की है।

पहले खंड में, जिसमें हुमायूँ का विवरण समाप्त किया है, भाषा बहुत ही शुद्ध और स्पष्ट तथा मुहावरेदार है और उसमें प्रौढ़ता बहुत अधिक है। दूसरे खंड में, जिसमें अकबर के सत्रह वर्षों के शासन का हाल है, विषय बहुत ही जोश से भरे हैं और उनमें शब्दों की छटा खूब दिखलाई पड़ती है। बहार के रंग उड़ते हैं—बसन्त और उपवन सम्बन्धी वर्णनों की अधिकता है। तीसरे खंड में रंग बदलना आरम्भ हुआ है। इससे भाषा बहुत ही गम्भीर होती जाती है और विषय का विवरण भी संक्षिप्त होता जाता है। यहाँ तक कि उसके अन्तिम दस वर्षों का विवरण देखें तो वह आईने अकबरी के बहुत पास जा पहुँचती है। लेकिन जहाँ जो विषय जिस रंग में है, वहाँ उसे पढ़ कर मन

यही कहता है कि यही बहुत ठीक है। जहाँ नया शासन वर्ष आरम्भ होता है, या और कोई विशेष बात होती है, वहाँ भूमिका रूप में कुछ पंक्तियाँ दी हैं जो कहीं तो बहार के रंग में हैं और कहीं दार्शनिक ढंग पर। उसमें दो-दो शेर भी बहुत ही सुन्दरता के साथ लगा दिए हैं, जिनमें रंगीनी तो कम है और प्रौढ़ता अधिक है।

[इसके उपरान्त मूल में इसी प्रकार की कुछ जलूसी सनों के आरम्भ की भूमिकाएँ उदाहरण स्वरूप दी गई हैं जो हिन्दी में अनावश्यक समझ कर छोड़ दी गई हैं। —अनुवादक।]

जिस प्रकार मुल्ला साहब समय पड़ने पर नहीं रुक सकते, उसी प्रकार आजाद भी नहीं रुक सकता। यह उनकी आत्मा से कुछ क्षणों के लिये क्षमा माँगता है और न्याय-प्रिय लोगों को दिखलाता है कि शेख प्रत्येक व्यक्ति के गुण में बल्कि बात-बात में बाल की खाल निकालते थे। निस्सन्देह ये वाणी के गुण-दोष परखनेवाले सराफ थे। एक-एक शब्द को खूब परखते थे। लेकिन मुझे इस बात का आश्चर्य है कि मुल्ला साहब दिन-रात अब्बुलफजल और फैजी के साथ हिले-मिले रहते थे और उनके वचनों को स्वयं उन्हीं के मुँह से सुनते थे और अपने लेखों को भी देखते थे। इतना सब कुछ होने पर भी आप अपने ग्रन्थ में लिखते हैं कि जिस समय अकबरनामा लिखा जा रहा था, उस समय साम्राज्य के एक स्तम्भ ने मुझ से कहा कि बादशाह ने नगर चीन आबाद किया है। तुम भी अकबरनामे के ढंग पर उसकी बनावट के सम्बन्ध में कुछ वर्णन लिखो। आपने उस पर कोई आधा पृष्ठ लिखा होगा। वह भी अपनी पुस्तक में

उद्धृत कर दिया है। यह अवश्य है कि अपना पुत्र सभी को सुन्दर जान पड़ता है। लेकिन मुल्ला साहब और सब लोग बराबर भी तो नहीं हैं। अँधेरे उजाले में अन्तर भी न जान पड़ा। इसमें सन्देह नहीं कि अकबरनामे का ढंग यही है। विषयों का जमघट, लेखन-शैली का ओज, शब्दों की धूम-धाम, पर्य्यायवाची शब्दों की अधिकता, प्रत्येक घटना के साथ उसका तर्क बहुत विस्तृत और जटिल वाक्यों में हैं। वाक्य पर वाक्य चढ़े चले आते हैं। मानों बादशाही कमान है कि खिंचती ही चली आती है। मुल्ला साहब ने उसकी नकल की है। भला नकल कहाँ तक हो सकती है? ऐसा जान पड़ता है कि बैठे हुए मुँह चिढ़ा रहे हैं। और अन्तिम शेर पर आकर तो मानों रो ही दिए हैं। पाठकों ने देख ही लिया है कि शेख भी शेर लिखते हैं, पर ऐसा जान पड़ता है कि मानों अँगूठी पर का नगीना जड़ दिया है। भला अपने उस लेख को अपनी पुस्तक में उद्धृत करके मुल्ला साहब को अपने आपको बदनाम करने की क्या आवश्यकता थी?

[इसके उपरान्त मूल में मुल्ला साहब की वह रचना भी दे दी गई है जो उन्होंने अकबरनामे के जोड़ पर लिखी थी। वह भी यहाँ अनावश्यक समझ कर छोड़ दी गई है।—अनुवादक।]

मुल्ला साहब ने गोल-मोल वाक्य में लिखा है, इससे पता नहीं चलता कि वह फरमाइश करनेवाला कौन था। सम्भवतः आसफखाँ या कलीचखाँ होंगे; क्योंकि अमीरों में प्रायः इन्हीं लोगों के जलसों में आप सम्मिलित रहा करते थे। और यदि अब्बुलफजल ने भी फरमाइश की हो तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं। वह

भो भारी दिल्लगीबाज थे। कहा होगा कि बातें तो बहुत बनाते हैं, कुछ करके भी तो दिखाएँ। घड़ी दो घड़ी दिल्लगी रहेगी।

"हाँ खलीफा हम भी देखें पहलवानी आपकी।"

इतना सब कुछ होने पर भी जो व्यक्ति भाषा की इस सरसता की नदी को आदि से अन्त तक देखेगा और फिर किनारे पर खड़ा होकर विचार करेगा, उसे जान पड़ेगा कि इस स्रोत के जल में कुछ और ही आनन्द तथा स्वाद है; बीस कोस पर कुछ और है, बीच में कुछ और है, फिर कुछ और। यह समय का संयोग है। नये आविष्कारों में ऐसे परिवर्तन अवश्य होते हैं। वाणी रूपी पोत के उस नाविक ने यह बात अवश्य समझी होगी। और यदि शीघ्र ही उसकी मृत्यु न हो जाती, तो आश्चर्य नहीं कि आदि से आरम्भ करके अन्त तक एक ढंग से कर दिखाता।

आईन अकबरी का तीसरा खण्ड सन् १००६ हि० में समाप्त किया था। इसकी प्रशंसा तो किसी प्रकार हो ही नहीं सकती। इसमें राज्य के प्रत्येक कार्य और विभाग का पूरा वर्णन, उसके आय-व्यय का विवरण और प्रत्येक काम के नियम आदि लिखे हैं। साम्राज्य के एक-एक प्रदेश का विवरण, उसकी चौहद्दी, विस्तार आदि दिया है। पहले संक्षेप में वहाँ का ऐतिहासिक विवरण है; फिर वहाँ का आय-व्यय, प्राकृतिक उपज तथा कला-कौशल आदि और वहाँ तैयार होनेवाली चीजें, वहाँ के प्रसिद्ध स्थान, नदियाँ, नहरें, नाले, स्रोत, उनके निकलने के स्थान, प्रवाह के मार्ग, उनसे होनेवाले लाभ आदि दिए हैं। साथ ही यह भी बतलाया है कि उनमें कहाँ-कहाँ भय की आशंका है, और कब-

कब उनसे हानियाँ पहुँची हैं, आदि आदि। सेनाओं और उनकी व्यवस्था का विवरण, अमीरों की सूची और उनके पद, कर्मचारियों के प्रकार, बादशाह के दरबार तथा सेवा में रहनेवाले लोगों और बुद्धिमानों की सूची, गुणियों तथा संगीतज्ञों आदि के विवरण, अच्छे-अच्छे कारीगरों, पहुँचे हुए फ़क़ीरों, तपस्वियों, बाजारों और मन्दिरों आदि की सूची और उनके विवरण दिए हैं; और बतलाया है कि कौन-कौन सी ऐसी चीजें हैं जो विशेषतः भारत से ही सम्बन्ध रखती हैं। साथ ही भिन्न-भिन्न ग्रन्थों के अध्ययन से भारतवर्ष के सम्प्रदायों तथा विद्याओं और विज्ञानों आदि के सम्बन्ध में शेख को जो ज्ञान प्राप्त हुआ था, वह भी इसमें दे दिया गया है।

आज-कल के पढ़े-लिखे लोगों की दृष्टि में ये बातें न जँचेंगी, क्योंकि वे सरकारी रिपोर्टें देखते हैं। अब छोटे-छोटे जिलों के कलेक्टर, डिप्टी कमिश्नर या बन्दोबस्त के अधिकारी, उससे बहुत अधिक बातें अपने जिले की वार्षिक रिपोर्टों में लिख देते हैं। लेकिन जिन लोगों की दृष्टि अधिक विस्तृत है और जो आगे-पीछे बराबर निगाह दौड़ाते हैं और समय-समय पर होनेवाले कार्यों को बराबर देखते चले आते हैं, वे जानते हैं कि उस समय यह क्रम सोचना, इसकी व्यवस्था करना और फिर इसे पूर्णता तक पहुँचाना एक काम रखता था। जो करता है, वही जानता है कि एक-एक शब्द पर कितना लहू टपकाना पड़ता है। अब तो मार्ग निकल आया। नदी में घुटने-घुटने पानी है। जिसका जी चाहे, निकल जाय।

ऊपर जिन विषयों का उल्लेख किया गया है, उन पर दृष्टि

डालिए तो बुद्धि चकरा जाती है कि कहाँ से इतनी सामग्री एकत्र की थी और किस मिट्टी में से कण चुन-चुन कर यह सोने का पहाड़ खड़ा किया था। एक छोटी-सी बात पाठक यह समझ लें कि सात महाद्वीपों का साधारण विभाग करके स्वयं भी नई बातें ढूँढ कर लिखी हैं। उनमें कहता है कि फिरंग देश के यात्रियों ने आजकल एक नया टापू देखा है जिसका नाम "छोटी-दुनिया" रखा है। यह स्पष्ट है कि इससे अमेरिका का अभिप्राय है जिसका आविष्कार उन्हीं दिनों कोलम्बस ने किया था। लेकिन इस ग्रन्थ के अभाग्य पर दुःख है कि मुल्ला साहब ने कैसी बुरी तरह से इस पर धूल उड़ाई है।

यदि मैं आईने अकबरी की भाषा के सम्बन्ध में बिना कुछ कहे आगे बढ़ूँ तो न्याय के दरबार में अपराधी ठहराया जाऊँ। इसलिये कम से कम इतना कह देना आवश्यक है कि इसके छोटे-छोटे वाक्य, भाव व्यक्त करने के नए-नए ढंग और उस पर दो-दो तीन-तीन शब्दों के मनोहर और चित्ताकर्षक वाक्य अच्छी तरह गम्भीरतापूर्वक लिखे हुए पृष्ठों का इत्र और रूह हैं। सम्भव नहीं कि कोई निरर्थक या अधिक शब्द आने पावे। यदि इजाफत पर इजाफत ("का" अर्थवाला चिह्न) आ जाय तो कलम का सिर कट जाय। इस प्रकार भाषा बहुत ही स्पष्ट, सरस, चलती हुई और उपयुक्त है। उत्प्रेक्षा और अत्युक्ति आदि या बनावट का कहीं नाम नहीं है।

अब्बुलफजल ने इस ढंग से लिखना उस समय आरम्भ किया होगा, जब कि अग्निपूजक लोग खान्देश प्रान्त से जन्द और पह्लवी भाषा की पुस्तकें लेकर आए होंगे। इसमें सन्देह

नहीं कि इसने इस बात का कोई ठीक नियम नहीं रखा कि भाषा में अरबी का कोई शब्द बिल्कुल आने ही न पावे। लेकिन भाषा का ढंग और शैली आदि फारस के प्राचीन ग्रन्थों से ही ली है। और उसका यह सुधार बहुत ही ठीक और युक्ति-संगत था; क्योंकि यदि वह केवल शुद्ध फारसी शब्दों के ही व्यवहार का नियम बना लेता तो यह पुस्तक बहुत ही कठिन हो जाती और इसके पढ़ने के लिए एक अच्छे कोष की आवश्यकता होती। इस समय तो उसे प्रत्येक व्यक्ति पढ़ता है और उसका आनन्द लेता है। पर उस दशा में यह बात कहाँ से हो सकती थी? तात्पर्य यह कि उसने जो कुछ लिखा है, वह बहुत ही अच्छा लिखा है। वह अपने ढंग का आप ही नेता और मार्गदर्शक था और अपना वह ढंग अपने साथ ही लेता गया। फिर भी किसी की मजाल नहीं हुई कि इस ढंग से लिखने के लिये कलम छू सके।

आलोचना

जिन लोगों के मस्तिष्क में आज-कल का नया प्रकाश भर गया है, वे इसके रचित ग्रन्थों को पढ़कर कहते हैं कि एशिया के लेखकों में अब्बुलफजल सबसे अधिक उत्प्रेक्षा और अत्युक्तियाँ लिखनेवाला लेखक था। इसने अकबरनामा और आईन अकबरी लिखने में फारसी की पुरानी योग्यता को फिर से जीवित किया है। इसने सुन्दर लेख-शैली की आड़ में बहुत विस्तार से अकबर के केवल गुण दिखलाए हैं; और दोष इस प्रकार छिपाए हैं कि उसे पढ़ने से प्रशंसक तथा प्रशंसित दोनों से घृणा होती है और

दोनों के व्यक्तित्व तथा गुणों पर बट्टा लगता है। हाँ वह बहुत बड़ा पंडित, बुद्धिमान् और राजनीतिज्ञ था। संसार के कार्यों के लिये जिस प्रकार की बुद्धि की आवश्यकता होती है, उस प्रकार की बुद्धि इसमें अवश्य थी। मेरा मत है कि शेख की भाषा आदि पढ़नेवालों ने जो कुछ कहा, वह भी ठीक है; परन्तु वह विवश था, क्योंकि छः सौ वर्षों से फ़ारसी का यही ढंग चला आता था। इसने भाषा में जो नई बातें निकाली हैं, उनके कारण बहुत से सुधार हुए हैं और उसने बहुत से दोषों को सँभाला है। इसके अतिरिक्त जो लोग भाषा के जानकार हैं, लेखों का गूढ़ रहस्य ताड़नेवाले हैं और वाणी के रंग-ढंग पहचानते हैं, वे समझते हैं कि इसने जो कुछ कहा, और जिस ढंग से कहा, बहुत अच्छा और ठीक कहा है। कोई बात उठा नहीं रखी है। सब वास्तविक बातें लिख दी हैं और लेखन-कौशल का दर्पण ऊपर से रख दिया है। यह इसी का काम था; और यह भी इसी का काम था कि सब कुछ कह दिया, परन्तु जिन लोगों से वह नहीं कहना चाहता था, वे कुछ भी नहीं समझे। और वे लोग अब तक कुछ नहीं समझते। खुशामद की बात को हम नहीं मानते। प्रत्येक भाषा के इतिहास उपस्थित हैं। कौन सा ऐसा लेखक है जो अपने समय के बादशाह की खुशामद करने और अपनी जाति का पक्षपात करने से बचा हो? वह अपने स्वामी का निष्ठ और नमक-हलाल नौकर था। उसी के न्याय के कारण उसके वंश की प्रतिष्ठा की रक्षा हुई थी। उसी की रक्षा से सबके प्राण बचे थे। उसी के कारण उसकी योग्यता तथा गुणों का आदर हुआ था। उसी की गुण-ग्राहकता के कारण वह साम्राज्य का स्तम्भ बना था।

उसी के आश्रय में रहकर उसने ये सब रचनाएँ की थीं। और फिर रचनाओं ने बल्कि स्वयं उसने भी सैकड़ों वर्षों की आयु पाई थी। खुशामद क्या चीज है ! उसका हृदय तो अकबर की उपासना और पूजन करता होगा। उसके प्राण लोट लोट कर उसके मार्ग की धूल बनते होंगे। उसने बादशाह के प्रति बहुत कुछ आदर प्रकट किया था और उसे धन्यवाद दिया था। लोगों ने उसका नाम खुशामद रख दिया। और फिर यदि खुशामद ही की तो इसमें आश्चर्य की कौन सी बात थी और अपराध क्या किया ? यदि आज-कल के लोग उसके स्थान पर होते तो उससे हजार दरजे बढ़ कर बकवाद करते, लेकिन फिर भी ऐसी रचना न कर सकते। पर उनका ऐसा भाग्य कहाँ ! हाँ एक बात यह है कि उसने भारतवर्ष में बैठ कर एशिया की विद्याओं और अरबी तथा फारसी आदि भाषाओं का इतना अच्छा ज्ञान प्राप्त किया था कि अकबर का वजीर बन गया। अब तुम अँगरेजी में इतनी योग्यता प्राप्त करो कि सब को पीछे हटाओ और इस समय के बादशाह के दरबार पर छा जाओ। फिर देखें कि तुम कितने बड़े लेखक हो और क्या लिखते हो। मेरे मित्रो, देखो, वह साम्राज्य का एक अंग था। आज-कल साम्राज्य के स्तम्भ देश की व्यवस्था के लिये हजार तरह की युक्तियाँ लड़ाते हैं। यदि प्रत्येक बात में वास्तविक और सत्यता पर चलें और लिखें तो अभी साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो जाय। लोगों को अक्षर पढ़ना आ गया है, जबान चलने लगी है। वे दूसरे की बात तो समझते नहीं; जो मुँह में आता है, कहे जाते हैं।

तैमूरी वंश के बादशाहों के यहाँ से अब्बुलफजल के उपरान्त

"अल्लामा" (महापंडित) की उपाधि सअदुल्लाखाँ चिनियोटी के अतिरिक्त और किसी को प्राप्त नहीं हुई। सअदुल्लाखाँ शाहजहाँ का वजीर था। मुल्ला अब्दुलहमीद लाहौरी ने शाहजहाँ-नामे में ईरान के राजदूत का वर्णन करते हुए लिखा है कि बादशाह की ओर से एक खरीता भेजा गया था जो सअदुल्लाखाँ ने लिखा था। वहीं उस असल खरीते की प्रतिलिपि भी दे दी गई है। अब क्या कहें, अब्बुलफजल की नकल तो की है; उसी तरह आरम्भ में भूमिका भी बाँधी है, शब्दों की धूम-धाम भी दिखलाई है, वाक्यों पर उसी आशय के वाक्य भी खूब जोड़े गए हैं, परन्तु वही दशा है कि कोई छोटा बच्चा चलने का प्रयत्न करता है। दो कदम चले और गिर पड़े। उठे, चार कदम चले, फिर बैठ गए। और यह बात भी उसी अवस्था में हो सकी थी कि पूर्ण गुणी शेख बड़े-बड़े ग्रन्थ लिख कर मार्ग बतला गया था। लेकिन फिर भी वह बात कहाँ! इसे देखो कि दनादन चला जाता है। न विचारों की उड़ान थकती है और न कलम की नोक घिसती है।

अब मुल्ला अब्दुलहमीद का हाल सुनिए। चगताई साम्राज्य में शाहजहाँ का साम्राज्य तलवार और कलम की सामग्री के विचार से सब से बड़ा और प्रसिद्ध साम्राज्य था। विद्वानों और पंडितों के अतिरिक्त प्रत्येक विषय के गुणी उसके दरबार में उपस्थित थे। बादशाह की इच्छा हुई कि हमारे शासन-काल का विवरण लिखा जाय। तलाश होने लगी कि आज-कल बहुत ऊँचे दरजे का लेखक कौन है। अमीरों ने कई व्यक्तियों के नाम बतलाए। कोई पसन्द न आया। मुल्ला अब्दुलहमीद का नाम इस प्रशंसा

के सहित उपस्थित किया गया कि ये शेख के शिष्य हैं। इनसे अच्छा लेखक और कौन हो सकता है। उन्होंने नमूने के तौर पर कुछ हाल लिख कर भी सेवा में उपस्थित किया। बादशाह ने उसे स्वीकार कर लिया। लिखने की सेवा उन्हें सौंपी गई। अब पाठक समझ सकते हैं कि अब्बुलफजल का वह शिष्य, जो शाहजहान के समय में बुड्ढा घाघ हो गया होगा, कैसा रहा होगा। थोड़ा सा वर्णन लिख कर वह सत्तरे बहत्तरे हो गए। शेष ग्रन्थ और लोगों ने लिखा। खैर, कोई लिखे, यहाँ लिखने योग्य बात यह है कि शिष्य होना और बात है; गुरु की योग्यता सम्पादित करना और बात है। शाहजहाँनामे की भाषा बहुत अच्छी है। उसमें बहुत कुछ लेख-कौशल दिखलाया गया है। अनुप्रासयुक्त वाक्यों के खटके बराबर चले जाते हैं। मीना बाजार सजा दिया है। लेकिन अकबरनामे की भाषा से उसका क्या सम्बन्ध !

मुल्ला अब्दुलहमीद बहुत ही सूक्ष्म विचारोंवाले और बहार के ढंग के लेखक थे। रंगीन-रंगीन शब्द चुन कर लाते थे और बहार के वाक्यों में साधारण रूप से सजाते थे। इस प्रकार वे अपने भाव प्रकट कर देते थे। परन्तु लेखन-कला के उस विधाता का क्या कहना है ! अगर उसके बाग में गुलाब और सम्बुल लाकर रखें तो उनके रंग उड़ जायँ। तूती और बुलबुल आवें तो उनके पर जल जायँ। वहाँ तो विज्ञान और दर्शन की लेख-प्रणाली है। अपना अभिप्राय प्रकट करने के लिये वह चिन्तन-रूपी आकाश से विषय नहीं, बल्कि तारे उतारता था और दार्शनिक दृष्टि से उनकी परीक्षा करके वाणी पर पूर्ण अधिकार रखने-

वाली अपनी जिह्वा को सौंपता था। वह जिह्वा जिन शब्दों में चाहती थी, वे भाव प्रकट कर देती थी। और ऐसे ढंग से कहती थी कि आज तक जो सुनता है, वह सिर धुनता है। हम उसके वाक्यों को बार-बार पढ़ते हैं और आनन्द लेते हैं। उन वाक्यों की सुन्दर रचनाएँ और स्वरूप देखने के ही योग्य हैं। केवल शब्दों को आगे-पीछे रखकर भावों को भूमि से आकाश पर पहुँचा देना इसी का काम है। विपय का स्वरूप ऐसे ढंग से उपस्थित करता है कि हृदय यह बात मान लेता है कि यह जो घटना हुई, इसके सम्बन्ध में उस समय की अवस्था कहती थी कि यह इसी रूप में हो और इसी के अनुसार इसका परिणाम निकले; क्योंकि इसकी जड़ वह थी, वह थी, आदि आदि।

मुकातबाते अल्लामी

या

शेख के पत्र

अब्बुलफजल के संगृहीत जो पत्र आदि हैं, वे साधारणतः विद्यालयों आदि में पढ़ाए जाते हैं। इसके तीन खंड हैं जिनका क्रम उसके भान्जे ने लागाया है जो उनके पुत्र के तुल्य था।

पहले खंड में वे खरीते हैं जो ईरान और तूरान के बादशाहों के लिये लिखे थे। साथ ही वे आज्ञापत्र भी दिए गए हैं जो अमीरों आदि के नाम भेजे गए थे। शब्दों की शोभा, अर्थ का समूह, वाक्यों की चुस्ती, विषय की श्रेष्ठता, भाषा की स्वच्छता, जबान का जोर मानों नदी का प्रवाह है जो तूफान की तरह चला

आता है। उसमें साम्राज्य के उद्देश्य, राजनीतिक अभिप्राय, उनके दार्शनिक तर्क और भावी परिणामों के सम्बन्ध की सब युक्तियाँ आदि मिल कर मानों एक रूप प्राप्त कर लेती हैं और बादशाह के सामने सिर झुका कर खड़ी हो जाती हैं। वह अभिप्राय और शब्दों को जिस ढंग से और जिस जगह चाहता है, बाँध लेता है। यहीं अब्दुल्लाखाँ उजबक का वह कथन याद आता है कि अकबर की तलवार तो नहीं देखी, परन्तु अब्बुल-फजल की कलम भयभीत किए देती है।

दूसरे खंड में अपने निजी पत्र आदि हैं जो अमीरों, मित्रों और सम्बन्धियों आदि के नाम भेजे हैं। उनके अभिप्राय और ही प्रकार के हैं। इसलिये कुछ पत्र, जो खानखानाँ या कोकल-ताशखाँ आदि के नाम हैं, मानों पहले ही खंड के आकाश में विहार करते हैं। शेष तीसरे खंड के विचारों से सम्बद्ध हैं। पहले दोनों खंडों के सम्बन्ध में इतना कहना आवश्यक है कि उन्हें सब लोग पढ़ते हैं और पढ़ानेवाले पढ़ाते हैं। बल्कि बड़े बड़े विद्वान् और पंडित लोग उस पर टीकाएँ आदि लिखते हैं; लेकिन इससे कुछ भी लाभ नहीं। उनके पढ़ने का आनन्द तभी आ सकता है जब कि पहले इधर बाबर और अकबर के समय का इतिहास, उधर ईरान के बादशाह का इतिहास और अब्दुल्ला-खाँ का तूरान का इतिहास देखा हो, भारतवर्ष के राजाओं का क्रम और उनका रीति-व्यवहार जान लिया हो, दरबार और दरबार के लोगों के विवरण तथा उनके आपस के सूक्ष्म व्यवहारों आदि का भली भाँति ज्ञान प्राप्त कर लिया हो। और यदि ये सब ज्ञान न हो, तो पढ़नेवाला सारी पुस्तक पढ़ लेगा और कुछ भी

न समझेगा। उसकी दशा उसी अन्धे के समान होगी जो सारे अजायबखाने में घूम आया हो, लेकिन फिर भी जिसे कुछ ज्ञान न हुआ हो।

तीसरे खंड में अपनी कुछ पुस्तकों की भूमिकाएँ दी है। प्राचीन ग्रन्थकारों के ग्रन्थों को देखने पर मन में जो विचार उत्पन्न हुए हैं, उनका भी गद्य में एक अच्छा चित्र खींच दिया है। उन दिनों एशिया में कोई समालोचना का नाम भी नहीं जानता था। नई-नई बातें ढूँढ़नेवाली उसकी विचार-शक्ति को देखना चाहिए कि वह तीन सौ वर्ष पहले उस ओर प्रवृत्त हुआ था। प्राय: आत्मा के उच्च पदों, भावों की सरसता या भावुकता तथा विचारों की स्वतन्त्रता प्रकट होती है, जिससे यह भी सूचित होता है कि लेखक संसार से विरक्त सा है। इतना सब कुछ होने पर भी विचारों की उच्चता और श्रेष्ठता का एक जुदा जगत बसा हुआ जान पड़ता है। अनजान लोग कहते हैं कि दोनों भाई नास्तिक और प्रकृतिवादी थे। वे यहाँ आकर देखें कि ऐसा जान पड़ता है कि जुनैद बुगदादी बोल रहे हैं या शेख शिबली। और वास्तव में ईश्वर जाने कि वे क्या थे। इस खंड का अध्ययन करनेवाले के लिये यह आवश्यक है कि वह दर्शन तथा तत्व-ज्ञान के अतिरिक्त मनन करने में अध्यात्म से भी भली भाँति परिचित हो। तभी उसे विशेष आनन्द आवेगा; और नहीं तो भोजन करते जाओ, ग्रास चबाते जाओ, पेट भर जायगा; पर स्वाद पूछो तो कुछ भी नहीं।

इसमें कुछ पुस्तकों पर भूमिकाएँ लिखी हैं। जब किसी श्रेष्ठ कवि की कोई उत्तम रचना सामने आ जाती थी, तो उसे भी

लिख लेते थे। या ग्रन्थों में कोई अच्छी बात या ऐतिहासिक कथानक पसन्द आता था तो उसे भी इसी में स्थान देते थे। किसी में कुछ मोती गद्य या पद्य का रूप धारण करके अपनी तबीयत से टपकते थे, उन्हें भी टाँक लिया करते थे। किसी में हिसाब किताब आदि टाँक लेते थे। दुःख है कि वे जवाहिर के टुकड़े अब कहीं नहीं मिलते। कुछ पुस्तकों पर उपसंहार लिखे हैं या उन पर अपनी सम्मति लिखी है। उनके अन्त में यह भी लिख दिया है कि यह ग्रन्थ अमुक समय अमुक स्थान पर लिखा गया था। जान पड़ता है कि उन्हें देखने से हमें आज जो आनन्द मिलता है, उसे वह उसी समय ज्ञात था। प्रायः लेख लाहौर में लिखे गए हैं और कुछ काश्मीर में तथा कुछ खान्देश में लिखे गए हैं। उन्हें पढ़ कर हमें अवश्य इस बात का ध्यान आता है कि उस समय लाहौर की क्या दशा होगी और वह लिखने के समय यहाँ किस प्रकार बैठा होगा। काश्मीर और उसके आस-पास के स्थानों में मैं दो बार गया था। वहाँ कई स्थानों पर दोनों भाइयों का स्मरण हुआ और मन की विलक्षण दशा हुई।

अमीर हैदर बिलग्रामी ने अकबर की जीवनी में लिखा है कि अब्बुलफजल के पत्र-व्यवहार के चार खंड थे। ईश्वर जाने चौथा खंड क्या हुआ।

अयार दानिश—यह वही पुस्तक है जो कलेला व दमना के नाम से प्रसिद्ध है। मूल पुस्तक संस्कृत में (पंच-तंत्र) थी। भारत से नौशेरवाँ ने मँगवाई थी। वहाँ बहुत दिनों तक उसी समय की फारसी भाषा में प्रचलित रही। अब्बासिया के

समय में बुगदाद पहुँच कर अरबी में भाषान्तरित हुई। सामानियों के समय में रूदकी ने इसे पद्य-बद्ध किया। इसके उपरान्त कई रूप बदल कर मुल्ला हुसैन वायज की जवान से फारसी के कपड़े पहने और फिर अपनी जन्म-भूमि भारत में आई। जब अकबर ने इसे देखा तो सोचा कि जब मूल संस्कृत ग्रंथ ही हमारे सामने उपस्थित है, तब उसी के अनुसार क्यों न अनुवाद हो। दूसरे यह कि सुन्दर उपदेशों के विचार से वह पुस्तक सर्व साधारण के लिये बहुत उपयोगी है। यह ऐसी भाषा में होनी चाहिए जिसे सब लोग समझ सकें। अनवार सहेली कठिन शब्दों और उपमाओं आदि के एच-पेंच में आकर बहुत कठिन हो गई है। शेख को आज्ञा दी कि मूल संस्कृत को सामने रख कर अनुवाद करो। उन्होंने थोड़े ही दिनों में उसे समाप्त करके सन् ९९६ हि० में उसका उपसंहार लिख दिया। परन्तु उपसंहार भी ऐसा लिखा है कि मर्मज्ञता की आत्मा प्रसन्न हो जाती है।

मुल्ला साहब इस पर भी अपनी एक पुस्तक में वार कर गए हैं। अकबर की नई आज्ञाओं की शिकायत करते हुए कहते हैं कि इस्लाम की प्रत्येक बात से घृणा है। विद्याओं से भी विराग है। भाषा भी पसन्द नहीं। अक्षर भी अच्छे नहीं जान पड़ते। मुल्ला हुसैन वायज ने कलेला दमना का अनवार सहेली नामक कैसा सुन्दर अनुवाद किया था। अब अब्बुलफज़ल को आज्ञा हुई कि इसे साफ और नंगी फारसी में लिखो, जिसमें उपमाएँ आदि भी न हों, अरबी शब्द भी न हों।

यदि यह भी मान लें कि अकबर के सम्बन्ध में मुल्ला साहब की सम्मति हर जगह ठीक है, लेकिन इस विशेष टिप्पणी

को देख कर कह सकते हैं कि अब्बुलफजल पर हर जगह अनुचित आक्षेप है। यह तो प्रकट ही है कि शेख और उनके पूर्वजों के पास विद्या और योग्यता आदि की जो कुछ पूँजी थी, वह सब अरबी विद्याओं और अरबी भाषा की ही थी। यह सम्भव नहीं कि उन्हें अरबी विद्याओं और अरबी भाषा से घृणा और विराग हो। हाँ, वह अपने सम्राट् का आज्ञाकारी सेवक था। वह अपना औचित्य समझता था और स्वामी तथा सेवक के सम्बन्ध का स्वरूप भी भली भाँति जानता था। यदि वह अकबर की आज्ञाओं का सच्चे हृदय से पालन न करता तो क्या नमक-हराम बनता ? और फिर ईश्वर के सामने क्या उत्तर देता ? और यह भी सोचने की बात है कि अकबर की इस आज्ञा से यह परिणाम कैसे निकाल सकते हैं कि वह अरबी विद्याओं तथा भाषा से विरक्त था ? यदि एक कठिनता को सरलता की सीमा तक पहुँचा दिया तो इसमें क्या धर्म-द्रोह हो गया ? मुल्ला साहब के हाथ में कलम है और वह भी अपने ग्रन्थ-रूपी प्रदेश के अकबर बादशाह हैं। जो जी चाहे, लिख जायँ।

रुकआत अब्बुलफजल—इसमें उस ढंग के पत्र हैं जिसे आजकल अंगरेजी में "प्राइवेट" कहते हैं। इसका एक-एक वाक्य देखने के योग्य है। इन पत्रों से शेख के हार्दिक विचार और घराऊ बातें विदित होती हैं। फिर भी इनका आनन्द उसी समय आवेगा जब कि उस समय की सब ऐतिहासिक बातों और उस समय के लोगों के छोटे-छोटे कामों तक का पूरा-पूरा ज्ञान हो। जिन शेख अब्बुलफजल के सम्बन्ध में मैं अभी लिख चुका हूँ कि कभी शेख शिबली जान पड़ते हैं और कभी जुनैद बुगदादी,

उन्हीं शेख अब्बुलफजल ने खानखानाँ के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा है, उसे पढ़कर लज्जित होता हूँ। और खानखानाँ भी वही है जिसे पहले खंड में अकबर की ओर से आज्ञापत्र लिखते हैं और ऐसा प्रेम सूचित करते हैं कि मन, प्राण और ज्ञान सब निछावर हुए जाते हैं। जब दूसरे खंड में अपनी ओर से पत्र लिखते हैं तो भी ऐसा ही प्रेम सूचित होता है कि मन, प्राण और ज्ञान सब निछावर हुए जाते हैं। ऐसा जान पड़ता है कि माँ की प्रेम भरी छाती से दूध बहा है। इतना सब कुछ होने पर भी जब खान्देश में खानखानाँ शाहजादा दानियाल से प्रदेश ले रहा है, कुछ प्रदेशों में ये स्वयं लश्कर लिए फिरते हैं, कभी दोनों पास आ जाते हैं और कभी दूर जा पड़ते हैं, और दोनों के काम आपस में बिलकुल मिले-जुले हैं, उस समय वहाँ से शेख ने अकबर, उसकी माँ, उसके पुत्र और शाहजादा सलीम अर्थात् जहाँगीर को कुछ निवेदनपत्र भेजे हैं। उनमें खानखानाँ के सम्बन्ध में ऐसी-ऐसी बातें लिखते हैं और ऐसे-ऐसे विचार प्रकट करते हैं कि बुद्धि चकित होकर कहती है कि ऐ हजरत जुनैद, आप और ऐसे विचार! ऐ हजरत बायजीद, आप और ऐसी बातें। यदि ईश्वर ने चाहा तो मैं उनमें से कुछ निवेदनपत्रों की प्रतिलिपियाँ अन्त में अवश्य दूँगा।

कश्कोल—फारसी में कश्कोल भिक्षुक के भिक्षापत्र या खप्पड़ को कहते हैं जिसे सब लोगों ने देखा होगा। भिक्षुक जो कुछ पाता है, चाहे पुलाव हो और चाहे चने के दाने, आटा हो या रोटी, दाल हो या बाटी, हर तरह का टुकड़ा चाहे घी में तर हो, चाहे सूखा, कुछ साथ में हो या रूखा, बासी, ताजा, मीठा,

सलोना, तरकारी, मेवा, तात्पर्य यह कि सब कुछ उसी में रखता है। योग्यता सम्पादित करने का इच्छुक पाठक अपने पास एक सादी पुस्तक रखता है; और जिन पुस्तकों की सैर करता है, उनमें से जो बात पसन्द आती है, चाहे वह किसी विद्या या कला की हो, गद्य या पद्य में हो, उसी पुस्तक में लिखता जाता है। उसी को कश्कोल कहते हैं। बहुत से विद्वानों के कश्कोल प्रसिद्ध हैं। उनसे विद्यार्थियों को ज्ञान की अच्छी पूँजी मिलती है। दिल्ली में मैंने शेख अब्बुलफजल के कश्कोल की एक प्रति देखी थी जो अब्बुलखैर के हाथ की लिखी हुई थी।

रज्मनामा— यह महाभारत का अनुवाद है। इसपर दो जुज का खुतबा लिखा हुआ है।

इनके रचित ग्रन्थ देखने से यह भी पता चलता है कि इनकी प्रकृति-रूपी भूमि में शृंगार रस के विषय बहुत ही कम फूलते-फलते थे। फूल, बुलबुल और सौन्दर्य आदि से सम्बन्ध रखनेवाले शेर आदि कहीं संयोगवश किसी विशेष कारण से लाने पड़ते थे तो विवश होकर लाते थे। इनकी तबीयत की असल पैदावार आत्मोन्नति, अध्यात्म, दर्शन, उपदेश, संसार की असारता और सांसारिक व्यक्तियों की कामनाओं और वासनाओं के प्रति घृणा होती थी। इनके लेखों से यह भी विदित होता है कि जो कुछ लिखते थे, वह एक बार कलम उठाकर बराबर लिखते चले जाते थे। सब बातें इनके मन से तुरन्त प्रस्तुत होती थीं। इन्हें अपने लेखों के लिये परिश्रम करना और पसीना बहाना नहीं पड़ता था। इनके पास दो ईश्वर-दत्त गुण थे। एक तो विषयों तथा भावों की अधिकता और दूसरे भाव व्यक्त करने की

शक्ति तथा शब्दों की उपयुक्तता। यदि ये दोनों बातें न होतीं तो इनकी भाषा इतनी साफ और चलती हुई न होती।

इन्होंने पद्य में कोई ग्रन्थ नहीं लिखा। लेकिन इससे यह नहीं समझना चाहिए कि ये स्वाभाविक कवित्व शक्ति से वंचित थे। मैंने इनके लेखों को बहुत ध्यानपूर्वक देखा है। जहाँ कुछ लिखा है, और जितना लिखा है, ऐसा लिखा है कि काँटे की तौल। यह अवश्य है कि ये जो कुछ लिखते थे, समय और आवश्यकता को देखते हुए लिखते थे। अनावश्यक रूप से कोई काम करना इनके नियम के विपरीत था। जहाँ आवश्यक और उपयुक्त देखते हैं, गद्य के मैदान को पद्य के गुलदस्तों से सजाते हैं जिससे प्रमाणित होता है कि इनके मन में सब प्रकार के भाव सदा प्रस्तुत रहते थे और ठीक समय पर सहायता देते थे। जो विषय चाहते थे, बहुत ही गम्भीरतापूर्वक, उपयुक्त शब्दों में और बहुत अच्छे ढंग से लिखते थे। लेकिन वही कि आवश्यकता के अनुसार। बल्कि यह गम्भीरता और प्रसाद बड़े भाई को प्राप्त नहीं था। ये प्रायः मनस्वी के ढंग पर शेर लिखते हैं और निजामी के मखजने-इसरार तथा सिकन्दर-नामे से मिला देते हैं। कसीदा कहने में अनवरी से टक्कर लेते हैं और उससे आगे निकल जाते हैं।

आकृति—अकबरनामे के अन्त में शेख ने कुछ ईश्वरीय देनों का उल्लेख किया है। उनमें की संख्या ५ और ६ से जान पड़ता है कि ये हाथ-पैर और डील-डौल में साधारण थे। सब अंग आपेक्षिक दृष्टि से ठीक थे। प्रायः स्वस्थ रहते थे, पर रंग के काले थे। अपने निवेदनपत्रों में कई जगह खानखानाँ की शिका-

यत में लिखते हैं कि हुजूर, वह रंग का जितना गोरा है, मन का उतना ही काला है। यद्यपि मैं रंग का काला हूँ, पर फिर भी मन का काला नहीं हूँ। प्रायः सुयोग्य व्यक्तियों ने इनके रचित ग्रन्थ पढ़े होंगे। यदि उन लोगों ने विचार किया होगा तो उन्हें यह बात अवश्य विदित हो गई होगी कि ये गम्भीर, अल्पभाषी और सहनशील व्यक्ति होंगे। इनकी आकृति से हर दम यही जान पड़ता होगा कि कुछ सोच रहे हैं। हर काम में, हर बात में, यहाँ तक कि चलने-फिरने में भी शान्ति और धीमापन होगा; और यही बातें उस समय के इतिहासों की भिन्न-भिन्न स्थानों पर कही हुई बातों से मेल भी खाती हैं।

मआसिरउल् उमरा के देखने से विदित होता है कि कभी असभ्यता या अशिष्टतासूचक शब्द इनके मुँह से नहीं निकलता था। अश्लील बातों से या गाली-गलौज से ये अपनी जबान खराब नहीं करते थे। औरों की तो बात ही क्या, स्वयं अपने नौकरों पर भी कभी नहीं बिगड़ते थे। उनके यहाँ अनुपस्थिति के कारण वेतन नहीं काटा जाता था। जिसे एक बार नौकर रखते थे, उसे फिर कभी नहीं निकालते थे। यदि कोई निकम्मा या अयोग्य व्यक्ति नौकर हो जाता था तो उसकी सेवाओं में परिवर्त्तन करते रहते थे। जब तक रख सकते थे, तब तक रहने देते थे। कहते थे कि यदि यह नौकरी से छुड़ा दिया जायगा तो फिर इसे अयोग्य समझ कर कोई नौकर न रखेगा।

जब सूर्य मेष राशि में आता और नया वर्ष आरम्भ होता था, तब घर के सब कामों आदि को देखते थे और हिसाब-किताब

करते थे। गोशवारों की सूची वनवा कर कार्यालय में रख लेते थे और सब बहियाँ आदि जलवा देते थे। पहनने के सब कपड़े सेवकों को बाँट देते थे। परन्तु पायजामा अपने सामने जलवा देते थे। ईश्वर जाने इसमें उनका क्या उद्देश्य होता था। शेख़ की तीन स्त्रियाँ थीं। एक तो हिन्दुस्तानी थी और सम्भवतः यही घर-वाली होगी, जिसके साथ माता-पिता ने विवाह करके बेटे का घर बसाया होगा। दूसरी काश्मीरिन थी। यदि इन्होंने काश्मीर और पंजाब की यात्रा में स्वयं ही मनोविनोद के लिये इससे विवाह किया हो तो आश्चर्य नहीं। यद्यपि ऐसे गम्भीर विद्वान् और न्यायशील व्यक्ति के योग्य यह बात नहीं है, पर फिर भी मनुष्य ही है। किसी समय उसका मन प्रफुल्लित भी होता है। तीसरी स्त्री ईरानी थी। यदि मेरी सम्मति भ्रमपूर्ण न हो तो यह स्त्री केवल भाषा ठीक करने के लिये और विशेष-विशेष मुहावरे ठीक करने के लिये की होगी। फारसी भाषा में ग्रन्थ आदि लिखना शेख़ का ही काम था। वह भाषा का बहुत अच्छा जानने और परखनेवाला था। हजारों मुहावरे ऐसे होते हैं जो अपने स्थान पर आप ही आप ठीक बैठ जाते हैं। न पूछने-वाला पूछ सकता है, न बतानेवाला बता सकता है। भाषा का मर्मज्ञ लिखते समय लिख जाता है; और जिसे अच्छी भाषा का शौक होता है, वह उसे वहीं गाँठ बाँध लेता है। ऐसी अवस्था में घर-गृहस्थी की छोटी-छोटी और साधारण बातें शब्दों और मुहावरों आदि के कोषों से कब प्राप्त हो सकती हैं! ग्रन्थों से भी यही विदित होता है कि दोनों भाइयों के पास प्रायः ईरानी लोग उपस्थित रहा करते थे और सेवक तथा काम-धन्धा करने-

वाले लोग भी ईरानी ही होते थे। फिर भी घरेलू बातें घर में ही होती हैं। असली मुहावरे बिना इस उपाय के नहीं मिल सकते।

भोजन—उनके भोजन का हाल सुन कर आश्चर्य होता है। सब चीजें मिला कर तौल में २२ सेर होती थीं जो भिन्न-भिन्न प्रकारों से पक कर दस्तरख्वान पर लगती थीं। अब्दुर्रहमान पास बैठता था और खानसामाँ की तरह देखता रहता था। खानसामाँ भी सामने उपस्थित रहता था। दोनों इस बात का ध्यान रखते थे कि किस रिकाबी में से दो या तीन ग्रास खाए हैं। जिस भोजन में से एक ही ग्रास खाते थे और छोड़ देते थे, वह दूसरे समय दस्तरख्वान पर नहीं आता था। यदि किसी भोजन में नमक आदि कम या अधिक होता तो केवल संकेत कर देते थे, जिसका अर्थ होता था कि तुम भी इसे चख कर देखो। वह चख कर खानसामाँ को दे देता था, मुँह से कुछ न कहता था। खानसामाँ इस बात का ध्यान रखता था कि आगे से इस प्रकार की भूल न होने पावे। जब शेख़ दक्खिन की चढ़ाई पर गए थे, तब उनका दस्तरख्वान इतना विस्तृत और खाद्य पदार्थ इतने बढ़िया होते थे कि आज-कल के लोगों को सुन कर उस पर विश्वास भी न होगा। एक बड़े खेमे में दस्तरख्वान चुना जाता था जिसमें उत्तमोत्तम भोजनों के लिये हजार थाल समस्त आवश्यक सामग्री के सहित होते थे। वे सब थाल अमीरों में बँट जाते थे। पास ही एक और बड़ा खेमा होता था जिसमें कुछ निम्न कोटि के लोग एकत्र होते थे। वे लोग वहीं भोजन करते थे। रसोई-घर में हर समय भोजन बनता रहता था और

खिचड़ी की देगें तो हर समय चढ़ी रहती थीं। जो भूखा आता था, उसे वहाँ भोजन मिलता था।

छब्बीसवाँ धन्यवाद यह देते हैं कि सोमवार १२ शअबान सन् ९७९ हि० को एक लड़का हुआ। मुबारक दादा ने पोते का नाम अब्दुर्रहमान रखा। स्वयं कहते हैं कि यद्यपि इसका जन्म भारत में हुआ है, तथापि इसके रंग-ढंग यूनानी हैं। हुजूर ने इसे कोका अर्थात् अपने दो भाइयों में सम्मिलित किया है। अकबर ने ही इसका विवाह सआदतयार खाँ कोका की कन्या के साथ किया था।

सत्ताइसवाँ धन्यवाद यह है कि ता० ३ जीकअद सन् ९९९ हि० को अब्दुर्रहमान के घर लड़का हुआ। बादशाह सलामत ने उसका नाम पशूतन रखा।

अब्दुर्रहमान

अब्दुर्रहमान ने अपने पिता के साथ दक्खिन में जो काम किए थे, उनका कुछ-कुछ उल्लेख ऊपर हो चुका है। वह वास्तव में बहुत वीर था। जिन युद्धों में बड़े-बड़े अनुभवी सिपाही झिझक जाते थे, उनमें झपट कर आगे बढ़ता था और अपनी वीरता तथा बुद्धिमत्ता के बल से उनका निर्णय कर देता था। उस समय के इतिहास-लेखक उसे तरकश का सब से अच्छा तीर कहते हैं। तिलंगाने आदि में विजय प्राप्त करके दक्खिन में इसने अपने पिता के साथ बहुत नाम कमाया। अकबर के सरदारों में शेर ख्वाजा पुराना और अनुभवी सैनिक था। इसने कहीं उसके साथ रह कर और कहीं उससे आगे बढ़ कर खूब

खूब तलवारें मारीं; और दक्खिन के बहादुर सरदार मलिक अम्बर को धावे मार-मार कर और मैदान जमा-जमा कर खूब परास्त किया।

जहाँगीर की यह बात प्रशंसनीय है कि उसने पिता पर का क्रोध पुत्र के सम्बन्ध में बिलकुल भुला दिया। उसने इसे दो-हजारी मन्सब प्रदान किया और अफजलखाँ की उपाधि दी। अपने शासन के तीसरे वर्ष उसने इसे इसके मामा इस्लामखाँ के स्थान पर बिहार का सूबेदार नियुक्त किया; बल्कि गोरखपुर भी जागीर में दिया। जिस समय यह बिहार का हाकिम था, उस समय वहाँ का केन्द्र पटने में था। एक अवसर पर कुतुबउद्दीन नामक एक धूर्त्त फकीर उधर गया और लोगों को बहकाने लगा कि मैं जहाँगीर का पुत्र खुसरो हूँ। भाग्य ने साथ नहीं दिया, जिससे मैं एक युद्ध में हार गया। अब मैं इस दशा में घूम रहा हूँ। कुछ लोग तो लोभ के कारण और कुछ दया के वश होकर उसके साथ हो गए। उन लोगों को लेकर उसने तुरन्त पटने पर धावा किया। वहाँ अब्दुर्रहमान की ओर से शेख बनारसी और मिरजा गयास हाकिम थे। उन्होंने ऐसी कायरता दिखलाई कि नकली खुसरो का अधिकार हो गया। सारी सामग्री और कोष उसके हाथ लगा। रहमान सुनते ही शेर की तरह आया। नकली खुसरो मोरचे बाँध कर सामने हुआ। पुनपुन नदी के तट पर युद्ध हुआ। लेकिन पहले ही आक्रमण में जाली सेना तितर-बितर हो गई और वह भाग कर किले में घुस गया। रहमान भी उसके पीछे-पीछे वहाँ पहुँचा और उसे पकड़ कर मार डाला। रहमान ने दोनों कायर सरदारों को दरबार में भेज

दिया। दंड देने के सम्बन्ध में जहाँगीर बहुत धीमा था। उसने उनके सिर मुँडवाए, उन्हें स्त्रियों के कपड़े पहनाए और उलटे गधों पर बैठा कर सारे नगर में घुमाया। थोड़े ही दिनों बाद रहमान बीमार हुआ। जब दरबार में गया, तब वहाँ उसका बहुत अधिक सत्कार हुआ। दुःख है कि जहाँगीर के शासन के आठवें वर्ष पिता की मृत्यु के ग्यारह वर्ष बाद इसकी भी मृत्यु हो गई। पशूतन नामक एक पुत्र छोड़ गया था। उसने जहाँगीर के शासन-काल में सात सौ प्यादों और तीन सौ सवारों की नायकता तक उन्नति की। शाहजहाँ के समय में उसे पाँच-सदी मन्सब मिला। वह १५ वें शासन वर्ष तक सेवाएँ करता रहा।

मैंने ऊपर कहा था कि खानखानाँ आदि के सम्बन्ध में अब्बुलफजल ने जो फूल कतरे हैं, अन्त में उनके अनुवाद से मैं पाठकों का मनोरंजन करूँगा। अतः यहाँ उनमें से कुछ पत्रों के आशय दिए जाते हैं। दक्खिन की लड़ाइ से जो एक निवेदनपत्र बादशाह के नाम भेजा है, उसमें बहुत सी लम्बी-चौड़ी उपाधियों आदि के उपरान्त खानखानाँ की व्यवस्था आदि के सम्बन्ध में बहुत सी बातें लिखी हैं। फिर लिखते हैं कि ईश्वर की शपथ है और उसी की साक्षी यथेष्ट है कि जो कुछ लिखा और कहा है, वह सब ठीक है। उसमें जरा भी और कुछ भी सन्देह नहीं है। ईश्वर की शपथ है कि मेरे आदमी कई बार उसके आदमियों को मेरे पास पकड़ लाए और बादशाही प्रताप के विरुद्ध उसके लिखे हुए पत्र आदि पकड़े गए जो ज्यों के त्यों शाहजादे को दिखलाए गए। साम्राज्य के समस्त स्तम्भ दाँतों में उँगली दबाकर रह गए। हाथ मल कर रह गए। वे विवश होकर मौन हैं। वे नम्रता

और विनय के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं देखते, इसलिये चुप बैठे हैं। लेकिन बड़े-छोटे, अमीर-गरीब सब समझते हैं कि दक्खिन की लड़ाई को उसी ने उलझन में डाल रखा है और वह उसी के कारण रुकी हुई है।

श्रीमन्, इस सेवक ने अपने निवेदनपत्र में कई वार निवेदन किया है, परन्तु सन्तोषजनक उत्तर नहीं मिलता। विलक्षण बात है कि इस सेवक की अरज भी गरज समझी जाती है। अब्बुलफजल इस दरगाह का पला हुआ है और धूल में से उठाया हुआ है। ईश्वर न करे कि वह अपनी गरज की कोई बात कहे और उसके लिये प्रयत्न करे, जिसमें इस वंश की बदनामी हो। मेरे स्वामी, हम भारतवासी अन्दर-बाहर एक से होते हैं। ईश्वर ने हमारी प्रकृति में तो रूखापन पैदा ही नहीं किया। ईश्वर को धन्यवाद है कि हम नमक को हलाल करके खाते हैं। हम और लोगों की भाँति गोरे मुँह और काले दिलवाले नहीं हैं। यद्यपि देखने में मैं रंगत का काला हूँ, लेकिन मेरा हृदय सफेद है। जैसे ऊपर से दर्पण की कालिमा के कारण भ्रम होता है, वैसे ही मेरे सम्बन्ध में भी भ्रम हो सकता है। परन्तु आप खूब ध्यान से देखें, अन्दर से साफ दिलवाला हूँ। खोट-कपट कुछ भी नहीं।

نیم مہ کز فروغ غیر دارد خانہ نورانی –
چو خورشیدم کہ نورخانہ از شمع زباں دارم–

अर्थात्—मैं चन्द्रमा नहीं हूँ जो सूर्य्य के प्रकाश से प्रकाशमान् रहता हूँ; बल्कि सूर्य्य के समान हूँ और अपना घर अपनी जवान के दीपक से प्रकाशमान् रखता हूँ।

एक और पत्र में लिखते हैं—श्रीमन्, यद्यपि शाहजादे के रंग-ढंग की ओर से कुछ सन्तोष हुआ है, लेकिन अब्दुर्रहीम बैरम के छल-कपट को क्या करूँ और क्या कहूँ, जिसका वर्णन करने में लेखनी और जबान दोनों असमर्थ हैं। यदि जनम भर दोरंगी चालें लिखता रहूँ और फिर भी देखूँ तो उसका अणु-परमाणु भी नहीं होता। उसका ऐसा व्यक्तित्व है जिसमें परिवर्त्तन हो ही नहीं सकता और जिसकी न तो कोई उपमा ही है और न कोई चित्र ही है। वह छल-कपट करने में एक ही है और संसार में उसकी समता करनेवाला और कोई नहीं है; क्योंकि वह प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में घुसा हुआ है और ऊपर की भी सब बातें जानता है। अभी मन में कोई बात भी पूरी तरह से नहीं आती कि उसे खबर लग जाती है। मनुष्य अपना कोई काम करने का विचार भी नहीं करता कि उसे पता लग जाता है। मैं आश्चर्य के चक्कर में पड़ा हूँ और मुझे इस चिन्ता ने घेर रक्खा है कि यह कैसी चालाकी और कैसी धूर्त्तता है कि ईश्वर ने उसे अलौकिक गुण प्रदान किया है। लेकिन यह बात मन में जरा खटकती है कि ऊपर से देखने में ईश्वर की इच्छा में भूल हुई। जब ऐसे अद्भुत और विलक्षण काम करनेवाला उपस्थित है, तब बेचारे इजराईल को, जो इसकी पाठशाला के विद्यार्थियों में भी सम्मिलित होने के योग्य नहीं, क्यों लानत भेजी जाती है।

در هر بن موے او زبانے دگر است —

अर्थात्—उसके प्रत्येक रोम में एक नई और दूसरी जबान है।

जो व्यक्ति नमक खाए और इस बुरी तरह से तैमूर के वंश के साथ हार्दिक शत्रुता रखे तो उसका काम कैसे चलेगा ? उसका परिणाम कैसे शुभ होगा ? वह किस प्रकार नेकी का मुख देखेगा ? महाराज, सारे दिन और सारी रात अभिशप्त अम्बर के जासूस और मुखबिर उसके पास उपस्थित रहते हैं और वह निर्भय होकर बे-खटके उन लोगों के साथ उसी प्रकार मिला-जुला रहता है, जिस प्रकार दूध के साथ शक्कर मिली रहती है। वह शाहजादे का भी कोई मुलाहजा या अदब नहीं करता। इतनी परवाह नहीं है कि कदाचित् कोई श्रीमान् के दरबार में कुछ लिख भेजे और हुजूर के मन में कुछ दुःख हो। यह निर्लज्जता और बेपरवाही है। यह शुभचिन्तक निश्चयपूर्वक लिखता है कि यदि वह इस देश में न हो तो यह एक वर्ष में दक्खिन के सब झगड़े दूर कर दे। लेकिन क्या करे और क्या कर सकता है। उसका रंग ऐसा जम गया है कि हुजूर को भी और शाहजादे को भी इस बात का दृढ़ विश्वास हो गया है कि दक्खिन की लड़ाई उसके बिना जीती ही नहीं जा सकती। और जब वह न रहेगा, तब कुछ भी न होगा। मैं कदापि यह नहीं मानूँगा, "कोई न माने। मैं न मानूँगा। तुम भी न मानो कि ऐसा होगा।" परन्तु वास्तव में बात इसके बिलकुल विपरीत है। क्योंकि जब वह इस देश में न रहेगा, तब लड़ाई का सब काम आपसे आप ठीक हो जायगा। बहुत ही थोड़े समय में दक्खिन हाथ में आ जायगा और दक्खिनी आकर सलाम करेंगे। इस शुभ कार्य में वही बाधक है। मैं ईश्वर की शपथ खाकर कहता हूँ कि जो कुछ मैंने लिखा है, वह बिलकुल ठीक

है। इसमें किसी प्रकार का कुछ भी सन्देह नहीं। अविनाशी ईश्वर की शपथ है कि कई बार उसके आदमियों को पकड़ कर लोग मेरे पास लाए और उसके लिखे पत्र जो बादशाही दौलत और इकबाल के विरुद्ध थे, ज्यों के त्यों शाहजादे को दिखलाए गए। साम्राज्य के सब स्तम्भ दाँतों उँगलियाँ दबाते थे और हाथ मलते थे। सब लोग विवशता के कारण चुप लगाए हैं और विनय तथा नम्रता में ही अपना भला देखते हैं और मौन व्रत को निबाहे जाते हैं। छोटे बड़े सभी लोग समझ कर बैठे हुए हैं कि दक्खिन की लड़ाई को वही उलझन में डालता है और उसी की करतूतों से यह लड़ाई बन्द है।

هرکه زبانش دگر و دل دگر – تیغ بباید زدنش بر جگر –

अर्थात्—जिस व्यक्ति के मन में कुछ और, और मुँह पर कुछ और हो, उसके कलेजे में तलवार भोंक देनी चाहिए।

एक और निवेदनपत्र में लिखा है—मैं तो लिखते-लिखते थक गया, परन्तु हुजूर के मन में कोई बात नहीं बैठती। हुजूर इसे पदच्युत न करें तो भी कम से कम इतना तो लिख दें कि अमुक व्यक्ति के परामर्श के बिना कोई काम न करो। और यदि तुम हमारे कहने के विरुद्ध आचरण करोगे तो हमें मन में दुःख होगा। सम्भव है कि ऐसा पत्र पढ़कर उसके हृदय पर कुछ प्रभाव हो और कुछ बातों में वह हमें भी सम्मिलित कर लिया करे।

शेख ने एक निवेदन-पत्र दक्खिन से जहाँगीर के पास भी भेजा था। जरा पाठक देखें कि वे नवयुवक लड़कों को कैसी बातों और कैसे शब्दों से फुसलाते हैं। बहुत लम्बे-चौड़े विशेषण

आदि लगाने के उपरान्त लिखते हैं कि संसार छः दिशाओं में घिरा हुआ है। मैं भी अपने निवेदन को इन्हीं छः प्रयत्नों पर निर्भर करता हूँ। पहला प्रयत्न यह है। दूसरा प्रयत्न यह है। तीसरे प्रयत्न के अन्तर्गत लिखते हैं कि शाहजादा दानियाल दिन-रात मद्यपान में चूर रहता है। उसे कोई उपाय सुधार के मार्ग पर नहीं ला सकता। मैं कई वार श्रीमान् सम्राट् की सेवा में भी निवेदनपत्र भेज चुका हूँ। उत्तम हो कि तुम स्वयं श्रीमान से आज्ञा लेकर यहाँ चले आओ। दानियाल को गुजरात भेजवा दो। तुम्हारे आने से समस्त दक्खिनियों को बहुत बड़ी शिक्षा मिल जायगी। दक्खिन पर विजय प्राप्त हो जायगी। दुष्ट और नीच अम्बर स्वयं आकर सेवा में उपस्थित होगा। उचित था कि तुम इस सम्बन्ध में मुझे सब बातें स्पष्ट और विस्तृत रूप से लिख भेजते। लेकिन तुमने इस सम्बन्ध में कुछ भी प्रयत्न न किया और इस ओर कुछ भी ध्यान न दिया। कभी इस शुभचिन्तक को सन्तोषजनक उत्तर भेजकर भी सम्मानित न किया। मैं नहीं जानता कि इसका क्या कारण है; और इस सेवक से ऐसा कौन सा अपराध हुआ जिसके कारण तुम्हारे मन में दुःख हुआ। ईश्वर इस बात का साक्षी है कि इस सेवक के सम्बन्ध में शत्रुओं ने तुमसे जो कुछ कहा है, वह बिलकुल झूठ है। ईश्वर न करे कि इस सेवक के मुँह से तुम्हारे सम्बन्ध में कोई अशिष्ट शब्द निकले। सारी बात यह है कि इस सेवक का दुर्भाग्य ही इस सीमा तक पहुँचा है कि यद्यपि मैं श्रीमान् के दरबार का बहुत बड़ा शुभचिन्तक हूँ, पर काले मुँहवाले लोग अपना मतलब निकालने के लिये आपसे मेरे सम्बन्ध में अनुचित बातें कहते हैं। इसमें मेरा क्या अपराध है। परन्तु

मैं ईश्वर से आशा करता हूँ कि जो व्यक्ति किसी की बुराई करने पर उतारू होगा, वह भली भाँति उसका दंड पावेगा। परमात्मा के हजार नामों में से एक नाम "हक" भी है। जब वही हक या न्याय के विरुद्ध आचरण करने लगेगा, तब न्याय कौन करेगा? दूसरे यह कि गुंजाइश ही क्या है जो मैं श्रीमान् सम्राट् से तुम्हारी बुराई करूँ। क्या मुझमें इतना समझने की भी शक्ति नहीं है कि साम्राज्य सँभालने की योग्यता किसमें है? तैमूरी वंश की प्रतिष्ठा कौन रख सकता है? अन्धा भी हो तो वह अपनी विपत्ति समझ सकता है और हिये की आँख से देख सकता है। फिर मैं तो आँखोंवाला हूँ, अन्धा नहीं हूँ। हाँ, कम-समझ होऊँ तो हो सकता हूँ। परन्तु इतना तो कदाचित् समझ लूँगा कि तुममें और दूसरे शाहजादों में क्या अन्तर है।

ईश्वर जाने, शेख साहब ने और क्या क्या मोती पिरोए होंगे। मैंने तो दक्खिन के युद्ध के सम्बन्ध में अकबरनामे से कुछ पंक्तियाँ अनुवाद करके रख दी हैं। इनके वास्तविक विचारों से पाठक अवगत हो चुके। लेकिन इतना होने पर भी पाठकों को यह सोचना चाहिए कि इन्होंने कैसी सुन्दरता से अपनी शुभ-कामना नवयुवक के हृदय पर अंकित की है। चौथे प्रयत्न के अन्तर्गत लिखते हैं कि इस सेवक ने कई बार अब्दुर्रहीम बैरम की नालायकी के सम्बन्ध में श्रीमान् सम्राट् की सेवा में लिखा है कि आप इससे सचेत रहें और इसकी ऊपरी चापलूसी पर न जायँ। क्योंकि—

در ہر بن موے او زبانے دگر است -

अर्थात्—उसके प्रत्येक रोम में एक दूसरी और नई जबान है।

वह धूर्त्तता में संसार में अपनी उपमा नहीं रखता। ईश्वर ने और कोई वैसा धूर्त्त उत्पन्न ही नहीं किया। वह ईश्वर की सृष्टि की सीमा से बहुत बढ़कर है। तरह तरह के रंग बदलना और बातें करना उस पर खतम है। नमकहरामी तो उसी पर निर्भर है। ईश्वर साक्षी है कि देवदूत भी इस निवेदनपत्र पर अपना समर्थन-सूचक लेख लिखते हैं कि वह तैमूर के वंश का शत्रु है और उसका यह ढंग पुरुषानुक्रमिक है। श्रीमान् को यह बात भली भाँति विदित है कि उसने इस उच्च क्रम का नाश करने में कोई त्रुटि नहीं की। उसने क्या क्या काम किए और क्या क्या चालें चलीं। ईश्वर इस शुभ वंश का सहायक था। उसका छल-कपट कुछ भी न चल सका और वह कुछ भी न कर सका। उलटे स्वयं ही खराब और अप्रतिष्ठित हुआ। वह बिलकुल नग्न अवस्था में गँवारों के हाथ पड़ा और गँवारों ने भी उसे बिलकुल नंगा करके नचाया। "मैं तुम्हारा कुत्ता हूँ। मैं तुम्हारा कुत्ता हूँ।" कहकर नाचा। अन्त में न्याय अपने केन्द्र पर आकर ठहरा। और फिर क्यों न ठहरता? जहाँ अकबर जैसा न्यायी बादशाह हो, वहाँ वह कंगला भारत का राज्य कैसे ले सकता था! जहाँ ऐसा वीर और पराक्रमी बादशाह हो, वहाँ एक बन्दर सारे भारत का शासन कैसे अपने हाथ में ले सकता था! जहाँ तैमूरी जंगल का शेर दहाड़ता हो, वहाँ गीदड़ की क्या मजाल है कि उसके स्थान का अधिकारी हो!

तात्पर्य यह कि दक्खिन की लड़ाई में इससे ऐसे मामले नहीं देखे और ऐसी बातें नहीं सुनीं कि कहने से विश्वास भी आ जाय और लिखने में अभिप्राय भी प्रकट हो जाय। हुजूर इस

बात का विश्वास रखें कि जब तक वह इस देश में है, तब तक कदापि विजय न होगी। हम लोग व्यर्थ ठंढा लोहा पीट रहे हैं, इत्यादि इत्यादि।

पाठक देखें कि इतनी गम्भीरता पर भी नवयुवकों का मन प्रसन्न करने के लिये कैसी बातें करते हैं। खैर; इस संसार में जब कोई अपना काम निकालना होता है, तब सब कुछ करना पड़ता है और दरबारों के मामले ऐसे ही होते हैं।

एक निवेदन-पत्र अकबर के पुत्र को लिखा है। उसमें बहुत सी बातें लिखते-लिखते कहते हैं कि मैं शाहजादे की क्या फरियाद लिखूँ और क्या शिकायत करूँ। यदि मैं जानता कि यहाँ इस तरह की खराबियाँ पैदा होंगी, तो कभी इधर की ओर मुँह भी न करता। लेकिन जब विधाता ने भाग्य में यही लिखा है, तो फिर और उपाय ही क्या है। मनुष्य में इतनी सामर्थ्य कहाँ है कि ईश्वर की इच्छा में परिवर्त्तन कर सके। मैं तो संसार की विलक्षणताओं और आकाश की टेढ़ी चालों से ही चकित था। लेकिन जब इस अब्दुर्रहीम को देखा तो सब भूल गया। भरे हुए घाव हरे हो गए, पुराने नासूर फिर वह निकले। दागों से लहू टपक पड़ा। मैं क्या कह कर अद्भुत और विलक्षण काम करनेवाले की शिकायत करूँ। इसके हाथ से संसार के सब लोगों के दिल पर दाग पड़े हैं; इसके अत्याचार के कारण समस्त लोकों के हृदय फट गए हैं।

باہر کہ بنگرم بہ ہمیں داغ مبتلا ست—

अर्थात्—मैं जिससे मिलता हूँ, देखता हूँ कि वही इस दाग का शिकार बना हुआ है।

मैं इसे जादूगर कहूँ, परन्तु इसकी पूँजी उससे बहुत

अधिक है। यदि जादू मन्तर करनेवाला प्रसिद्ध जादूगर सामरी भी होता तो इसके हाथ से चिल्ला उठता। उसका एक सोने का बछड़ा था, जिससे जादूगरी करता था। इसके हजार ऐसे सोने के बछड़े हैं जिसके कारण सारा संसार इसके अत्याचार से पीड़ित होकर फरियाद कर रहा है। इसने सारे बादशाही लश्कर को वही सोने का बछड़ा बना रखा है और जादूगरियाँ कर रहा है। दक्खिन के लोगों को ऐसा फुसलाया है कि यदि यह पैगम्बर होने का दावा करे तो वे अभी इसे पैगम्बर मान कर इसके आगे सिर झुकाने के लिये तैयार हैं और इसे अपना पिता या जनक मानते हैं। वाह कैसी धूर्त्तता है जो ईश्वर ने इसे प्रदान की है! शाहजादे लोग रात-दिन इसके हाथ से दुःखी रहते हैं और फरियाद करते हैं। लेकिन जहाँ इस पर दृष्टि पड़ी कि गूँगे हो गए। उनके शरीर में तनिक गति भी नहीं होती। उन्होंने अपने आपको इसके सपुर्द कर दिया है। कई बार इसकी उद्दंडताएँ और अनुचित कृत्य देख लिए हैं। इसके द्वारा बहुत से ऐसे कार्य हुए हैं जो स्पष्ट रूप से देखने में अनुचित हैं। इसने जो पत्र नष्ट और अभागे अम्बर को लिखे थे, वे हाथों से लेकर शाहजादे को दिखलाए और उनकी प्रतिलिपि सम्राट् की सेवा में भेज दी। परन्तु कुछ भी न हुआ; उसका कुछ भी न कर सके। भला मैं विफल-मनोरथ किस हिसाब और गिनती में हूँ और किस जमा-खर्च में दाखिल हूँ जो इसके असभ्यता-पूर्ण कृत्यों का बदला लूँ! मैं बेचारा जंगलों में मारा-मारा फिरता हूँ और अपनी दशा देखकर चकित हूँ। मुझे श्रीमान् सम्राट् से कदापि यह आशा नहीं थी कि वे मुझे अपनी सेवा से

अलग करेंगे और ऐसी विलक्षण विपत्ति से मुझे टकरा देंगे। परम आश्चर्य है कि उन्होंने मेरे सम्बन्ध में यह क्या निश्चय किया। समस्त संसार यही समझता था कि चाहे उत्तरी ध्रुव अपने स्थान से चलकर दक्षिण में पहुँच जाय और दक्षिणी ध्रुव उत्तर में जा घुसे, परन्तु अब्बुलफजल कदाचित् ही सम्राट् की प्रत्यक्ष सेवा से दूर होगा। परन्तु मेरी क्या सामर्थ्य थी जो मैं उनकी आज्ञा में हस्तक्षेप करूँ। मैंने उनकी आज्ञा शिरोधार्य की और उसके अनुसार दक्षिण की लड़ाई में चला आया। ऐसा कौन सा परिश्रम था जो मैंने नहीं किया और ऐसी कौन सी विपत्ति थी जो मैंने नहीं उठाई। दुःखों का लश्कर टूट पड़ा है। मैं बेचारा अकेला और निहत्था इस विपत्ति के मैदान में खड़ा हूँ। न भागने की शक्ति है और न लड़ने का साहस। हाँ यदि श्रीमान् का साहस मेरी सहायता करे और श्रीमान् वास्तविक शुद्ध-हृदयता को काम में लावें तो इस दीन का छुटकारा हो जाय। यह सेवक अपना अन्तिम जीवन श्रीमान् के चरणों में बितावे, क्योंकि इस लोक में भी और परलोक में भी इसकी भलाई और स्वामिनिष्ठा इसी में है। कोई शुभ घड़ी और अच्छी सायत देख कर हुजूर को समझाए और ईश्वर के लिये मुझे वहाँ बुलवाए, आदि आदि।

दानियाल को एक लम्बे-चौड़े निवेदनपत्र में अपने नियम के अनुसार अपने भिन्न भिन्न अभिप्राय लिखे हैं। उसमें लिखते हैं कि दुष्कर्मी अब्दुर्रहीम काले मुँहवाले आवारे अम्बर के साथ एक मन और एक जबान होकर फैलसूफी कर रहा है। ईश्वर परम न्यायशाली है। उसके दरबार में अन्याय का प्रचलन नहीं है। यदि ईश्वर चाहेगा तो उसका कार्य सदा अवनति करता रहेगा

और इस वंश के सामने लज्जित होगा। हे अब्बुलफजल के स्वामी, जहाँ तक हो सके, आप अपने रहस्य उसे मत सूचित कीजिए।

मरियम मकानी को लिखते हैं कि पचीस वर्षों से यह पुराना झगड़ा इसी तरह चला चलता है, समाप्त नहीं होता। और हुजूर समझते हैं कि तैमूरी वंश का सारा सम्मान और आतंक इसी लड़ाई पर निर्भर करता है। ईश्वर न करे कि यह लड़ाई बिगड़े। यदि यह लड़ाई बिगड़ी तो सारी बात ही बिगड़ जायगी। आप श्रीमान् सम्राट् को यह समझावें कि वे इस ओर ध्यान दें। और इसके उपरान्त फिर वही अब्दुलरहीम बैरम का रोना रोते हैं।

इसी पत्र में यह भी लिखते हैं कि दक्षिण भी एक विलक्षण देश है। सुख और सम्पन्नता को ईश्वर ने यहाँ उत्पन्न ही नहीं किया। कई स्थानों में लिखते हैं कि काबुल, कन्धार और पंजाब आदि और प्रकार के देश हैं। वहाँ की बातें और थीं। यहाँ का ढंग ही कुछ और है। जो बातें वहाँ कर जाते हैं, वह यहाँ हो ही नहीं सकतीं।

प्रत्येक निवेदनपत्र में यह बात भी लिखते हैं कि श्रीमान् सम्राट् ने कई बार इस सेवक को लिखा है कि हमने तुम्हें अपने स्थान पर भेजा है। जहाँ हमें स्वयं जाना चाहिए था, वहाँ हमने तुम्हें भेजा है। तुम्हें भले-बुरे सबका अधिकार है। तुम जिसे चाहो, उसे निकाल दो। फिर भी यह क्या बात है कि मैं बार बार अब्दुलरहीम के सम्बन्ध में लिखता हूँ और वे कुछ भी नहीं सुनते।

इतिहासों से भी विदित हुआ है और बड़े लोगों से भी सुना है कि इन दोनों भाइयों के यहाँ सदा बहुत से लोग उपस्थित रहा

करते थे और ये बड़े गुणग्राहक थे। बड़े-बड़े गुणी, विद्वान्, कुलीन शेख और धर्मनिष्ठ महात्मा आदि जो लोग आते थे, उनके साथ ये लोग बहुत अधिक सज्जनता का व्यवहार करते थे और उनका यथेष्ट आदर-सत्कार करते थे। उन्हें बादशाह के दरबार में भी ले जाते थे और स्वयं भी उन्हें कुछ देते थे। यहाँ एक ऐसे पत्र का अनुवाद दिया जाता है जो शेख ने अपने पिता मुबारक को लिखा था। जान पड़ता है कि शेख मुबारक ने दिल्ली के कुछ धर्मनिष्ठ महात्माओं के लिये जागीर की सिफारिश की थी। उसके उत्तर में शेख काश्मीर से लिखते हैं—

"समस्त सत्य बातों का ज्ञान रखनेवाले (अर्थात् आप) से यह बात छिपी न होगी कि दिल्लीवाले महाशयों के लिये दोबारा श्रीमान् की सेवा में निवेदन पहुँचाया कि सहायता के सच्चे अधिकारियों का एक ऐसा समूह उस पवित्र कोने में रहता है जो साम्राज्य का शुभचिन्तक है और किसी के साथ राग-द्वेष नहीं रखता। वे लोग सदा श्रीमान् सम्राट् के वैभव तथा आयु की वृद्धि के लिये ईश्वर से प्रार्थना करते रहते हैं। आज्ञा हुई कि जो कुछ तू निवेदन करेगा, वह स्वीकृत होगा। आज्ञानुसार १० हजार बीघे पड़ती और आबाद जमीन उनके नाम पर ब्योरेवार लिखकर सम्राट् के सम्मुख उपस्थित की जो स्वीकृत हुई। साथ ही यह भी आज्ञा हुई कि प्रति हजार बीघे के हिसाब से सौ रुपए बैलों तथा बीजों के लिये भी प्रदान किए जायँ। आप उन स्वामियों की सेवा में यह सुसमाचार भी पहुँचा दें जिसमें उन्हें धैर्य हो जाय। इस सम्बन्ध के आज्ञापत्र और रुपयों को आप वहाँ पहुँचा ही समझें। उनसे कह दीजिएगा कि इस सेवक की ये

सेवाएँ स्वीकृत हों। समय को देखते हुए जहाँ तक सम्भव होगा, यह सेवक अपनी ओर से भी उनकी कुछ सेवा करेगा। उन प्रिय महानुभावों के सम्बन्ध में आप अपने आपको किसी प्रकार से अलग न रखिएगा। ईश्वर न करे कि अब्दुलफजल विद्वानों आदि की सेवा के काम में कोई लापरवाही या सुस्ती करे; क्योंकि वह इसको अपने लिये दोनों लोकों का सौभाग्य और सम्पत्ति समझता है। सज्जन पुरुष वही है जिससे इन लोगों की सेवाएँ हो रही हैं। आप यह न समझें कि अब्बुलफजल संसार की मैल में लिप्त हो गया है। अपने मित्रों और प्रदेश की आवश्यकताएँ भूल गया है। ईश्वर न करे, कभी ऐसा हो। मैं जब तक जीवित हूँ, इन लोगों के यहाँ झाड़ू देनेवाला हूँ और उस उच्च समूह के मार्ग की धूल हूँ। उनकी सेवा मेरे लिये आवश्यक बल्कि कर्त्तव्य है। मेरे हाथ में जो कुछ है, वह सब मैं उनके पैरों पर रखने के लिये तैयार हूँ। बल्कि प्राण भी ऐसी वस्तु नहीं है जिसे कोई इस समूह की अपेक्षा अधिक प्रिय समझे। तात्पर्य यह कि इस श्रद्धालु के लिये जो सेवा उपयुक्त हो, उसके लिये संकेत मात्र कर दें। मैं तुरन्त वह सेवा करूँगा और उसे स्वयं अपने प्राणों पर उपकार समझूँगा।"

मखदूम उलमुल्क तथा शेख अब्दुल नबी सदर के सम्बन्ध की सब बातें पाठकों को विदित ही हैं। मखदूम ने अपने प्रताप के अस्त के समय जौनपुर के कुछ पूज्य तथा बड़े लोगों के लिये सिफारिश लिखी थी, जिसका उत्तर एक पत्र में शेख ने दिया था। धन्य है शेख की यह उदारता! जो मखदूम उल्-मुल्क किसी अवसर पर इनका अपकार करने से नहीं चूके और

जिन्होंने कुत्ते का दाँत भी पाया तो मसजिद में बैठनेवाले इन वेचारों के पैरों में चुभवा दिया, उन्हीं मखदूम के सम्बन्ध में शेख ने कैसे आदर तथा सत्कारसूचक शब्द लिखे हैं और कैसी प्रतिष्ठा तथा सम्मान से उन्हें उत्तर दिया है। लेकिन इसे क्या किया जाय कि समय कुसमय है! शेख इस समय आकाश पर है और मखदूम जमीन पर। शेख का लेख देखता हूँ तो उसका एक एक अक्षर पड़ा हँस रहा है। मखदूम ने पढ़ा होगा तो उनके आँसू निकल पड़े होंगे।

पहले तो उनके सम्मानसूचक विशेषण देने और नम्रता प्रदर्शित करने में दो पृष्ठों से अधिक सफेदी काली की है। उदाहरणार्थ—"परम प्रतिष्ठित, महोदय और सत्यता तथा शुद्धता के एकत्र करनेवाले।" इसमें स्पष्ट रूप से इस बात की ओर संकेत है कि तुम्हारे मन में क्या है और तुम कलम से हमें क्या लिख रहे हो। परन्तु ईश्वर लिखवाता है और आपको लिखना पड़ता है। एक और वाक्य लिखा है जिसका आशय यह है कि आप शरअ और दीन या धर्म के सहायक तथा संसार में कुफ्र या अधर्म के नाशक हैं। इससे भी यही अभिप्राय झलकता है कि एक वह समय था, जब कि आप कुफ्र या अधर्म का नाश करनेवाले ठेकेदार बने हुए थे और हम लोग विद्रोही तथा अधर्मी थे। आज ईश्वर की महिमा देखो कि तुम कहाँ हो हम कहाँ हैं। एक और वाक्य का अर्थ है—"सम्राटों के मित्र और सरदारों के पार्श्ववर्त्ती"। इसे पढ़कर मखदूम ने अवश्य ठंढा साँस लिया होगा और कहा होगा कि हाँ मियाँ, जब कभी हम ऐसे थे, तब सभी कुछ था। अब जो हो, वह तुम हो।

इसमें एक और नश्तर यह भी है कि त्यागियों तथा धर्म के अनुसार आचरण करनेवालों को सम्राटों आदि से सम्बन्ध रखने की क्या आवश्यकता है ! उन्हें गरीबों और फकीरों का सहायक लिखकर यह व्यंग्य किया है कि हम गरीबों और फकीरों के साथ आपने क्या क्या व्यवहार किए हैं। उनकी बहुत अधिक प्रशंसा करते हुए यह ताना मारा है कि देखिए, आपको ईश्वरत्व तक तो पहुँचा दिया है। अब आप इस सेवक से और क्या चाहते हैं। साधारण प्रशंसाएँ आदि करने के उपरान्त लिखते हैं कि आपने इस सच्चे मित्र के नाम जो कृपापत्र भेजा है, उसमें लिखा है कि जौनपुर में रहनेवाले एकान्तवासियों की दशा से मैं परिचित नहीं हूँ और उनकी श्रेष्ठता का मुझे ज्ञान नहीं है। वाह ! खूब कही। मैंने तो इस समूह की सेवा के लिये अपना सारा जीवन बिता दिया है; और फिर भी मैं यही चाहता हूँ कि सदा इन प्रिय व्यक्तियों की सेवा में रहूँ और यथाशक्ति उनका उपकार करता रहूँ। आप मेरे सम्बन्ध में ऐसी बात कहते हैं ! मैं इसका क्या उपाय कर सकता हूँ ? मेरे दुर्भाग्य के कारण आपके मन में यह विश्वास बैठ गया है। ईश्वर की सौगन्द है कि जबसे मुझे श्रीमान् सम्राट् की सेवा में उपस्थित होने का कुछ सुयोग मिला है और उनसे परिचय हुआ है, तब से मैं एक क्षण के लिये भी इन प्रिय लोगों के स्मरण की ओर से उदासीन नहीं बैठता। और इनके कठिन कार्य पूरे करने में मैं कभी अपने आपको क्षमा नहीं करता (अर्थात् सदा उनके काम करने में लगा रहता हूँ)। कृषि के योग्य ४० हजार बीघे भूमि से दिल्ली के महानुभावों की सेवा की है। दस हजार बीघे सरहिन्द के सज्जनों

के लिये, बीस हजार बीघे मुलतान के प्रिय व्यक्तियों के लिये, अर्थात् सब मिलाकर प्रायः एक लाख बीघे भूमि श्रीमान् से निवेदन करके मुजावरों आदि के लिये प्राप्त की है। इसी प्रकार प्रत्येक नगर के फकीर आए। उन्होंने अपनी अवस्था प्रकट की। मैंने श्रीमान् सम्राट् से निवेदन करके प्रत्येक की योग्यता के अनुसार वृत्ति के लिये कुछ भूमि और कुछ नगद लेकर उनको भेंट किया। ईश्वर जानता है कि यदि मैं अपनी सारी सेवाओं का वर्णन करूँ तो एक पोथा बन जाय। ब्योरा इसलिये नहीं लिखा कि कहीं वह आपके सेवकों के लिये एक झंझट न बन जाय। यदि जौनपुर के स्वामी लोग अपने अभिमान के कारण, जो आप पर भली भाँति विदित है, मुझ शुभचिन्तक के पास न आवें और परम अहंमन्यता के कारण मुझ दीन की ओर प्रवृत्त न हों, तो इसमें मेरा क्या अपराध है ? फिर भी जब आप इस प्रकार लिखते हैं, तब अपने प्राणों पर उपकार करके और इसी में अपनी कर्त्तव्य-निष्ठा समझ कर वहाँ के प्रिय व्यक्तियों के नाम आज्ञापत्र ठीक करके भेजता हूँ। आप विश्वास रखें और उसे पहुँचा हुआ समझें। इतना कष्ट देता हूँ कि आप नामों का ब्योरा लिख भेजें और प्रत्येक के सम्बन्ध की कुछ बातें भी लिख भेजें, जिसमें प्रत्येक की कुछ सहायता की जा सके। ईश्वर दोनों लोकों में श्रेष्ठ महानुभाव को शिक्षक के पद पर प्रतिष्ठापूर्वक प्रतिष्ठित रखे। मतलब यह कि बैठे हुए लड़के पढ़ाया करो। लेकिन वाह शेख साहब, आपकी यह उदारता आपके ही लिये है।

शेख सदर के नाम भी एक पत्र है। जान पड़ता है कि जिन दिनों वह हज को गए थे, उन्हीं दिनों किसी कारणवश शेख

सद्र ने एक पत्र इन्हें भेजा था। उसके उत्तर में अब्बुलफजल ने बहुत अधिक आदर और प्रतिष्ठा प्रकट करते हुए यह पत्र उन्हें लिखा था। पहले तो उनकी उपाधियों और प्रशंसा आदि में डेढ पृष्ठ पर इसलिये कागज पर नमक पीसा है कि बेचारे बुड्ढे के घावों पर छिड़कें। फिर कहते हैं कि मैंने इन दिनों एक बहुत आनन्ददायक सामाचार सुना है कि आपने पवित्र स्थानों की परिक्रमा का शुभ संकल्प किया है। यह संकल्प बहुत शुभ और अच्छा है। ईश्वर सब मित्रों को इसी प्रकार का सौभाग्य प्रदान करे और उन्हें वास्तविक उद्देश्य तथा अभीष्ट की सिद्धि करावे। आपकी कृपा से इस अभिलाषी को भी उसी प्रकार के सौभाग्य से युक्त करे।

मैंने यह बात कई बार श्रीमान् सम्राट् की सेवा में निवेदन की और उनसे छुट्टी के लिये प्रार्थना की, परन्तु वह स्वीकृत नहीं हुई। क्या करूँ, उनकी इच्छा ईश्वर की इच्छा के साथ जुड़ी हुई है। जो काम उनके बिना होगा, उसमें कोई लाभ या सुख न होगा। विशेषतः इस दीन के लिये तो वह और भी लाभदायक न होगा जिसने अपने उस सच्चे गुरु को जी-जान से अपने सब विचार समर्पित कर दिए हैं और मन के अन्तर तथा बाह्य को उसी प्रकाशमान हृदयवाले शिक्षक को सौंप दिया है। मेरा विचार उन्हीं के विचार पर निर्भर है और मेरा संकल्प उनकी आज्ञा से सम्बद्ध है। मैं भला कैसे ऐसा साहस कर सकता हूँ और उनकी आज्ञा के बिना कैसे कोई काम कर सकता हूँ! नित्य प्रातः और सायंकाल उनके शुभ दर्शन करना मेरे लिये हज के तुल्य बल्कि उससे भी बढ़कर है। उनकी गली की परिक्रमा ही मेरे लिये

सबसे अधिक पुण्य का काम है और उनका मुख देखना ही मेरे जीवन का मेवा है। इसी लिये लाचारी की हालत में इस वर्ष भी यह यात्रा स्थगित हो गई और दूसरे साल पर जा पड़ी। यदि सम्राट् की इच्छा ईश्वरीय इच्छा के अनुकूल होगी तो मैं काबे की परिक्रमा की ओर प्रवृत्त होऊँगा। इस विचार और संकल्प में ईश्वर साथी और सहायक रहे।

इस पत्र को देखकर शेख सदर के मन पर क्या बीती होगी! यह उसी शेख मुबारक का पुत्र है जिसके पांडित्य और गुणों को शेख सदर और मखदूम अपनी खुदाई के जोर से वर्षों तक दबाते रहे और तीन बादशाहों के शासन-काल तक जिसे उन लोगों ने काफिर और धर्म में नई बात निकालनेवाला बनाकर एक प्रकार से देश-निकाले का दंड दे रखा था। यह वही व्यक्ति है जिसके भाई फैजी को पिता मुबारक सहित उन्होंने दरबार से निकलवा दिया था।

ईश्वर की महिमा देखो कि आज उसके पुत्र सम्राट् के मन्त्री हैं और ऐसे कुशल हैं कि इन्हें दूध में से मक्खी की तरह निकाल कर फेंक दिया। जिस महत्व के बल से ये लोग दीन और दुनिया के मालिक और पैगम्बर के नायब बने हुए बैठे थे, वह महत्त्व तथा धर्माधिकार विद्वानों और शेखों की मोहर और दस्तखत से उस नवयुवक बादशाह के नाम लिखवा दिया जो लिखना-पढ़ना भी नहीं जानता था। और इन नवयुवकों के ऐसे विचार हैं कि यदि उक्त दोनों महाशयों का राज्य हो तो इनके लिये प्राण-दंड से कम और कोई दंड नहीं है। आज उन्हीं शेख सदर को कैसे खुले दिल से और फैल-फैल कर लिखते

हैं कि अपने सच्चे गुरु और पीर बादशाह की आज्ञा के विना हज करने कैसे जाऊँ। और मेरे लिये तो उनके दर्शन करना ही हज के समान है।

सच तो यह है कि मखदूम और सदर का बल सीमा से बहुत बढ़ गया था। संसार का यह नियम है कि जब कोई बल बहुत बढ़ जाता है, तो संसार उस बल को तोड़ डालता है। और ऐसे भीषण आघात से तोड़ता है कि वह आघात कोई पर्वत भी नहीं सह सकता। फिर इन महानुभावों के तो ऐसे काम थे कि यदि संसार उनका बल न तोड़ता तो वह बल आप ही आप टूट जाता। जिस समय हम अधिकार-सम्पन्न हों, उस समय ईश्वर हमें मध्यम मार्ग का अनुसरण करने की बुद्धि दे।

एक और पत्र से ऐसा जान पड़ता है कि माता ने शेख को कोई पत्र लिखा है और उसमें दूसरी बहुत सी बातों के अतिरिक्त यह भी लिखा है कि दीन-दुःखियों की सहायता अवश्य किया करो। इसके उत्तर में देखना चाहिए कि शेख अपने पाण्डित्यपूर्ण तथा दार्शनिक विचारों को कैसे लाड़ की बातों में प्रकट करते हैं। पहले तो कहीं बादशाह के अनुग्रहों के लिये धन्यवाद दिया है, कहीं अपने शुभ और सज्जनतापूर्ण विचारों का उल्लेख किया है। उसी में यह भी लिखा है कि मैं बादशाह की कृपाओं को भी लोक की आवश्यकता तथा कल्याण के काम में लाता हूँ। उसी में लिखते-लिखते कहते हैं कि शास्त्र के ज्ञाता लोग कहते हैं कि जो व्यक्ति नमाज न पढ़नेवाले लोगों की सहायता करता है, उसके लिये फरिश्ते नरक में कोठरी

बनावेंगे। और जो व्यक्ति नमाज पढ़ने तथा ईश्वर की आराधना करनेवालों की सहायता करता है, उसके लिये वे स्वर्ग में महल बनावेंगे। हम ईमान लाए और हमने सच मान लिया। जो इस पर विश्वास न करे, वह काफिर है। लेकिन अब्बुलफजल की दीन तथा नम्र शरीयत का फतवा यह है कि सब लोगों को दान देना चाहिए। नमाज पढ़नेवालों को भी देना चाहिए और न पढ़नेवालों को भी देना चाहिए; क्योंकि यदि स्वर्ग में गया तो वहाँ महल तैयार रहे—वहाँ सुखपूर्वक रहेगा। और यदि नरक में गया और न नमाज पढ़नेवालों को कुछ नहीं दिया, तो स्पष्ट है कि वहाँ भी उसके लिये घर न होगा—वह दूसरों के घर में घुसता फिरेगा। इसलिये एक पुरानी झोंपड़ी वहाँ भी अवश्य रहे। दूरदर्शिता की बात है। ईश्वर इस सम्बन्ध में अपने प्रेमियों को सामर्थ्य प्रदान करे और फिर अपने परम अनुग्रह से अकिंचन अब्बुलफजल को वास्तविक उद्देश्यों तक पहुँचावे। आप लिखते हैं कि प्रिय भाई अब्बुल मुकारम के विवाह के लिये मुझे आना चाहिए। क्यों न आऊँगा। सिर आँखों से आऊँगा। कई दिन से ऐसा अवसर आया है कि श्रीमान् सम्राट् इस तुच्छ पर इस प्रकार अनुग्रह प्रकट करते रहते हैं कि हर समय कुछ न कुछ कहते रहते हैं। ऐसी अवस्था है कि बीच में कोई व्यक्ति रहस्य का ज्ञाता नहीं होता। अतः दो तीन दिन के लिये आना स्थगित हो गया है। यदि ईश्वर ने चाहा तो रमजान के उपरान्त आपके चरणों में उपस्थित होने का सौभाग्य प्राप्त करूँगा; आदि आदि। ईश्वर साथी और सहायक रहे।

यह अन्तिम वाक्य कि "ईश्वर साथी और सहायक रहे"

प्राय: पत्रों के अन्त में लिखा करते थे। और सच भी है कि इन असहाय भाइयों का साथी और सहायक जो था, वह ईश्वर ही था।

राजा टोडरमल

ये अकबर बादशाह के मन्त्री थे, समस्त भारतवर्ष के साम्राज्य के दीवान थे। लेकिन फिर भी आश्चर्य है कि किसी लेखक ने इनके वंश या मूल निवास-स्थान का उल्लेख न किया। खुलासतुल् तवारीख में देख लिया। यद्यपि उसका लेखक हिन्दू है और वह टोडरमल का भी बहुत बड़ा प्रशंसक है, लेकिन उसने भी कुछ न खोला। हाँ, पंजाब के पुराने पुराने पंडितों और भाटों से पूछा तो पता चला कि वे टन्डन खत्री थे। पंजाब के लोग इस बात का अभिमान करते हैं कि इनका जन्म हमारे प्रदेश में हुआ था। कुछ लोग कहते हैं कि ये खास लाहौर के रहनेवाले थे और कुछ लोगों का मत है कि लाहौर जिले का चूनियाँ नामक स्थान इनका घर था और वहाँ उनके बड़े-बड़े विशाल भवन उपस्थित हैं। एशियाटिक सोसाइटी ने भी इनके जन्म-स्थान के सम्बन्ध में जाँच की और निश्चय किया कि ये अवध प्रान्त के लाहरपुर नामक स्थान के रहनेवाले थे।

विधवा माता ने अपने इस होनहार पुत्र को बहुत ही दरिद्रता की अवस्था में पाला था। रात के समय उसके सच्चे हृदय से ठंढे साँस से जो प्रार्थनाएँ निकल कर ईश्वर के दरबार में पहुँचती थीं, वह ऐसा काम कर गईं कि टोडरमल भारतवर्ष के सम्राट् के दरबार में बाईस सूबों के प्रधान दीवान और मन्त्री

हो गए। पहले वे साधारण मुन्शियों की भाँति कम पढ़े-लिखे नौकरी करनेवाले आदमी थे और मुजफ्फरखाँ के पास काम करते थे। फिर बादशाही मुत्सद्दियों में हो गए। उनमें विचार-शीलता, नियमों का पालन और काम की सफाई बहुत थी और आरम्भ से ही थी। उन्हें पुस्तकों का अध्ययन करने तथा सब बातों का ज्ञान प्राप्त करने का भी शौक था। इसलिये वे विद्या और योग्यता भी प्राप्त करने लगे और अपने काम में भी उन्नति करने लगे। काम का नियम है कि जो उसे सँभालता है, वह भी चारों ओर से सिमट कर उसी की ओर ढुलकता है। टोडरमल प्रत्येक कार्य बहुत अच्छे ढंग और शौक से करते थे; इसलिये बहुत सी सेवाएँ तथा प्रायः कार्यालय आदि उन्हीं की कलम से सम्बद्ध हो गए। दफ्तरों के काम-धन्धों के सम्बन्ध में उनका ज्ञान इतना बढ़ गया था कि अमीर और दरबारी लोग हर बात का पता उन्हीं से पूछने लगे। उन्होंने दफ्तर के कागजों, मुकद्दमों की मिसलों और बिखरे हुए कामों को भी नियमों और सिद्धान्तों के क्रम में बद्ध किया। धीरे धीरे वे बादशाह के समक्ष उपस्थित होकर कागज आदि पेश करने लगे। हर काम में उन्हीं का नाम जबान पर आने लगा। इन कारणों से यात्रा में भी बादशाह के लिये उन्हें अपने साथ रखना आवश्यक हो गया।

टोडरमल सब धार्मिक कृत्य और पूजा-पाठ आदि बहुत करते थे और इस विषय में पक्के हिन्दू थे। लेकिन वे समय को भी भली भाँति देखते थे और अपनी सूक्ष्मदर्शी दृष्टि से समझ लेते थे कि कौन सी बातें आवश्यक तथा कौन सी निरर्थक हैं। ऐसे अवसर पर उन्होंने धोती फेंक कर बरजों (घाघरेदार पाजामा ?) पहन

लिया, जामा उतार कर चोगे पर कमर कस ली और मोजे चढ़ा लिए । अब वे तुर्कों में घोड़ा दौड़ाए हुए फिरने लगे । बादशाही लश्कर कोसों में उतरा करता था । यदि उसमें किसी आदमी को ढूँढ़ने की आवश्यकता होती तो दिन भर बल्कि कई दिन लग जाते । उन्होंने प्यादा, सवार, तोपखाना, बहीर, सदर बाजार और लश्कर के उतारने के लिये भी पुराने सिद्धान्तों में अनेक सुधार किए और सबको उपयुक्त स्थान पर स्थापित किया । अकबर भी मनुष्यत्व का जौहरी और सेवाओं का सराफ था । जब उसने देखा कि ये हर काम के लिये सदा तैयार रहते हैं और खूब फुरती से सब काम करते हैं, तब उसनें समझ लिया कि ये मुत्सद्दीगिरी के अतिरिक्त सैनिकता तथा सरदारी के गुण भी रखते हैं ।

नियमों और आज्ञाओं आदि के पालन और हिसाब-किताब आदि समझने में टोडरमल किसी के साथ बाल भर भी रिआयत नहीं करते थे । इस कारण सब लोग यह कहकर उनकी शिकायत करते थे कि इनका स्वभाव बहुत कड़ा है । सन् ९७२ हि० में उन्होंने अपने इस गुण का इस प्रकार प्रयोग किया कि उसका परिणाम बहुत ही हानिकारक रूप में प्रकट हुआ । जब बादशाह ने खानजमाँ के साथ युद्ध करने के लिये मुनइमखाँ आदि अमीरों को कड़ा मानिकपुर की ओर भेजा, तब मीर मअज उल् मुल्क को बहादुरखाँ आदि पर आक्रमण करने के लिये कन्नौज की ओर भेजा । फिर टोडरमल से कहा कि तुम भी जाओ और मीर के साथ सम्मिलित होकर इन उद्दंड सेवकों को समझाओ । यदि वे ठीक मार्ग पर आ जायँ तो अच्छा ही है । नहीं तो उपयुक्त दंड पावें । जब ये वहाँ पहुँचे, तब सन्धि की बात-चीत आरम्भ हुई ।

बहादुरखाँ भी युद्ध करना नहीं चाहता था, परन्तु मीर का स्वभाव आग था। ऊपर से राजा साहब बारूद होकर पहुँचे। तात्पर्य यह कि लड़ मरे। (विशेष देखो मीर मअज उल् मुल्क के प्रकरण में।) व्यर्थ कष्ट उठाए और नीचा देखा। लेकिन इस बात के लिये राजा साहब की पूरी प्रशंसा होनी चाहिए कि वे मैदान से नहीं टले। प्रिय राजा साहब, घर के सेवकों से हिसाब-किताब में अपने नियमों आदि का जिस प्रकार चाहो, पालन कर लो। लेकिन साम्राज्य की समस्याओं में बिगड़ी बात बनाने के लिये कुछ और ही नियमों की आवश्यकता होती है। वहाँ के नियम और सिद्धान्त यही हैं कि जान-बूझकर भी किसी विशेष बात की ओर ध्यान न दिया जाय और उसे यों ही छोड़ दिया जाय। यहाँ इस प्रकार के सिद्धान्तों का उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं है।

चित्तौड़, रणथम्भौर और सूरत आदि की विजयों में भी राजा साहब के कठोर परिश्रमों ने बड़े बड़े इतिहास-लेखकों से इस बात के प्रमाण-पत्र ले लिए कि किलों आदि पर अधिकार करने और उनके सम्बन्ध के और दूसरे काम करने में राजा टोडरमल की कुशल बुद्धि जो काम करती है, वह उसी का काम है। वह दूसरे को प्राप्त ही नहीं हो सकती।

सन् ९८० हि० में राजा टोडरमल को आज्ञा हुई कि गुजरात जाओ और वहाँ के माल विभाग तथा आय-व्यय के कार्यालय की व्यवस्था करो। ये वहाँ गए और थोड़े ही दिनों में सब कागज-पत्र ठीक करके ले आए। इनकी यह सेवा बादशाह के दरबार में स्वीकृत और मान्य हुई।

सन् ९८१ हि० में जब मुनइमखाँ विहार की चढ़ाई में सेना-नायकत्व कर रहे थे, तब लड़ाई बहुत बढ़ गई। यह भी पता लगा कि लश्कर के अमीर लोग या तो आराम-तलवी के कारण या आपस की लाग-डाँट के कारण या शत्रु के साथ रिआयत करने के विचार से जान तोड़कर सेवा और अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं करते। अब राजा टोडरमल विश्वसनीय, मिजाज पहचाननेवाले और भीतरी रहस्य की बातों के ज्ञाता हो गए थे। इन्हें कुछ प्रसिद्ध अमीरों के साथ सेनाएँ देकर सहायता करने के लिये भेजा, जिसमें ये जाकर लश्कर की व्यवस्था करें और जो लोग सुस्त या उपद्रवी हैं, वे राजा साहब को बादशाह का जासूस समझ कर इस प्रकार काम करें, मानों स्वयं बादशाह ही वहाँ उपस्थित हैं। शाहबाज खाँ कम्बो आदि अमीरों को बादशाह ने इनके साथ कर दिया और लश्कर की व्यवस्था तथा निगरानी के सम्बन्ध में भी कुछ बातें बतला दीं। ये बड़ी फुरती से गए और खानखानाँ के लश्कर में सम्मिलित हो गए। शत्रु सामने था। युद्ध-क्षेत्र की व्यवस्था हुई। राजा ने सारे लश्कर की हाजिरी ली। जरा देखना चाहिए कि योग्यता और कार्य-कुशलता कैसी चीज है। बुड्ढे-बुड्ढे वीर चगताई तुर्क, हुमायूँ बल्कि बाबर के युद्ध देखनेवाले, बड़े-बड़े वीर सेनापति जो तलवारें मारकर अपने-अपने पद पर पहुँचे थे, अपने-अपने ओहदे लेकर खड़े हुए और कलम का मारनेवाला मुत्सद्दी अप्रसिद्ध खत्री उनकी हाजिरी लेने लगा। हाँ क्यों नहीं, जब वह इस पद के योग्य था, तब वह अपना पद क्यों न प्राप्त करे और अकबर जैसा न्यायी बादशाह उसे वह पद क्यों न दे!

जब पटने पर विजय प्राप्त हुई तो इस युद्ध में भी इसकी सेवाओं ने इसकी वीरता की ऐसी सिफारिशें कीं कि इन्हें झंडा और नकारा दिलवाया। इन्हें मुनइमखाँ के साथ से अलग न होने दिया और बंगाल पर चढ़ाई करने के लिये जो अमीर चुने गए, उनमें फिर इनका नाम लिखा गया। ये इस चढ़ाई की मानो आत्मा और संचालिनी शक्ति हो गए। प्रत्येक युद्ध में ये बड़ी तत्परता से कमर बाँधकर पहुँचते थे और सबसे आगे पहुँचते थे। परन्तु टाँडे के युद्ध में इन्होंने ऐसा साहस दिखलाया कि विजय-पत्रों तथा इतिहासों में मुनइमखाँ के साथ इनका भी नाम लिखा गया।

जुनैद करारानी का विद्रोह इन्होंने बहुत ही वीरता से दबाया। एक बार शत्रु अपने सिर पर निर्लज्जता की धूल डाल-कर भागा और फिर दोबारा आया। उससे बड़ा धोखा खाया। एक अवसर पर कोई सरदार मुनइमखाँ से बिगड़ गया जिससे बादशाही कामों में गड़बड़ी पड़ने लगी। उस समय टोडरमल ने बहुत ही बुद्धिमत्ता तथा साहस से उसका सुधार किया और शीघ्र ही बहुत ठीक व्यवस्था कर दी।

ईसाखाँ नियाजी सेना लेकर आया। उसके कारण कबाखाँ कंग के मोरचे पर भारी विपत्ति आ पड़ी। यद्यपि उसकी सहायता के लिये और अमीर भी आ पहुँचे थे, परन्तु टोडरमल को शाबाश है कि वे खूब पहुँचे और ठीक समय पर पहुँचे।

जब दाऊदखाँ अफगान गूजरखाँ से मिल गया और अपने बाल-बच्चों को रोहतास में छोड़कर सेना लेकर आया, तब राजा साहब उसका सामना करने के लिये तुरन्त प्रस्तुत हो गए।

बादशाही अमीर नित्य प्रति की चढ़ाई और बंगाल की बद-हवाई से बहुत दुःखी हो रहे थे। राजा ने देखा कि लोगों को आशा दिलाने के लिये मैं जो मन्तर फूँकता हूँ, उनका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। अतः उन्होंने मुनइमखाँ को लिखा। वह भी आगा-पीछा कर रहे थे। इतने में अकबर का आज्ञापत्र पहुँचा जिसमें बहुत अधिक ताकीद की गई थी। उसे पढ़कर खानखानाँ भी सवार हुए और दो बड़े-बड़े लश्कर लेकर शत्रु के सामने जा पहुँचे। दोनों पक्षों की सेनाएँ मैदान में सुसज्जित हुईं। बादशाही लश्कर के मध्य में मुनइमखाँ के सिर पर सेनापति का झंडा लहरा रहा था। शत्रु गूजर खाँ का हरावल ऐसे जोरों से आक्रमण करके आया कि बादशाही सेना के हरावल को सेना के मध्य भाग में ढकेलता हुआ चला गया। मुनइम खाँ बराबर तीन कोस तक भागा गया। उस समय टोडरमल सेना का दाहिना पार्श्व थे। धन्य हैं वह कि वह खाली अपने स्थान पर डटे ही नहीं रहे, बल्कि सेना के सरदारों का साहस बढ़ाते रहे और कहते रहे कि घबराओ नहीं। अब देखो, विजय की हवा चलती है। शत्रु ने खान आलम के साथ खानखानाँ के मरने का भी समाचार उड़ा दिया। राजा साहब अपनी सेना सहित अपने स्थान पर खड़े रहे। जब साथियों ने उनसे कहा, तब उन्होंने बहुत ही साहस तथा दृढ़तापूर्वक उत्तर दिया कि यदि खानखानाँ नहीं रहे तो क्या हुआ। हम अकबर के प्रताप के सेनापतित्व पर लड़ते हैं। वह सलामत रहे। देखो, अब शत्रु को नष्ट किए देते हैं। तुम लोग घबराओ नहीं। इसके उपरान्त ज्यों ही अवसर मिला, त्यों ही दाहिनी ओर से ये और बाईं ओर से शाहमखाँ जलायर ऐसे

जोरों के साथ जाकर गिरे कि शत्रु के लश्कर को तितर-बितर कर दिया। इतने में गूजरखाँ के मरने का समाचार पहुँचा। उस समय अफगान लोग बद-हवास होकर भागे और शाही लश्कर विजयी हुआ।

सन् ९८३ हि० में दाऊद की अवस्था इतनी खराब हो गई कि उसने सन्धि की प्रार्थना की। युद्ध बहुत दिनों से चल रहा था और देश की बहुत दुरवस्था हो रही थी, जिससे बादशाही लश्कर भी बहुत तंग आ गया था। दाऊद की ओर से बुड्ढे-बुड्ढे अफगान खानखानाँ तथा दूसरे अमीरों के लश्कर में पहुँचे और सन्धि की बात-चीत करने लगे। खानखानाँ की रण-नीति सदा सन्धि और शान्ति के ही पक्ष में रहती थी। वह सन्धि के लिये तैयार हो गए। अमीर लोग पहले ही बहुत दुःखी और तंग हो रहे थे। उनकी तो मानो हार्दिक कामना पूरी हुई। सब लोग सन्धि के लिये सहमत हो गए। एक राजा टोडरमल ही ऐसे थे जो अपने व्यक्तिगत सुख को सदा अपने स्वामी के नाम और काम पर निछावर करते थे। वे सन्धि के लिये सहमत नहीं हुए। उन्होंने कहा कि शत्रु की जड़ उखड़ चुकी है। अब थोड़े से साहस में सब अफगानों का नाश हो जायगा। इन लोगों की प्रार्थनाओं तथा अपने सुखों पर दृष्टिपात मत करो। निरन्तर धावे किए जाओ और पीछा मत छोड़ो। खानखानाँ तथा लश्कर के दूसरे अमीरों ने उन्हें बहुत समझाया, परन्तु वे अपनी सम्मति से न हटे। यद्यपि सन्धि हो गई* और दरबार बादशाही

* सन्धि के दरबार का तमाशा भी देखने ही योग्य है। देखो मुनइमखाँ खानखानाँ का प्रकरण।

सामान के साथ बहुत ही सजधज से सजाया गया और सारे लश्कर ने ईद मनाई, पर राजा साहब अपनी बात के पूरे थे; इसलिये वे उस दरबार में आए तक नहीं। खानखानाँ ने उन्हें बुलाने के लिये बहुतेरे प्रयत्न किए, परन्तु वह किस की सुनते थे। उन्होंने सन्धि-पत्र पर मोहर तक नहीं की।

जब बंगाल प्रान्त और उसके आस-पास के प्रदेशों की ओर से निश्चिन्तता हुई, तब बादशाह ने टोडरमल को बुला भेजा। ये जान निछावर करनेवाले बादशाह का मिजाज पहचानते थे, इसलिये तुरन्त उसकी सेवा में उपस्थित हुए। इन्होंने बंगाल के अनेक उत्तमोत्तम पदार्थ तथा फिरंग देश के भी बहुत से उत्तम तथा अद्भुत पदार्थ, जो समुद्री व्यापार के कारण वहाँ पहुँचते थे, बादशाह को भेंट किए। वह जानते थे कि हमारे बादशाह को हाथी बहुत प्रिय हैं। इसलिये चुन कर ५४ हाथी लाए थे। वे सब हाथी बहुत अच्छे और समस्त बंगाल में प्रसिद्ध थे। राजा टोडरमल ने बंगाल देश की सब बातें और युद्धों का पूरा विवरण बादशाह की सेवा में कह सुनाया। अकबर बहुत ही प्रसन्न हुआ। इन्हें दीवानी का उच्च पद प्रदान किया गया। थोड़े ही दिनों में समस्त राजनीतिक तथा माल विभाग के कार्य उनकी प्रकाशमान बुद्धि पर छोड़ कर उन्हें समस्त अधिकारों से युक्त मन्त्री बनाया गया और स्थायी रूप से बादशाह के प्रतिनिधि के पद पर नियुक्त किया गया। इसी सन् में मुनइमखाँ का देहान्त हो गया। वहाँ उपद्रव तो हो ही रहे थे। दाऊद फिर विद्रोही हो गया। अफगान फिर अपनी असालत दिखलाने लगे। समस्त बंगाल में विद्रोह फैल गया। अकबर के अमीरों की यह दशा थी कि लूट

के माल मार-मार कर कुबेर हो गए थे। मनुष्य का यह नियम है कि धन जितना ही बढ़ता जाता है, उसे प्राण भी उतने ही अधिक प्रिय होते जाते हैं। तोप-तलवार के मुँह पर जाने को किसी का जी ही नहीं चाहता था। बादशाह ने इन प्रान्तों की व्यवस्था का भार खानजहाँ को सौंपा। उनके साथ टोडरमल को भी कर दिया। जब ये लोग बिहार में पहुँचे, तब चारों ओर उपायों तथा पत्रों आदि के हरावल दौड़ाए। बुखारा और एशिया कोचक के अमीर लोग अपने-अपने घरों को लौटने के लिये तैयार थे। राजा साहब को देखकर चकित हो गए, क्योंकि बलवान् और काम समझनेवाले अधिकारी की अधीनता में काम करना सहज नहीं होता। कुछ लोगों ने यह आपत्ति की कि यहाँ का जल-वायु ठीक नहीं है। कुछ लोगों ने कहा कि खानजहाँ कजल-बाश है; हम उसकी अधीनता में काम नहीं कर सकते। परन्तु वह कई पीढ़ियों का अनुभवी था और इस प्रकार की बातों को खूब समझता था। उसने मौन धारण किया। वह उदारता तथा अपने उच्च साहस से अपने हृदय की विशालता दिखलाता रहा। उसका भाई इसमाइलखाँ लड़ाई छेड़ने के लिये हाथ में तलवार लेकर और साथ में कुछ सेनाएँ रखकर चारों ओर चढ़ाइयाँ करने लगा। अब टोडरमल की योग्यता और कार्य-कुशलता देखिए; और साथ ही यह भी देखिए कि वे अपने स्वामी के कैसे शुद्ध और सच्चे हृदय से शुभचिन्तक थे। उन्होंने कहीं लोगों को मित्रतापूर्वक समझा-बुझाकर, कहीं डरा-धमका कर, कहीं लोभ देकर, तात्पर्य यह कि किसी न किसी युक्ति से सब लोगों को परचा लिया जिसमें लश्कर बने का बना रहे। बस काम चलता

ही गया। दोनों स्वामिनिष्ठ मिल-जुलकर बड़े साहस, शुद्ध हृदय और खुले मन से काम करते थे। सिपाहियों का साहस और सेना का बल बढ़ाते रहते थे। अब किसी की अशुभ भावना क्या कर सकती थी! सभी जगह भली भाँति सेनाओं को सज्जित करके युद्ध किए जाते थे और उनका अन्त सफलता-पूर्ण होता था। राजा साहब कभी दाहिनी ओर रहते थे और कभी बाईं ओर; और ठीक समय पर ऐसी वीरता के साथ आगे बढ़कर काम देते थे कि सारे लश्कर को सँभाल लेते थे। तात्पर्य यह कि बंगाल का बिगड़ा हुआ काम फिर से बना लिया।

मार्के का मैदान उस समय आकर पड़ा था, जब दाऊद ने अन्तिम बार आक्रमण किया था। उस समय उसने शेर शाह तथा सलीम शाह के शासन-काल की खुरचन और पुराने-पुराने पठानों को समेट कर निकाला था और ठीक वर्षा ऋतु में घटा की तरह पहाड़ पर से उठा था। यह चढ़ाई ऐसी धूम-धाम की थी कि अकबर ने स्वयं आगरे से चलने की व्यवस्था की। यहाँ युद्ध-क्षेत्र बहुत अधिक विस्तृत था। दोनों लश्कर किले बाँधकर आमने-सामने खड़े हुए। खानजहाँ मध्य में और टोडरमल बाएँ पार्श्व पर थे। दोनों ओर के बहुत से वीर ऐसे साहस से लड़े कि मन के अरमान निकल गए। जीत और हार तो ईश्वर के हाथ है। अकबर और उसके अमीरों की नीयत काम कर गई। दाऊद पकड़कर मार डाला गया। वह दुःखपूर्ण दशा भी देखने ही योग्य थी (देखो खानजहाँ का प्रकरण)। उसके अन्त से युद्ध का अन्त हो गया। बंगाल और बिहार से पठानों की जड़ उखड़ गई। टोडरमल ने दरबार में उपस्थित होकर ३०४ हाथी भेंट

किए। अकबर के लिये उस देश का यही सबसे बड़ा उपहार था। इस युद्ध के विजय-पत्र खानजहाँ और राजा टोडरमल के नाम से लिखे गए।

इसी बीच में समाचार मिला कि वजीरखाँ की अयोग्यता के कारण गुजरात और दक्खिन की सीमा की बहुत बुरी दशा हो रही है। आज्ञा हुई कि मोतमिदुद्दौला राजा टोडरमल शीघ्र वहाँ पहुँचें। उन्होंने नदरबार प्रदेश में पहुँच कर दौरा किया और कार्यालयों को देखा। वहाँ से सूरत पहुँचे। वहाँ से भड़ौच, बड़ौदा और चाँपानेर होते हुए गुजरात से होकर पटन के माल विभाग के कार्यालयों को देखने के लिये गए थे कि इतने में मिरजा कामरान की कन्या, जो इब्राहीम मिरजा की पत्नी थी, अपने पुत्र को लेकर आई और गुजरात प्रान्त में उपद्रव मचाने लगी। उसके साथ और भी अनेक विद्रोही उठ खड़े हुए। देश में भारी विद्रोह मच गया। वजीरखाँ ने युद्ध की सब सामग्री और किले तथा प्राकार की मरम्मत आदि की व्यवस्था की और इतना ही आरम्भिक कार्य करके किले में बन्द होकर बैठ गया। साथ ही दूत दौड़ाए कि भागा-भाग जाकर राजा टोडरमल को इस उपद्रव का समाचार पहुँचावें। गोश्त तो फिस्स हो गया, परन्तु दाल धन्य है जिसने खूब उबाल दिखलाया। राजा साहब जिस हाथ में कलम पकड़े हुए लिख रहे थे, उसी में तलवार पकड़कर चल पड़े और गुजरात पहुँचे। वजीरखाँ को मर्द बनाकर नगर से बाहर निकाला। उस समय विद्रोही लोग बड़ौदे पर अधिकार करके बैठे हुए थे। ये बागें उठाए हुए पहुँचे। अभी बड़ौदा चार कोस था कि विद्रोहियों के

पैर उखड़ गए और सब लोग भाग निकले। वह आगे आगे भागे जाते थे और ये उनका पीछा किए जाते थे। वे लोग खम्भात से जूनागढ़ होते हुए ढुलका के संकीर्ण क्षेत्र में जाकर रुके और विवश होकर वहीं उन लोगों ने सामना किया।

दोनों ओर की सेनाएँ जम गईं। वजीरखाँ मध्य में हुए। चारों ओर चारों परे सज्जित हो गए। राजा साहब बाईं ओर थे। शत्रु ने सलाह की थी कि पंक्तियाँ बाँधते ही जोरों से युद्ध आरम्भ कर दो। कुछ लोग सामने हो और बाकी लोग अचानक भाग निकलो। अकबर के वीर अवश्य ही पीछा करेंगे और राजा साहब उनके आगे रहेंगे। अवसर पाकर एकाएक पीछे की ओर लौट पड़ो और वजीरखाँ तथा राजा साहब दोनों को बीच में घेरकर मार लो। बस काम हो जायगा। और वास्तव में उन लोगों को सबसे अधिक ध्यान राजा टोडरमल का ही था। जब युद्ध आरम्भ हुआ, तब मिरजा बिलकुल मरियल चाल से वजीरखाँ पर आक्रमण करने के लिये आगे बढ़े। उधर मेहरअली कोलाबी, जो सारे झगड़े की जड़ था, राजा टोडरमल पर आया। वे अचल रूप से अपने स्थान पर स्थित थे। वह उनसे टक्कर खाकर पीछे की ओर हटा। बादशाही लश्कर का दाहिना पार्श्व भागा। मध्य भाग भी निरुत्साह हो गया। हाँ वजीरखाँ अपने साथ बहुत से वीरों को लिए हुए भली भाँति डटा रहा। एक बार ऐसा अवसर आ ही पहुँचा था कि वह अपने नाम और प्रतिष्ठा पर अपने प्राण निछावर कर दे, कि राजा ने देखा। उन्होंने ऐसे हृदय के आवेश से, जिसमें सहस्रों हृदयों का आवेश भरा था, घोड़े उठाए। शत्रु की सेना को उलटते-पुलटते वहाँ जा पहुँचे और ऐसे जोर

से आकर गिरे कि शत्रु की व्यवस्था का सारा ताना-बाना टूट गया।

कामरान के पुत्र ने काम किया था। स्त्रियों को पुरुषों के से वस्त्र पहनाकर घोड़ों पर चढ़ाया था। वे बहुत भली भाँति तीर और भाले आदि चलाती थीं। बहुत कुछ रक्त-पात के उपरान्त शत्रु भाग गए और बादशाही लश्कर के लूटने के लिये बहुत सा माल-असबाब पीछे छोड़ गए। बहुत से विद्रोही पकड़े भी गए। टोडरमल ने लूट की सारी सामग्री, हाथियों और कैदियों आदि को ज्यों के त्यों वही वस्त्र और वही तीर-कमान हाथ में देकर दरबार की ओर भेज दिया, जिसमें बादशाह सलामत जनानी मरदानगी का भी नमूना देख लें। उनके सुयोग्य पुत्र धारा ने इन लोगों को लाकर दरबार में उपस्थित किया।

सन् ९८७ हि० में फिर जोरों से आँधी आई। इस बार उसका रंग कुछ और ही था। बात यह थी कि इस बार स्वयं अकबर के अमीरों में ही बिगाड़ था। सब सैनिक और उनके सरदार लोग प्रधान सेनापति के विद्रोही हो गए थे; और आश्चर्य यह कि सब के सब तुर्क और मुगल थे। अकबर ने राजा टोडर-मल को भेजा। देखने की बात यह है कि उनकी अधीनता में जो और सरदार दिए गए थे, वे सब भी भारत के ही राजा लोग थे। इसका कारण यह था कि अकबर जानता था कि ये सब भाई-बन्द हैं। आपस में मिल जायँगे। परन्तु टोडरमल के लिये यह अवसर बहुत ही विकट था। यद्यपि उसके सामने विद्रोही लोग थे, परन्तु फिर भी वे सब चगताई वंश के पुराने सेवक और नमक खानेवाले थे। ऐसे

अवसर पर मानों अपनी ही तलवारों से अपने ही हाथ-पैर कटते थे। इस पर और भी कठिनता यह थी कि वे लोग मुसलमान थे और ये हिन्दू थे। परन्तु सुयोग्य राजा साहब ने इस समस्या का भी बड़े ही धैर्य तथा बुद्धिमत्ता के साथ निराकरण किया। उन्होंने युक्ति तथा तलवार दोनों के गुण बहुत उत्तमतापूर्वक दिखलाए और बहुत अधिक परिश्रम करके सब काम किए। जिन लोगों को अपनी ओर खींच सके, उन्हें बहुत ही युक्तिपूर्वक खींच लिया। जो लोग बिलकुल नमकहराम थे, वे या तो तलवार के घाट उतरे और या उन्होंने अपनी करनी का दंड पाया। वे लोग चारों ओर भागते फिरते थे और बादशाह पर जान निछावर करनेवाले नमक-हलाल लोग उनका पीछा करते फिरते थे। लेकिन फिर भी क्या इधर और क्या उधर, सभी ओर बादशाह के सेवक ही नष्ट होते थे।

इस युद्ध में कुछ दुष्ट अशुभचिन्तकों ने इस उद्देश्य से एक षड्यन्त्र रचा था कि जिस समय राजा टोडरमल लश्कर की हाजिरी लेते रहें, उस समय उन्हें मार डाला जाय। इस समय चारों ओर विद्रोह मचा ही हुआ है। कौन जानेगा और कौन पहचानेगा। परन्तु राजा साहब बहुत ही समझदार थे। ऐसे ढंग से अलग हो गए कि अपने तो प्राण बच गए और अशुभचिन्तकों का परदा रह गया।

इस युद्ध में राजा टोडरमल ने मूँगेर के चारों ओर प्राकार तथा दमदमा आदि बनाकर वहाँ एक बहुत बड़ा जंगी किला खड़ा कर दिया। सन् ९८९ हि० में सब झगड़ों का अन्त करके फिर दरबार में आए और अपने स्थायी मन्त्रीवाले पद पर बैठे।

समस्त अधिकारों से युक्त दीवान हो गए और भारतवर्ष के २२ सूबों पर उनकी कलम दौड़ने लगी।

सन् ९९० हि० में राजा साहब ने जशन किया और अपने यहाँ बादशाह की दावत की। अकबर भी अपने सेवकों पर कृपा करनेवाला और निष्ठों का काम बनानेवाला था। वह उनके घर गया। उनकी प्रतिष्ठा एक से हजार हो गई। साथ ही हजारों निष्ठ सेवकों के साहस बढ़ गए।

सन् ९९३ हि० में राजा साहब को चार-हजारी मन्सब प्रदान किया गया।

इसी सन् में पहाड़ी यूसुफजई तथा सवाद आदि की लड़ाई आरम्भ हो गई। राजा बीरबल मारे गए (विशेष देखो बीरबल का हाल)। बादशाह को बहुत अधिक दुःख हुआ। उन्होंने दूसरे दिन राजा टोडरमल को उस ओर भेजा। उस समय मानसिंह जमरूद नामक स्थान में थे और घोर अन्धकार में अपनी तलवार से प्रकाश कर रहे थे। उनके पास आज्ञा पहुँची कि जाकर राजा टोडरमल से मिलो और उनके परामर्श से सब काम करो। राजा ने सवाद के पार्श्व में लंगर पर्वत के पास छावनी डाल दी और सेनाओं को इधर-उधर फैला दिया। भला डाकुओं की शक्ति ही कितनी हो सकती थी! वे सब मारे गए, बाँधे गए और भाग गए। ये विद्रोहियों की गरदनें तोड़ कर सिर ऊँचा करके और सफल-मनोरथ होकर वहाँ से लौट आए। सीमा प्रान्त के शेष कार्यों का भार मानसिंह के जिम्मे रहा।

सन् ९९६ हि० में कलीचखाँ ने गुजरात से आकर बहुत से विलक्षण उपहार आदि बादशाह की सेवा में भेंट किए।

उन्हें आज्ञा हुई कि टोडरमल के साथ दीवानखाने में बैठकर माल विभाग के सब काम किया करो। मुल्ला साहब लिखते हैं कि टोडरमल सत्तरा-बहत्तरा हो गया है; उसके होश-हवास ठीक नहीं हैं; रात के समय कोई शत्रु आ लगा। उसने इन्हें तलवार मारी थी। पर वह चमड़े को छीलती हुई ऊपर से निकल गई। शेख अब्दुलफजल इस घटना का वर्णन बहुत अच्छी तरह करते हैं। कहते हैं कि सुशील अमीरों पर सन्देह था कि उन्हींमें से किसी ने धार्मिक द्वेष के कारण यह कृत्य किया होगा। परन्तु जाँच करने पर पता चला कि राजा ने किसी खत्री को उसके दुष्कृत्य का दंड दिया था। उसकी आँखों पर क्रोध ने अँधेरी चढ़ाई। चाँदनी रात थी। वह कलुषित-हृदय घात लगाए बैठा था। जब राजा साहब आए, तब वह अवसर पाकर अपना काम कर गया। अन्त में उसका और उसके साथियों का भी पता लग गया। उनमें से प्रत्येक ने दंड पाया।

सन् ९९७ हि० में बादशाह काश्मीर की ओर चले। नियम यह था कि जब बादशाह कहीं बाहर जाते थे, तब दो बड़े और प्रतिष्ठित अमीर राजधानी में रहा करते थे। लाहौर का प्रबन्ध राजा भगवानदास को सौंपा गया। उनके साथ राजा टोडरमल को भी वहीं छोड़ गए। एक तो सौ रोगों का एक रोग उनका बुढ़ापा था। तिस पर कुछ बीमार भी हो गए। बादशाह को निवेदनपत्र लिखा जिसका आशय यह था कि रोग ने वृद्धा-वस्था से षड्यन्त्र करके जीवन पर आक्रमण किया है और उसे धर दबाया है। मृत्यु का समय समीप दिखाई पड़ता है। यदि आज्ञा हो तो सब कामों से हाथ उठाकर गंगा जी के तट पर

जा बैठूँ। इच्छा है कि ईश्वर-चिन्तन में वहीं अन्तिम श्वास निकाल दूँ।

बादशाह ने पहले तो इन्हें प्रसन्न करने के लिये आज्ञापत्र लिखकर भेज दिया, जिसमें इनका कुम्हलाया हुआ मन हरा हो जाय। परन्तु थोड़े ही समय के उपरान्त दूसरा आज्ञापत्र फिर पहुँचा कि ईश्वर-चिन्तन कभी दीन-दुःखियों की सहायता के समान नहीं हो सकता। इसलिये बहुत उत्तम है कि तुम यह विचार छोड़ दो। अन्त समय तक दीन-दुःखियों के ही काम में लगे रहो और इसी को अपनी अन्तिम यात्रा का पाथेय समझो। पहले आज्ञापत्र के अनुसार आज्ञा पाकर रोगी शरीर तथा नीरोग प्राण लेकर हरद्वार की ओर चले थे। लाहौर के पास अपने ही बनवाए हुए तालाव पर डेरा था। इतने में दूसरा आज्ञापत्र पहुँचा कि चले आओ।

इस घटना का वर्णन करते हुए शेख अब्बुलफजल कैसा अच्छा प्रमाणपत्र देते हैं कि राजा टोडरमल ने बादशाह की आज्ञा टालने को ईश्वर की आज्ञा टालने के समान समझा। इसलिये जिस समय उनके पास दूसरा आज्ञापत्र पहुँचा, उसी समय उसका पालन किया और ग्यारहवें दिन यहाँ के पाले हुए शरीर को यहीं (लाहौर में) बिदा कर दिया। वे सत्यता, वीरता, सूक्ष्मदर्शिता तथा भारतवर्ष का नेतृत्व करने में अनुपम और अद्वितीय थे। यदि वे धर्म सम्बन्धी कार्यों में पक्षपात की दासता और अनुकरण की मित्रता न करते, मन में द्वेष न रखते और अपनी ही बात का सदा पक्ष न लेते तो अवश्य ही उनकी गणना पूज्य महात्माओं में होती। उनकी मृत्यु से निःस्वार्थ कार्य-

कुशलता को भारी आघात पहुँचा और प्रत्येक विषय को उचित रूप से सम्पादित करने के बाजार में वह गरमी न रह गई। माना कि ईमानदार आदमी, जिसका मिलना बहुत अधिक कठिन है, किसी प्रकार मिल भी जाय, लेकिन वह इतनी अधिक विश्वसनीयता कहाँ से लावेगा।

टोडरमल की उमर का हाल किसी ने नहीं खोला। मुल्ला साहब ने जिस दशा का वर्णन किया है, उससे इतना अवश्य ज्ञात हो गया कि इन्होंने दीर्घ आयु पाई थी। हजरत तो सब पर रुष्ट ही रहते हैं। अभी शाह फतहउल्ला और हकीम अब्बुलफतह पर क्रुद्ध हुए थे। ये बेचारे तो हिन्दू ही थे। इन पर जितना झल्लाएँ, थोड़ा है। लिखते हैं कि राजा टोडरमल और राजा भगवानदास, जो अमीर उल्उमरा थे और लाहौर में रहते थे, जहन्नुम और नरक के ठिकानों को भागे और तहों के नीचेवाली तह में जाकर साँपों और बिच्छुओं के लिये जीवन की सामग्री बने। ईश्वर दोनों को नरक में डाले। उन्होंने एक ही चरण में दोनों के मरने की तारीख कह डाली—

بگفتا ٹوڈر و بھگوان مردند –

अर्थात्—कहा कि टोडर और भगवान मर गए।

जब इतने पर भी उनका जी ठंढा न हुआ, तब फिर कहा—

ٹوڈرمل آنکہ ظلمش بگرفتہ بود عالم –
چوں رفت سوئے دوزخ خلقے شدند خورم –
تاریخ رفتنش را از پیر عقل جستم –
خوش گفت پیر دانا وے رفت در جہنم –

अर्थात्—वह टोडरमल, जिसके अत्याचार से सारा संसार जकड़ा हुआ था, जब नरक की ओर गया, तब प्रजा प्रसन्न हुई। जब मैंने बुद्धि रूपी वृद्ध पुरुष से उसके मरने की तारीख पूछी, तब उस बुद्धिमान् वृद्ध ने प्रसन्न होकर कहा कि वह जहन्नुम में गया।

राजा टोडरमल की बुद्धि और युक्ति पर अकबर को जितना अधिक विश्वास था, उससे अधिक उनकी ईमानदारी, नमक-हलाली और स्वामिनिष्ठा पर भी भरोसा था। जब टोडरमल पटने के युद्ध में जान निछावर कर रहे थे, तब दफ्तर का काम राय रामदास के सपुर्द हुआ; क्योंकि वह भी कामों को भली भाँति समझनेवाला, ईमानदार और सुशील अहलकार था। उसे दीवानी का खिलअत भी प्रदत्त हुआ था। लेकिन आज्ञा हुई थी कि वेतन के कागज राजा के मुहर्रिर और मुन्शी अपने ही पास रखें।

राजा टोडरमल के कारण उनके सम्बन्धियों की कार्य-कुशलता भी विश्वसनीय हो गई थी। जब बंगाल और विहार पर चढ़ाई हुई थी, तब नावों तथा नवाड़ों का प्रबन्ध परमानन्द के जिम्मे हुआ था। वह राजा टोडरमल के बहुत पास के सम्बन्धियों में से था। राजा टोडरमल के सम्बन्ध में यह बात बहुत ही अधिक प्रशंसा के योग्य है कि यद्यपि वे इतने अधिक योग्य थे और सदा कठिन परिश्रम करते हुए अपने प्राण निछावर करने के लिये उद्यत रहते थे, परन्तु फिर भी कभी स्वयं अपने आपको ऊँचे नहीं उठाना चाहते थे। कई युद्धों में उनके लिये प्रधान सेनापति बनने का अवसर आया,

परन्तु वे कभी सेना के मध्य भाग में, जो प्रधान सेनापति का स्थान है, स्थित नहीं हुए। उनके कार्यों से यह ज्ञात होता है कि वे अपने स्वामी की आज्ञा के अनुसार तल्लीन होकर और अपनी अवस्था तथा शरीर का सारा ध्यान छोड़कर सब काम किया करते थे। प्रत्येक युद्ध में बहुत ही ठीक समय पर जाकर पहुँचते थे और जान तोड़कर विजय में सहायक होते थे। बंगाल की लड़ाई में सदा सरदार से सिपाही तक सभी लोग निरुत्साह होकर भागने के लिये तैयार रहते थे; और राजा टोडरमल कहीं मिल-जुलकर, कहीं सहानुभूति दिखलाकर और कहीं आशा बँधाकर सब लोगों के हृदय पर वास्तविक उद्देश्य अंकित कर देते थे और उन्हें रोके रहते थे।

जिस समय हुसैन कुलीखाँ खानजहाँ के सेनापतित्व पर तुर्क सवार बिगड़े थे, उस समय प्रायः सारी सेना ही बिगड़ गई थी, और युद्ध का सारा काम नष्ट होना चाहता था। भला दूसरे का आगे बढ़ना और अपना पीछे हटना किसे पसन्द आता है! क्या उस समय उनका जी नहीं चाहता था कि मैं सेनापति कहलाऊँ? लेकिन उन्होंने अपने स्वामी की प्रसन्नता का ध्यान रखा और ऐसा काम किया कि सब लोग सरदार खानजहाँ की आज्ञा का पालन करने के लिये उद्यत हो गए।

इनकी विद्या सम्बन्धी योग्यता केवल इतनी ही जान पड़ती है कि अपने दफ्तर के लेख आदि भली भाँति पढ़-लिख लेते थे। लेकिन इनकी तबीयत नियम आदि बनाने और सिद्धान्त निश्चित करने में इतनी अच्छी थी कि जिसकी प्रशंसा नहीं हो सकती। माल विभाग के कामों को ऐसा जाँचते थे और उसके

परिणामों को ऐसा पहचानते थे कि बस उन्हींका काम था। दूसरा कोई वैसा काम कर ही नहीं सकता था। मैंने पहले भी लिखा है और अब दोबारा लिखता हूँ कि पहले हिसाब का दफ्तर ठीक नहीं था। उसके सब काम बिलकुल उलटे-पुलटे और अनिश्चित होते थे। जहाँ हिन्दू नौकर थे, वहाँ का काम हिन्दी में चलता था और जहाँ विलायती नौकर थे, वहाँ सब काम फारसी में होता था। टोडरमल, फैजी, मीर फतहउल्ला शीराजी, हकीम अब्दुलफतह, हकीम हमाम, निजामउद्दीन बख्शी आदि ने बैठकर नियम निर्धारित किए और सब कार्यालयों में उन्हीं नियमों के अनुसार काम होने लगा। ख्वाजा शाह मन्सूर और मुजफ्फरखाँ ने दफ्तरों की व्यवस्था के सम्बन्ध में बड़े बड़े काम किए। परन्तु इन्होंने उन सब पर पानी फेर दिया। प्रसिद्धि के मैदान में ये उनसे आगे निकल गए। बहुत से नक्शों और फरदों आदि के नमूने आईन अकबरी में दिए हुए हैं। उनके किए हुए सुधार और बनाए हुए पारिभाषिक शब्द आज तक मालगुजारी और हिसाब के कागजों में चले आते हैं।

सिकन्दर लोदी के समय तक धार्मिक हिन्दू फारसी या अरबी नहीं पढ़ते थे। उन्होंने इनका नाम म्लेच्छ विद्या रख छोड़ा था। लेकिन राजा टोडरमल ने यह निश्चय किया कि समस्त भारतवर्ष के दफ्तर केवल फारसी भाषा में हो जायँ। इसका परिणाम यह हुआ कि लिखने-पढ़नेवाले व्यापारी और कृषक हिन्दुओं के लिये फारसी पढ़ना आवश्यक हो गया। इससे हिन्दुओं में एक प्रकार की खलबली मच गई। कुछ दिनों तक अनेक कठिनाइयाँ भी उपस्थित हुईं। परन्तु साथ ही सर्व-साधारण

में उन्होंने इस विचार का भी प्रचार किया कि समय के बादशाह की भाषा ही जीविका की पूँजी और बादशाह के दरबार तक पहुँचानेवाली सहायक है। उधर बादशाह भी अकबर बादशाह था। उसने अपने प्रेम का जाल फेंककर लोगों के हृदयों को मछलियों की भाँति फँसा लिया था। यह बात बहुत शीघ्र सब लोगों की समझ में आ गई। कुछ ही वर्षों में बहुत से हिन्दू फारसी पढ़नेवाले और उसके अच्छे ज्ञाता हो गए और दफ्तरों में विलायती लोगों के बराबर बैठने लगे। जरा राजा साहब की युक्ति को देखना चाहिए कि उन्होंने कैसी सुन्दरता से जाति के राजनीतिक तथा आर्थिक उद्देश्यों की सिद्धि के लिये राजमार्ग खोला है। बल्कि यदि सच पूछिए तो उसी समय से फारसी तथा अरबी शब्दों को हिन्दुओं की भाषाओं बल्कि घरों में जाने के लिये मार्ग मिल गया। यहीं से रेखता के द्वारा उर्दू की नींव दृढ़ हुई।

सन् ९९० हि० में सोने से लेकर ताँबे तक के समस्त सिक्कों में सुधार हुए। इस सुधार में भी राजा साहब के विचारों का बहुत बड़ा अंश था।

राजा साहब में सब से बड़ा गुण यह था कि विचार या युक्ति किसी में भी वे नीति का कोई अंग छोड़ नहीं रखते थे। आरम्भ में परम बुद्धिमान् दीवान शाह मन्सूर साम्राज्य के समस्त दफ्तरों को अपनी कलम की नोक से दबाए हुए थे। दीवान या वजीर जो कुछ समझो, वही थे। साथ ही हिसाब-किताब के कागजों के कीड़े भी थे और मितव्यय के ताल के बगले भी थे। लेकिन सिपाहियों और नौकरों का जोंक की भाँति लहू पी जाते

थे। सन् ९८८ हि० में उन्होंने एक नई कारगुजारी दिखलाई और सेना के वेतन के नियम बनाए। राजा टोडरमल ने एक विस्तृत निवेदनपत्र लिखा। उसी में दफ्तर के हिसाब-किताव के नियम लिखे थे और समय के लिये उपयुक्त नीति का वर्णन करते हुए उसका ऊँच-नीच दिखलाकर यह बतलाया था कि सिपाहियों के साथ रिआयत रखने में ही भलाई है। अकबर स्वयं सिपाहियों के माई-बाप थे। इसलिये उन्होंने ख्वाजा से यह काम ले लिया और उनका काम शाह कुली महरम को और वजीर का काम वजीरखाँ को मिल गया। यही शुभ-चिन्तनाएँ थीं जिनके कारण शाह की वह दशा हुई (विशेष देखो शाह का प्रकरण)। और राजा साहब की नीति के यही अंग थे जिनकी रिआयतों के कारण इनकी बातों का सैनिकों के हृदय पर इतना प्रभाव पड़ता था कि बंगाल की लड़ाइयों में उन्हें इतनी सफलता प्राप्त हुई।

राजा साहब ने हिसाब-किताब के सम्बन्ध में एक छोटी सी पुस्तक लिखी थी। उसी के गुर याद करके बनिए और महाजन दूकानों पर और देशी हिसाब जाननेवाले घरों और दफ्तरों के कामों में बड़े बड़े अद्भुत कार्य करते हैं और आज-कल के स्कूलों के पढ़े-लिखे हिसाबी लोग मुँह ताकते रह जाते हैं।

काश्मीर और लाहौर के पुराने विद्वानों में "खाजने इसरार" नामक पुस्तक उन्हीं के नाम से प्रसिद्ध है। परन्तु वह अब बहुत कम मिलती है। मैंने बहुत कुछ प्रयत्न करने पर काश्मीर में जाकर पाई थी। लेकिन उसकी भूमिका देखकर आश्चर्य हुआ, क्योंकि वह सन् १००५ हि० की रचना है और

राजा साहब का देहान्त सन् ९९७ हि० में ही हो गया था। सम्भव है कि राजा साहब ने स्मरण-पत्रिका के रूप में जो पुस्तक लिखी हो, उसी में किसी ने भूमिका लगा दी हो। देखने से जान पड़ता है कि वह दो भागों में विभक्त है। एक भाग में तो धर्म, ज्ञान और पूजा-पाठ आदि के प्रकरण हैं और दूसरे में लौकिक कार्यों के सम्बन्ध के प्रकरण हैं। दोनों में ही बहुत से छोटे छोटे प्रकरण हैं। प्रत्येक वस्तु का थोड़ा थोड़ा वर्णन है, परन्तु उसमें है सभी कुछ। दूसरे भाग में नीति और गृह-प्रबन्ध आदि के अतिरिक्त मुहूर्त्त, संगीत, स्वरोदय, पक्षियों के शब्दों के शकुन और उनकी उड़ान आदि तक के सम्बन्ध की बातें लिखी हैं। उक्त ग्रन्थ से यह भी विदित होता है कि वे अपने धर्म के पक्के और विचारों के पूरे थे। सदा ज्ञान-ध्यान में लगे रहते थे और पूजा-पाठ तथा धार्मिक कृत्य बहुत ठीक तरह से करते थे। उस समय लोगों को स्वतन्त्रता बहुत अधिक रहती थी; इसलिये अपनी इन बातों के कारण उन्होंने एक विशेषता सम्पादित कर ली थी। कहाँ हैं वे लोग जो कहते हैं कि सेवक तभी स्वामि-निष्ठ होता है, जब उसके विचार और अवस्थाएँ बल्कि धार्मिक विश्वास भी उसके स्वामी के साथ मिलकर एक हो जायँ? वे लोग आवें और टोडरमल की इन बातों से शिक्षा ग्रहण करें कि सच्चे धार्मिक वही लोग हैं जो शुद्ध हृदय से अपने स्वामी की सेवा करें। बल्कि अपने धर्म पर उनका जितना ही शुद्ध और दृढ़ विश्वास होगा, उनकी स्वामिनिष्ठा भी उतनी ही शुद्ध तथा दृढ़ होगी। अब पाठक इनकी नीयत का भी फल देख लें। अकबर के दरबार में कौन सा ऐसा बड़ा अमीर था जिससे

ये किसी बात में एक पग भी पीछे या पुरस्कार आदि पाने में नीचे रहे ?

धार्मिकता और उसके आचरण के सम्बन्ध के नियम और बन्धन आदि कुछ अवसरों पर इन्हें तंग भी करते थे। एक बार बादशाह अजमेर से पंजाब जा रहे थे। सब लोग यात्रा की गड़बड़ी में तो रहते ही थे। एक दिन कूच की घबराहट में इनके ठाकुरों का आसन (झोला ?) कहीं रह गया। या सम्भव है कि किसी ने साम्राज्य के मन्त्री का थैला समझ कर चुरा लिया होगा। राजा साहब का यह नियम था कि जब तक पूजा-पाठ नहीं कर लेते थे, तब तक कोई काम नहीं करते थे। यहाँ तक कि भोजन आदि भी नहीं करते थे। कई समय का उपवास हो गया। अकबरी लश्कर के डेरे में यह चर्चा फैल गई कि राजा साहब के ठाकुर चोरी हो गए। वहाँ बीरबल सरीखे बड़े-बड़े विद्वान् दिल्लगीबाज और पंडित शोहदे उपस्थित थे। ईश्वर जाने उन लोगों ने क्या क्या दिल्लगियाँ उड़ाई होंगी !

बादशाह ने बुलाकर कहा कि तुम्हारे ठाकुर ही चोरी गए हैं न, तुम्हारा अन्नदाता जो ईश्वर है, वह तो चोरी नहीं गया न ? स्नान करके उसी को स्मरण करो और तब भोजन करो। आत्महत्या किसी धर्म के अनुसार पुण्य का काम नहीं है। राजा साहब ने भी अपना वह विचार छोड़ दिया। अब कहने-वाले चाहे कुछ ही कहें, परन्तु मैं तो उनकी दृढ़ता पर हजारों प्रशंसाओं के फूल चढ़ाऊँगा। उन्होंने बीरबल की भाँति दरबार के वातावरण में आकर अपना धर्म नहीं गँवाया। अलबत्ता दीन

इलाही अकबर शाही के खलीफा नहीं हुए। खैर वह खिलाफत उन्हींको मुबारक हो।

शेख अब्बुलफजल ने इनके स्वभाव तथा व्यवहार आदि के सम्बन्ध में जो थोड़ी सी बातें लिखी हैं, उनके सम्बन्ध में मुझे भी कुछ लिखना आवश्यक जान पड़ता है। वह लिखते हैं कि इनमें कट्टरपन के प्रति अनुराग, अनुकरण के प्रति प्रेम और द्वेष भाव न होता और ये अपनी बात पर अहंमन्यता-पूर्वक न अड़ते तो इनकी गणना पूज्य महात्माओं में होती।

साधारण लोग यह अवश्य कहेंगे कि शेख धर्म-भ्रष्ट आदमी थे। वे जिस व्यक्ति को धर्म-निष्ठ और अपने पूर्वजों की लकीर पर चलता हुआ देखते थे, उसी की धूल उड़ाते थे। मैं कहता हूँ कि यह सब ठीक है। लेकिन अब्बुलफजल भी आखिर एक आदमी थे। उन्होंने इसी जगह नहीं और भी कई जगह राजा साहब के सम्बन्ध में इसी प्रकार की बातें कही हैं। राजा साहब के इन झगड़ों के कारण अवश्य ही लोगों को कुछ न कुछ हानियाँ पहुँची होंगी। जब राजा साहब बंगाल पर विजय प्राप्त करके लौटे, तब उन्होंने ५४ हाथी और बहुत से उत्तमोत्तम बहुमूल्य पदार्थ बादशाह को भेंट किए थे। वहाँ भी अब्बुलफजल लिखते हैं कि बादशाह ने इनकी बुद्धिमत्ता देखकर देश के प्रबन्ध और माल विभाग के सब काम इन्हें सपुर्द करके समस्त भारतवर्ष का दीवान बना दिया। वे सत्य मार्ग पर चलनेवाले, निर्लोभ और अच्छे सेवक थे। सब काम बिना किसी प्रकार के लोभ के करते थे। क्या अच्छा होता कि ये हृदय में द्वेष न रखते और लोगों से बदला चुकाने के भाव से रहित होते तो इनकी तबीयत के

खेत में जरा मुलायमत फूट निकलती। खैर; यह भी सही। शेख लिखते हैं कि यदि धार्मिक पक्षपात और कट्टरपन इनके चेहरे पर रंग न फेरता तो ये इतने निन्दनीय न होते। यह सब कुछ ठीक है, परन्तु उस समय जिस प्रकार के बहुत से लोग उपस्थित थे, उन्हें देखते हुए कहना चाहिए कि ये सन्तुष्ट-हृदय और निर्लोभ थे, सब काम बड़े परिश्रम से करते थे और काम करने-वालों का अच्छा आदर करते थे। उनके जोड़ के बहुत कम लोग मिलते हैं; बल्कि यों कहना चाहिए कि इन सब बातों में वे निरुपम थे। देखिए शेख साहब ने क्या प्रमाणपत्र दिया है। अब पाठक इनके पाँच वाक्यों की यह लिखावट फिर से पढ़ें और ध्यानपूर्वक देखें।

इनमें का पहला और दूसरा वाक्य राजा साहब की जाति के लिये ऐसा सर्टिफिकेट है जिस पर वह अभिमान कर सकती है। तीसरे वाक्य पर भी क्रुद्ध नहीं होना चाहिए; क्योंकि वह भी आखिर मनुष्य ही थे; और ऐसे उच्च पद पर प्रतिष्ठित थे कि हजारों लाखों आदमियों के मामले उनसे टक्कर खाते थे और बार-बार टक्कर खाते थे। एक बार कोई ले निकलता होगा, तो दूसरे अवसर पर ये भी कसर निकाल लेते होंगे। इसके अतिरिक्त ये नियमों का कठोरतापूर्वक पालन करते थे और हर काम में बादशाह की किफायत करना चाहते थे; इसलिये बादशाह के दरबार में भी इन्हीं की बात ऊँची रहती होगी। मेरे मित्रो, यह दुनियाँ बहुत ही नाजुक जगह है। यदि राजा साहब अपने शत्रुओं से अपना बचाव न करते तो जीवित कैसे रहते और उनका निर्वाह कैसे होता? चौथे वाक्य पर भी न चिढ़ना चाहिए,

क्योंकि वे दीवान थे। बड़े बड़े अमीरों से लेकर दरिद्र सिपाहियों तक और बड़े-बड़े देशों के अधिकारियों से लेकर छोटे-छोटे साफीदारों तक सभी का हिसाब-किताब उन्हें रखना पड़ता था। वह उचित बात में किसी के साथ रिआयत करनेवाले नहीं थे। सब बातों को जाननेवाले अहलकार थे। संसार में छोटे से लेकर बड़े तक सभी अपनी किफायत और अपना लाभ करना चाहते हैं। दफ्तर में लिखी हुई एक-एक रकम वह जरूर पकड़ते होंगे। लोग हुज्जतें करते होंगे। हिसाब-किताब का मामला था। किसी का कुछ बस न चलता होगा। सिफारिशें भी आती होंगी; लेकिन वे किसी की सुनते न होंगे। दरबार तक भी नौबतें पहुँचती होंगी। राजा साहब काट ही लेते होंगे। अकबर भी यद्यपि दयालु बादशाह था, लेकिन फिर भी वह साम्राज्य के नियमों और दफ्तर के कानूनों को तोड़ना नहीं चाहता था। इसी लिये कहीं-कहीं वह भी दिक होता होगा। सब लोग नाराज होते होंगे। यही जड़ है उन शेरों की जो मुल्ला-साहब ने उनके सम्बन्ध में लिखे थे।

इतना सब कुछ होने पर भी वह जो कुछ करते थे, अपने स्वामी का हित समझकर ही करते थे और जो कुछ लाभ होता था, वह बादशाही खजाने में देते थे। हाँ, यदि वे बीच में आप ही कतर लेते होते तो अवश्य अपराधी ठहरते। परन्तु यदि वे कतरते होते तो लोग कब छोड़ते। उन्हीं बेचारे को कतर डालते। यही कारण है कि उनकी सत्यता से सब लोग बुरा मानते हैं।

हाँ, एक बात का मुझे भी दुःख है। कुछ इतिहास-लेखक लिखते हैं कि शाह मन्सूर की हत्या के लिये जो षड्यन्त्र हुए थे,

उनमें शहबाजखाँ कम्बो के भाई करमउल्ला ने भी कुछ पत्र उपस्थित किए थे। वे पत्र भी जाली थे और यह राजा टोडरमल की कारसाजी थी। उस समय तो कोई न समझा, परन्तु पीछे यह भेद खुल गया। परन्तु ये राजा टोडरमल के और उनके कागजी वाद-विवाद थे। दोनों अहलकार थे। ईश्वर जाने दोनों ओर से क्या क्या वार चलते होंगे। उस समय उनका वार न चला, इनका चल गया होगा।

बटालवी साहब ने पंजाब में बैठकर अपना खुलासतुल्-तवारीख नामक ग्रन्थ लिखा था। वे शाहजहाँ और आलमगीर के समय में हुए थे। परन्तु आश्चर्य है कि उन्होंने भी टोडरमल की जाति, आयु और जन्म का सन्-संवत् आदि कुछ नहीं लिखा। हाँ, उनके गुणों के सम्बन्ध में एक बहुत बड़ा पृष्ठ अवश्य लिखा है जो प्रायः सत्यता और वास्तविकता के शब्दों से सुसज्जित है। उसमें वह कहते हैं कि राजा साहब साम्राज्य के रहस्यों के जानकार थे। शासन सम्बन्धी गूढ़ विषयों और हिसाब-किताब के अनुपम ज्ञाता थे। हिसाब जाँचने के कामों में बड़ी बड़ी बारीकियाँ निकालते थे। वजीर के कामों के नियम आदि, साम्राज्य के नियम, देश की सम्पन्नता, प्रजा की आबादी, दीवान के कार्यालय के नियम, बादशाह के अधिकारों के सिद्धान्त, राजकोष की उन्नति, मार्गों में विराजनेवाली शान्ति, सैनिकों के वेतन, परगनों के लगान आदि की व्यवस्था, जागीरदारों का वेतन, अमीरों के मन्सबों के सम्बन्ध के नियम आदि सब उन्हीं के स्मारक हैं और सब स्थानों में उन्हीं नियमों आदि के अनुसार काम होता है।

(१) उन्होंने परगनेवार प्रत्येक गाँव की जमा निश्चित की। (२) तनाबी जरीब स्थल तथा जल में घट बढ़ जाती थी और ५५ गज की होती थी। उन्होंने बाँस या नरसल की ६० गज की जरीब निश्चित की और बीच बीच में लोहे की कड़ियाँ डाल दीं जिसमें अन्तर न पड़े*। (३) उनकी सम्मति से सन् ९८२ हि० में समस्त प्रदेश बारह सूबों में विभक्त हुए और दस-साला या दशवार्षिक बन्दोबस्त हुआ। कुछ गाँवों का परगना, कुछ परगनों की सरकार और कुछ सरकारों का एक सूबा निश्चित हुआ। (४) रुपए के ४० दाम उन्होंने निश्चित किए†। परगने की शरह दाम के अनुसार दफ्तर में लिखी जाने लगी। (५) एक करोड़ दाम की आय की भूमि पर एक प्रधान कर्मचारी नियुक्त किया जिसका नाम करोड़ी रखा। (६) अमीरों के अधीन जो नौकर होते थे, उनके घोड़ों के दाग के लिये नियम निर्धारित किए। प्रायः लोग एक जगह का घोड़ा दो दो तीन तीन जगह दिखला देते थे। जब आवश्यकता होती थी, तब घोड़ों की कमी के कारण बहुत हर्ज होता था। इसमें कभी तो सवारों की धोखेबाजी होती थी और कभी स्वयं अमीर लोग भी धोखेबाजी करते थे। जब हाजिरी का समय आता था, तब तुरन्त नौकर रख लेते थे और लिफाफा चढ़ाकर हाजिरी दिलवा देते थे।

---

* एक बीघा ३६०० वर्ग शाहजहानी गज के बराबर होता था।

† मैंने दाम देखा है। वह तौल में एक तोले होता था और देखने में दिल्ली के पैसे के समान था। एक ओर साधारण रूप में अकबर का नाम और दूसरी ओर बहुत सुन्दर अक्षरों में "दाम" लिखा होता था।

इधर हाजिरी से उनकी छुट्टी हुई और उधर घर जाकर वे नौकरी से अलग कर दिए जाते थे। (७) बादशाही सेवकों की सात टोलियाँ नियत की थीं। सप्ताह के सात दिनों में से प्रत्येक दिन एक टोली में से बारी बारी से आदमी लिए जाते थे और वही लोग चौकी में हाजिर होते थे। (८) नित्य के वास्ते एक एक आदमी चौकी-नवीस नियुक्त हुआ था। चौकीवाले लोगों की हाजिरी लेना उसका काम था। निवेदनों आदि पर अथवा यों ही बादशाह की जो आज्ञाएँ प्रचलित होती थीं, वे आज्ञाएँ भी प्रचलित करना और यथा-स्थान पहुँचाना उसी का काम था। (९) सप्ताह के सात दिनों के लिये सात घटना-लेखक नियत हुए। उनका काम यह था कि दिन भर ड्योढ़ी पर बैठकर सब हाल लिखा करें (१०) अमीरों और खानों आदि के अतिरिक्त चार हजार यक्का सवार खास बादशाही रिकाब के लिये नियत किए। उन्हीं को अहदी भी कहते थे। अहदी शब्द इसी यक्का या एका का अनुवाद है। इन लोगों का अलग दारोगा भी नियत हुआ था। (११) कई हजार दास थे जिनमें से बहुत से युद्धों में से पकड़े हुए आए थे। वे सब लोग दासता से मुक्त हुए और चेले कहलाए। सोचा यह गया कि सभी लोग स्वतन्त्र हैं। उन्हें दास कहना उचित नहीं। तात्पर्य यह कि ऐसे सैंकड़ों नियम आदि बनाए कि कुछ अमीरों और वजीरों ने बहुत कुछ प्रयत्न किए और करते हैं, पर वे उनसे आगे नहीं निकल सकते। राजा टोडरमल के उपरान्त वकील का पद मिरजा अब्दुर्रहीम खानखानाँ को प्रदान किया गया था। उन्होंने भी उक्त पद तथा उसके कार्यों का बहुत अधिक उत्तमता के साथ निर्वाह किया जिसके

कारण वे भी बहुत प्रशंसनीय हुए। (१२) भारत में क्रय-विक्रय, देहात की जमाबंदी, माल विभाग की तहसील और नौकरों के वेतन आदि राजाओं में भी और बादशाहों में भी तंगा नामक सिक्के में होते थे। परन्तु सब लोग तंगे के स्थान पर पैसे दिया करते थे। जब चाँदी पर ठप्पा अंकित किया जाता था, तो वे चाँदी के तंगे कहलाते थे। वही चाँदी के तंगे एलचियों और डोमों आदि को पुरस्कार में दिए जाते थे। परन्तु सर्व-साधारण में उनका विशेष प्रचार नहीं था। वे चाँदी के भाव बाजार में बिक जाते थे। टोडरमल ने मन्सबदारों और सेवकों के वेतन में इन्हीं का प्रचार किया और नियम बना दिया कि तंगे की जगह देहात से रुपए वसूल हुआ करें। उसकी तौल ११ माशे रखी और एक रुपए के ४० दाम निश्चित किए। इसका सिद्धान्त यह था कि यदि ताँबे पर टकसाल का खर्च लगावें तो रुपए के पूरे ४० दाम पड़ते हैं। वही नौकरों को वेतन में मिलते थे। उसी के अनुसार देहातों, परगनों और कस्बों के दफ्तरों में सारी जमा लिखी जाती थी। इसका नाम नगद जमाबन्दी रखा। महसूल के सम्बन्ध में यह नियम निर्धारित किया कि जिस भूमि में वर्षा के जल से अनाज उत्पन्न होता हो, उसकी पैदावार में से आधा कृषक ले और आधा बादशाह ले। वर्षा की भूमि की उपज में एक चौथाई व्यय और उसके क्रय-विक्रय की लागत लगाकर अनाज में से एक तृतीयांश बादशाह को मिला करे। ऊख आदि उच्च कोटि की पैदावार मानी जाती है और उसके लिये सिंचाई, रखवाली और कटाई आदि में भी साधारण अनाजों की अपेक्षा अधिक व्यय पड़ता है। इसलिये उनमें से अवस्थानुसार

बादशाह को १/४, १/५, १/२ या १/३ अंश मिला करता था। शेष कृषक का अंश होता था। यह भी नियम था कि यदि नगद महसूल लिया जाय तो प्रत्येक पैदावार पर प्रति वर्ग बीघे पर लिया जाय। उसका नियम भी प्रत्येक उपज के अनुसार अलग अलग निश्चित था।

यहाँ यह भी बतला देना आवश्यक है कि इन नियमों के बहुत से अंश ख्वाजा शाह मन्सूर, मुजफ्फरखाँ और मीर फतह-उल्ला शीराजी आदि के भी निकाले हुए थे और निःसन्देह उन लोगों ने भी कागजों की छान-बीन और दफ्तरों की व्यवस्था में बहुत अधिक परिश्रम किया था। परन्तु यह भी भाग्य की बात है कि उनका कोई नाम भी नहीं जानता। जहाँ किसी अच्छे प्रबन्ध का उल्लेख होता है, वहीं टोडरमल का नाम पुकारा जाता है।

इतना सब कुछ होने पर भी अकबर के गुणों की पुस्तक में यह बात सोने के अक्षरों में लिखी जानी चाहिए कि राजा के अधिकार तथा पद आदि में निरन्तर उन्नति देख कर कुछ अमीरों ने इस बात की शिकायत की और यह भी कहा कि हुजूर ने एक हिन्दू को मुसलमानों पर इतना अधिकार दे रखा है। यह उचित नहीं है। परन्तु शुद्ध-हृदय बादशाह ने स्पष्ट कह दिया कि तुम सभी लोगों की सरकारों में कोई न कोई हिन्दू मुन्शी है ही। यदि हमने भी अपने यहाँ एक हिन्दू रख लिया तो तुम लोग क्यों बुरा मानते हो ?

राजा मानसिंह *

अकबर के दरबार की चित्रशाला में इस कुलीन राजा का चित्र सोने के पानी से खींचा जाना चाहिए; क्योंकि सबसे पहले इसके बाप-दादा का शुभ सहयोग अकबर का सहायक और साथी हुआ था जिसके कारण भारत में तैमूरी वंश की जड़ जमी। बल्कि यह कहना चाहिए कि उन्होंने अपनी संगति तथा सहायता से अकबर को अपनाया और प्रेम करना सिखलाया; और समस्त संसार को दिखला दिया कि राजपूतों का जो यह प्रण चला आता है कि सिर चला जाय, पर बात न जाय, उसका यदि मूर्त्तिमान् स्वरूप देखना चाहो तो इन लोगों को देख लो। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि इन बात के पक्के वीरों ने उस तुर्क बादशाह का साथ देने में अपने प्राणों को प्राण नहीं समझा। उन्होंने अपनी प्रतिष्ठा तथा कीर्त्ति को उसकी प्रतिष्ठा तथा कीर्त्ति के साथ मिलाकर एक कर दिया। उनकी मिलनसारी तथा निष्ठा ने अकबर के मन पर यह बात अंकित कर दी कि भारतवर्ष के लोगों में इतनी अधिक सज्जनता होती है कि यदि विदेशी तथा विजातीय लोग भी उनके साथ प्रेम और सहानु-भूति करें तो वे ऐसा कुछ करते हैं कि अपनी जाति की तो बात ही क्या है, अपने सगे भाई तक को भूल जाते हैं। ये प्रसिद्ध और कीर्त्तिशाली कछवाहा वंश के थे और सैंकड़ों वर्षों से खान्दानी राजा चले आते थे। इनके साथ समस्त कछवाहा जाति

---

* बिहारीमल, पूरनमल, रूपसी, आसकरण और जगमल पाँच भाई थे। उन्हीं में से जगमल के पुत्र ये महानसिंह थे।

अकबर के लिये प्राण देने पर उद्यत हो गई। साथ ही इनके कारण राजपूतों के और भी अनेक वंश आकर अकबर के साथ मिल गए। परन्तु अकबर के प्रेमपूर्ण व्यवहार का जादू भी इन लोगों पर ऐसा चल गया कि वे सब आज तक चगताई वंश के प्रेम का दम भरते हैं।

अकबर के राज्यारोहण के पहले वर्ष अर्थात् सन् ९६३ हि० में अकबर के दरबार से मजनूँखाँ काकशाल नारनौल पर हाकिम होकर गया। वहाँ शेर शाह का दास हाजीखाँ इस मजनूँखाँ पर चढ़ आया। उस समय कछवाहा वंश का दीपक प्रज्वलित करनेवाला राजा भारामल, जो आमेर का राजा था, हाजीखाँ के साथ था। मजनूँखाँ के होश-हवास जाते रहे। वह घिर गए और उनकी दशा बहुत ही शोचनीय हो गई। वृद्ध खान्दानी राजा शील तथा मनुष्यत्व के गुणों का कोषाध्यक्ष था। वह बात का ऊँच-नीच तथा आदि-अन्त भली भाँति समझता था। उसने सन्धि का प्रबन्ध करके मजनूँखाँ को घेरे से निकलवाया और आदर तथा प्रतिष्ठापूर्वक बादशाह के दरबार को रवाना कर दिया। यही राजा भारामल हैं जो राजा भगवानदास के पिता और मानसिंह के दादा थे।

मजनूँखाँ ने दरबार में पहुँच कर राजा की सुशीलता, प्रेम, सद्व्यवहार, उदारता तथा कुलीनता की अकबर के सामने बहुत अधिक प्रशंसा की। दरबार से एक अमीर यह आज्ञापत्र दे कर भेजा गया कि राजा भारामल दरबार में उपस्थित हों। राजा उचित सामग्री के सहित दरबार में उपस्थित हुआ। यह वही शुभ समय था जब कि अकबर हेमूँ-वाले युद्ध में विजयी होकर

दिल्ली आया हुआ था। उसने राजा की बहुत अधिक प्रतिष्ठा तथा आतिथ्य किया।

जिस दिन राजा, उनके पुत्र, भाई-बन्द और साथी आदि खिलअत तथा पुरस्कार आदि लेकर दिल्ली से विदा हो रहे थे, उस दिन बादशाह हाथी पर सवार होकर बाहर निकले थे और इनका तमाशा देख रहे थे। हाथी मस्त था और मस्ती में झूम झूम कर कभी इधर और कभी उधर जाता था। लोग डर डर कर भागते थे। एक बार वह राजपूतों की ओर भी झुका। परन्तु वे अपने स्थान से नहीं टले, उसी प्रकार वहाँ खड़े रहे। बादशाह को उनकी यह वीरता बहुत अच्छी लगी। उसने राजा भारामल की ओर प्रवृत्त होकर कहा कि तुम्हें हम निहाल कर देना चाहते हैं। वह समय बहुत ही समीप जान पड़ता है, जब कि तुम्हारा आदर और सम्मान अधिकाधिक होता जायगा। उसी दिन से अकबर राजपूतों का और विशेषतः भारामल तथा उनके सम्बन्धियों आदि का आदर-सम्मान करने लगा और उनकी वीरता उसके हृदय पर नित्य प्रति अधिक अंकित होती गई। अकबर ने मिरजा शफाउद्दीन हुसैन (विशेष देखो मिरजा का प्रकरण) को मेवात का हाकिम बनाकर भेजा था। उसने इधर-उधर फैलना आरम्भ कर दिया था। अन्त में उसने आमेर लेना चाहा। राजा भारामल का एक उपद्रवी भाई, जो रियासत का हिस्सेदार था, जाकर मिरजा से मिल गया और उसके साथ होकर आमेर पर लश्कर ले गया। घर में फूट थी, इसलिये मिरजा की जीत हो गई और वह राजा के कुछ भाई-बन्दों को अपने साथ लेकर लौट आया।

सन् ९६८ हि० में बादशाह अजमेर की जियारत करने के लिये चले। मार्ग में एक अमीर ने निवेदन किया कि राजा भारामल पर, जो दिल्ली में दरबार में सेवा में उपस्थित हुआ था, मिरजा ने बहुत अत्याचार किया है। वह बेचारा पर्वतों में घुस कर निर्वाह कर रहा है। बहुत उदार तथा सुशील खान्दानी राजा है। यदि उसपर श्रीमान् का अनुग्रह होगा तो वह बड़ी बड़ी सेवाएँ करेगा। बादशाह ने आज्ञा दी कि तुम स्वयं जाकर उसको ले आओ। वह लेने गया। राजा स्वयं तो नहीं आया, परन्तु उसने निवेदनपत्र के साथ कुछ उपहार भेज दिया। हाँ, उसका भाई उस अमीर के साथ चला आया। अकबर ने कहा कि यह बात ठीक नहीं है। वह स्वयं आवे। राजा भारामल ने अपने ज्येष्ठ पुत्र भगवानदास को अपने परिवार तथा बाल-बच्चों के पास छोड़ा और स्वयं साँगानेर के पड़ाव पर आकर उपस्थित हुआ। बादशाह ने बहुत प्रेमपूर्वक उसे धैर्य दिलाया और दरबार के विशेष अमीरों में सम्मिलित कर लिया। राजा के हृदय में भी ऐसा प्रेम और निष्ठा उत्पन्न हुई कि धीरे-धीरे अपने सम्बन्धियों में और उसमें कोई अन्तर न रह गया। थोड़े दिनों बाद राजा भगवानदास और मानसिंह भी आ गए। अकबर ने इन दोनों को साथ ले लिया और भगवानदास को विदा कर दिया। परन्तु मन मिल गये थे। चलते समय अकबर ने कह दिया था कि शीघ्र आना और सब व्यवस्था करके आना, जिसमें फिर जाने का कष्ट न करना पड़े।

धर्म की दीवार और जातीय बन्धनों का किला इतना अधिक दृढ़ होता है कि जल्दी किसी के तोड़े टूटता नहीं है। परन्तु

राजनीति सम्बन्धी नियम इन सबमें बहुत प्रबल होते हैं। जब उनकी आवश्यकता की नदी चढ़ाव पर आती है, तब वह सबको बहा ले जाती है। अकबर को बादशाह तहमास्प का कथन स्मरण था (देखो पहला भाग, पृ० ११८)। उसने इस वंश की अच्छी नीयत और प्रेमपूर्ण व्यवहार देख कर सोचा कि यदि इन लोगों के साथ नातेदारी हो जाय, तो बहुत ही अच्छा हो। यह बात सम्भव भी जान पड़ी। उसने एक बहुत अच्छे अवसर पर यह प्रसंग छेड़ा और उसमें उसे सफलता भी हुई। सन ९६९ हि० में राजा भारामल की कन्या, जो मानसिंह की फूफी थी, अकबर की बेगमों में सम्मिलित होकर महल का सिंगार हो गई।

यद्यपि राजा भारामल आदि महाराणा प्रताप के सम्बन्धी थे, तथापि जब सन ९७४ हि० में चित्तौड़ पर आक्रमण हुआ, तब राजा भगवानदास भी अकबर के साथ थे और हर मोरचे पर कभी ढाल की तरह आगे रहते थे और कभी पीछे। (देखो परिशिष्ट)

सन् ९७९ हि० में जब अकबर स्वयं सेना लेकर गुजरात पर चढ़ाई करने गया, तब राजा मानसिंह भी अपने पिता के साथ उस चढ़ाई पर गया था। उस समय चढ़ती जवानी थी, मन में उमंग थी, वीरता का आवेश था। राजपूती रक्त कहता होगा कि चंगेजी तुर्क, जिनका मन विजय के कारण बढ़ा हुआ है, इस समय वाग से वाग मिलाए हुए हैं। हमारा पैर इनसे आगे बढ़ा रहे। इन्हें भी दिखला दो कि राजपूती तलवार की काट क्या रंग दिखलाती है। क्या मार्ग में और क्या युद्ध-क्षेत्र में, जहाँ अकबर का जरा सा संकेत पाता था, सिपाहियों का एक

दस्ता ले लेता था और इस तरह जा पड़ता था, जिस तरह शिकार पर शेर जाते हैं।

इसी बीच में खानआजम अहमदाबाद में घिर गए और चगताई शाहजादे दक्खिन की सेनाओं को साथ लेकर उसके चारों ओर छा गए। अकबर ने आगरे से कूच किया। एक महीने का मार्ग सात दिनों में चलकर वह अहमदाबाद जा पहुँचा। राजा भगवानदास और कुँवर मानसिंह भी इस अभियान में साथ थे। वे लोग बादशाह के चारों ओर इस प्रकार प्राण निछावर करते फिरते थे, जिस प्रकार दीपक के चारों ओर पतिंगे।

चगताई इतिहास-लेखकों ने अपने इतिहासों में इस घटना का उल्लेख नहीं किया है; परन्तु टाड साहब ने इस सम्बन्ध में अपने राजस्थान के इतिहास में जो कुछ लिखा है, वह वास्तव में देखने योग्य है।

राजा मानसिंह शोलापुर का युद्ध जीतकर लौटा आ रहा था। मार्ग में उदयपुर की सीमा से होकर जा रहा था। सुना कि महाराणा प्रताप कोमलमेर में हैं। एक दूत भेजा और लिखा कि आप से मिलने को बहुत जी चाहता है। राणा ने उदयसागर तक आकर उसका स्वागत किया और उसी झील के तट पर भोजन की व्यवस्था की। जब भोजन का समय हुआ, तब राणा स्वयं तो नहीं आए, पर उनके पुत्र ने आकर कहा कि राणा जी के सिर में दर्द है; वह न आवेंगे। आप भोजन पर बैठें और भली भाँति भोजन कर लें। राजा मानसिंह ने कहला भेजा कि उन्हें जो रोग है, वह सम्भवतः वही रोग है जो मैं समझा हूँ।

परन्तु यह असाध्य रोग है। जब वही अतिथियों के आगे थाल न रक्खेंगे तो और कौन रक्खेगा !

राणा ने कहला भेजा कि मुझे इसका बहुत दुःख है। परन्तु मैं क्या करूँ। जिस व्यक्ति ने अपनी बहन तुर्क के साथ व्याह दी, उसने उसके साथ भोजन भी अवश्य किया होगा। राजा मानसिंह अपनी मूर्खता पर पछताया कि मैं यहाँ क्यों आया। उसे बहुत अधिक हार्दिक दुःख हुआ। उसने चावल के कुछ दाने लेकर अन्नपूर्णा देवी को चढ़ाए और फिर वही दाने अपनी पगड़ी में रख लिए। चलते समय कहा कि हमने तुम्हारी प्रतिष्ठा की रक्षा करने के लिये अपनी प्रतिष्ठा नष्ट की और बहनें-बेटियाँ तुर्कों को दीं। यदि तुम्हारी यही इच्छा है कि सदा भय में रहो तो तुम्हें अधिकार है; सदा उसी दशा में पड़े रहो; क्योंकि अब इस देश में तुम्हारा निर्वाह नहीं होगा।

इतना कह कर राजा मानसिंह घोड़े पर चढ़ा और राणा की ओर घूमकर बोला (उस समय तक राणा भी वहाँ आ पहुँचे थे) राणा जी, यदि मैं तुम्हारा अभिमान न नष्ट करूँ तो मेरा नाम मान नहीं। राणा प्रताप ने कहा—हम से बराबर मिलते रहना। पास से किसी निर्लज्ज ने यह भी कहा कि अपने फूफा (अकबर) को भी साथ लाना। मानसिंह के चले जाने पर राणा प्रताप ने उस भूमि को, जिस पर मानसिंह के लिये भोजन परोसा गया था, खुदवाया और गंगा-जल से धुलवाकर पवित्र किया। सब सरदारों ने स्नान करके वस्त्र बदले। मानों सब उसके आने से अपवित्र हो गए थे। इन सब बातों की सारी खबर अकबर को पहुँची। उसको बहुत क्रोध आया। उसे सबसे अधिक ध्यान

इस बात का था कि कहीं ऐसा न हो कि राजपूत लोग मन में ग्लानि उत्पन्न होने के कारण फिर बिगड़ उठें; और जिस धार्मिक द्वेष की आग को मैंने सौ सौ पानी से धीमा किया है, वह कहीं फिर न सुलग उठे।

उच्चाशय बादशाह के मन में यह विचार काँटे की तरह खटक रहा था। इस घटना के थोड़े ही दिनों बाद राणा प्रताप पर चढ़ाई हुई। सलीम (जहाँगीर) के नाम सेनापतित्व निश्चित हुआ। मानसिंह और महावतखाँ साथ हुए, जिसमें शाहजादा इन लोगों के परामर्श के अनुसार काम करे। बादशाही लश्कर ने राणा के देश में प्रवेश किया, और छोटे छोटे विघ्नों को ठोकरें मारता हुआ आगे बढ़ा। राणा एक ऐसे बेढब स्थान पर लश्कर लेकर अड़ा जिसे पर्वत-मालाओं तथा घाटियों के पेचों ने बहुत दृढ़ कर रखा था। वह स्थान कोमलमेर से रकनाथ तक (उत्तर से दक्षिण) ८० मील लम्बा और मीरपुर से स्तोला तक (पूर्व-पश्चिम) इतना ही चौड़ा था। इस प्रदेश में पर्वतों, जंगलों, घाटियों और नदियों के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। राजधानी को उत्तर, दक्षिण, पश्चिम जिधर से जाओ, ऐसा संकीर्ण मार्ग है कि मानों घाटी ही है। चारों ओर ऊँचे ऊँचे पहाड़ चले जाते हैं। चौड़ाई इतनी कि दो गाड़ियाँ भी साथ साथ नहीं चल सकतीं। घाटी में से निकलो तो प्राकृतिक दीवारें खड़ी हैं। (इन्हें कोल कहते हैं।) कुछ स्थानों पर ऐसे ऐसे मैदान भी आ जाते हैं कि बड़ा लश्कर छावनी डाल दे। हल्दी घाटी का मैदान ऐसा ही है। वह पहाड़ की गरदन पर स्थित है, इसलिये बहुत बेढब स्थान है। पहाड़ के ऊपर और नीचे राजपूतों की सेनाएँ जमी

हुई थीं। टीलों के ऊपर और पहाड़ों की चोटियों पर भील लोग, जो इन पत्थरों के असली कीड़े हैं, तीर कमान लिए ताक में बैठे थे कि जब अवसर आवे, तब शत्रुओं पर भारी-भारी पत्थर लुढ़कावें।

घाटी के मुख पर राणा प्रताप मेवाड़ के सूरमा सिपाहियों को लिए डटा था। वहाँ घमासान युद्ध हुआ और बहुत अधिक रक्त-पात हुआ। कई राजा और ठाकुर प्राणों का मोह छोड़कर आ पहुँचे और उन लोगों ने राणा के चरणों पर रक्त की नदियाँ बहाईं। उस युद्ध-क्षेत्र में राणा केसरिया झंडा लिए प्रस्तुत था। वह चाहता था कि किसी तरह राजा मानसिंह दिखलाई पड़े तो उससे दो-दो हाथ हों। उसके मन का यह अरमान तो नहीं निकला, परन्तु जहाँ सलीम (जहाँगीर) हाथी पर खड़ा लश्कर को लड़ा रहा था, वहाँ जा पहुँचा और ऐसा वे-कलेजे होकर पहुँचा कि यदि हौदे के लोहे के तख्ते जहाँगीर की प्राण-रक्षा के लिये ढाल न बन जाते तो वह उसके बरछे का शिकार ही हो जाता। प्रताप जिस घोड़े पर सवार था, उसका नाम चेटक था। उस स्वामिनिष्ठ घोड़े ने अपने स्वामी का खूब साथ दिया। इस युद्ध के जो चित्र मेवाड़ के इतिहास में सम्मिलित हैं, उनमें घोड़े का एक पैर भी सलीम के हाथी पर रखा हुआ है। उसमें उसका सवार प्रताप अपने शत्रु पर भाला मार रहा है। महावत के पास अपनी रक्षा का कोई साधन नहीं था, इसलिये वह मारा गया॥ मस्त हाथी विना महावत के न रुक सका और ऐसा भागा कि सलीम के प्राण बच गए। यहाँ बड़ा भारी युद्ध हुआ। नमक-हलाल मुगल अपने शाहजादे की रक्षा करने के लिये और मेवाड़

के सूरमा अपने सेनापति की सहायता करने के लिये ऐसे जान तोड़ कर लड़े कि हल्दी घाटी के पत्थर ईंगुर हो गए। राणा प्रताप को सात घाव लगे। शत्रु उस पर बाज की तरह गिरते थे, परन्तु वह अपना राजसी छत्र नहीं छोड़ता था। वह तीन बार शत्रुओं के समूह में से निकला। एक बार वह दब कर मरना ही चाहता था कि झाला का सरदार दौड़ा और राणा को इस विपत्ति से निकाल कर ले गया। वह राज्य का छत्र एक हाथ में और झंडा दूसरे हाथ में लेकर एक अच्छे सुरक्षित स्थान की ओर भागा। यद्यपि वह स्वयं अपने साथियों सहित मारा गया, परन्तु राणा वहाँ से निकल गया। तभी से उसके वंशज मेवाड़ का राजसी झंडा अपने हाथ में रखते हैं और दरबार में राणा की दाहिनी ओर स्थान पाते हैं। उन्हें राजा की उपाधि मिली है और उनका धौंसा किले के फाटक तक बजता है। यह प्रतिष्ठा दूसरों को प्राप्त नहीं है। यह वीरता ऐसे शत्रुओं के सामने क्या काम कर सकती थी जिसके साथ असंख्य तोपें और रहकले आग बरसाते थे और ऊँटों के रिसाले आँधी की तरह दौड़ते थे। राणा की सेना परास्त हुई। बाईस हजार राजपूतों में से केवल आठ हजार जीवित बचे। यद्यपि सेना हार गई, परन्तु उस समय बच कर निकल जाना ही बहुत बड़ी विजय थी। राणा अपने चेटक नामक घोड़े पर सवार होकर भागा। दो मुगलों ने उसके पीछे घोड़े डाले। वे लोग उसके पीछे-पीछे घोड़े लगाए चले जाते थे कि मार्ग में एक नदी आई जो पहाड़ से निकली थी। यदि चेटक उस समय जरा भी झिझकता तो वहाँ फँस ही जाता। वह भी घायल हो रहा था, परन्तु फिर भी

हिरन की तरह चारों पुतलियाँ झाड़ कर नाली पर से उड़ गया। उस समय सन्ध्या हो गई थी। उसके नाल पत्थरों से टकरा कर पतिंगे उड़ाते थे। उसने समझा कि शत्रु आ पहुँचे। इतने में किसी ने पीछे से राणा को उन्हीं की बोली में पुकारा—'हे नीले घोड़े के सवार!' प्रताप ने मुड़ कर देखा तो उसका भाई शक्तसिंह था। वह किसी घराऊ झगड़े के कारण भाई से रुष्ट होकर निकल गया था और अकबर के यहाँ नौकर हो गया था। वह भी इस युद्ध में उपस्थित था। जब उसने देखा कि मेरी जाति का नाम उज्वल करनेवाला और मेरे बाप-दादा की कीर्त्ति बढ़ानेवाला मेरा भाई इस प्रकार प्राण लेकर भाग रहा है, और दो मुगल उसके पीछे पड़े हैं, तो उसका सारा क्रोध जाता रहा। रक्त के आवेश में वह उनके पीछे हो लिया। अवसर पाकर उसने दोनों मुगलों के प्राण ले लिए और भाई से जा मिला। बहुत दिनों के बिछुड़े हुए दोनों भाई खूब अच्छी तरह गले मिले। वहाँ चेटक बैठ गया। शक्त ने उसे दूसरा घोड़ा दिया जिसका नाम अंगारक था। जब राणा ने चेटक पर की जीन आदि उतार कर उस दूसरे घोड़े पर रखी, तब दुःख है कि चेटक के प्राण निकल गए। उसी स्थान पर उसका एक स्मारक बना हुआ है। उदय-पुर की बस्ती में प्रायः आधे घर ऐसे होंगे जिनकी भीतों पर इस दृश्य के चित्र अंकित हैं। शक्त ने चलते समय अपने भाई राणा से हँस कर कहा—'भइया, जब कोई प्राण लेकर भागता है, तब उसके मन की कैसी अवस्था होती है।' इसके उपरान्त उसे इस बात का भी विश्वास दिलाया कि जब मैं अवसर पाऊँगा, तब फिर आऊँगा।

शकत वहाँ से एक मुगल के घोड़े पर चढ़ा और सलीम के लश्कर में आया। लोगों से कहा कि प्रताप ने अपने दोनों पीछा करनेवालों को मार डाला। उनकी सहायता करने में मेरा भी घोड़ा मारा गया। विवश होकर मैं उन्हीं में से एक के घोड़े पर यहाँ आया हूँ। लश्कर में किसी को उसकी इस बात का विश्वास नहीं हुआ। अन्त में सलीम ने उसे बुलाकर इस बात का वचन दिया कि यदि तुम सच बात कह दोगे, तो मैं तुम्हें क्षमा कर दूँगा। सीधे-सादे सैनिक ने सब बातें ठीक-ठीक बतला दीं। सलीम ने भी अपने वचन का पालन किया; परन्तु उससे इतना कह दिया कि अब तुम अपने भाई के पास जाकर उसे भेंट दो, अर्थात् उसकी अधीनता स्वीकृत करो और वहीं रहो। इसलिये वह वहाँ से अपने देश चला गया।

राणा कीका मेवाड़ देश में राज्य करता था और भारत के प्रसिद्ध राजाओं में से था। जब अकबर ने चित्तौड़ मार लिया, तब राणा ने हिन्दवारा पहाड़ पर कोकंडा का किला बनाया। उसी में रहकर वह कोमलमेर देश पर राज्य करता था। उक्त स्थान अरावली पर्वत में उदयपुर से उत्तर चालिस मील की दूरी पर स्थित है।

भारतवर्ष के बहुत से राजे अकबर की अधीनता स्वीकृत कर चुके थे अथवा उसके अनुकूल हो गए थे। परन्तु राणा की अकड़ अभी तक बनी हुई थी। इसलिये सन् ९८३ हि० में अकबर लश्कर सहित अजमेर गया। जब दरगाह एक पड़ाव रह गई, तब वह वहाँ से पैदल ही चल पड़ा। वहाँ जियारत करके भेंट आदि चढ़ाई। एक दिन मानसिंह को भी अपने साथ दरगाह में ले

गया। वहाँ बहुत देर तक प्रार्थना करता रहा। और अमीर आदि भी वहाँ उपस्थित थे। मन्त्रणा और परामर्श आदि होने पर, चढ़ाई करना निश्चित हुआ। मानसिंह को पुत्र की उपाधि मिली और साथ ही सेनापतित्व भी प्रदत्त हुआ। पाँच हजार अच्छे चुने हुए सवार, जिनमें से कुछ तो खास बादशाह के थे और कुछ अमीरों के अधीन थे, उसकी सहायता के लिये दिए गए। कई अमीर, जिनके साथ अच्छी और अनुभवी सेनाएँ थीं, साथ किए गए। सब लोग राणा की रियासत की ओर चले। लश्कर-रूपी नद ने उदयपुर में प्रवेश किया। कुँवर ने माँडलगढ़ में ठहर कर लश्कर की व्यवस्था की। वहाँ से चलकर वह हल्दी घाटी होता हुआ कोकंडा पर जा पहुँचा जहाँ राणा रहता था।

राणा अपनी राजधानी से निकला। बहुत से सूरमा राजपूत, जो अपनी जातीयता की रक्षा के लिये पहाड़ों पर बैठे हुए थे, तलवारें खींचकर साथ निकले। मानसिंह अभी नवयुवक ही था, परन्तु उसने अकबर के साथ रहकर इस शतरंज के नक्शे बहुत खेले थे। कुछ पुराने और अनुभवी सरदारों को साथ लेकर वह सेना के मध्य में स्थित हुआ। कई परे बाँधकर उसने अपने लश्कर-रूपी किले को बहुत दृढ़ कर लिया और अच्छे-अच्छे वीर चुन कर प्रत्येक सेना के लिये कुमक तैयार रखी।

मुल्ला साहब जहाद के विचार से इस युद्ध में सम्मिलित हुए थे। उन्होंने शब्दों के पानी और रंग से युद्ध-क्षेत्र का ऐसा चित्र खींचा है कि उसके सामने इतिहास-लेखकों की कलम टूट गई। इस अवसर पर आजाद उसी का फोटो लेकर अकबरी दरबार में

सजाता है। राणा प्रायः तीन हजार सवारों को साथ लेकर बादल की तरह पहाड़ से उठा और अपनी सेना को दो भागों में विभक्त करके लाया। एक सेना ने बादशाही हरावल से टक्कर खाई। पहाड़ी देश था। उसमें गड्ढों, झाड़ियों और पहाड़ियों के एच-पेच बहुत थे। हरावल और उसके सहायक सैनिक गटपट हो गए। भगोड़ी लड़ाई लड़नी पड़ी। बादशाही लश्कर के राजपूत बाईं ओर से इस प्रकार भागे जिस प्रकार बकरियाँ भागती हैं। वे हरावल को लाँघ-फलाँग कर दाहिनी ओर की सेना में घुस आए। हाँ, बारहावाले सैयदों तथा कुछ आन रखनेवाले वीरों ने वह काम किए कि कदाचित् ही रुस्तम से हुए हों। दोनों पक्षों के बहुत से आदमी मारे गए। जिस सेना में राणा था, उसने घाटी से निकलते ही काजीखाँ बदख्शी पर आक्रमण किया जो मुहाने को रोक कर खड़ा था। उन्हें उठाकर उलटते पलटते सेना के मध्य भाग में फेंक दिया। सीकरीवाले शेखजादे तो इकट्ठे ही भागे। शेख इब्राहीम, शेख मन्सूर (शेख सलीम के लड़के इब्राहीम के दामाद) उनके सरदार थे। भागने में एक तीर उनके चूतड़ों पर बैठा। बहुत दिनों तक उसका कष्ट भोगते रहे। काजीखाँ यद्यपि मुल्ला थे, तथापि वीरतापूर्वक अड़े। हाथ पर एक तलवार खाई जिससे अँगूठा कट गया। परन्तु ठहरने का स्थान नहीं था। काजी साहब पलायन की हदीसों का पाठ करते हुए सेना के मध्य भाग में आ गए।

कुरान की एक आयत का आशय है कि जो व्यक्ति जहाद से भागता है, उसकी तोबा स्वीकृत नहीं होती। बड़े-बड़े विद्वान् भी मुँह से तो यही कहते हैं, परन्तु जब स्वयं भागने लगते हैं, तब

पैगम्बरों को भी आगे रखकर भागते हैं। जो लोग पहले आक्रमण में भागे थे, उन्होंने तो पाँच छः कोस तक दम ही न लिया। बीच में एक नदी पड़ती थी। उसे भी पार कर गए। लड़ाई तराजू हो रही थी। इतने में एक सरदार घोड़ा उड़ाता और नगाड़ा बजाता हुआ आ पहुँचा। उसने सूचना दी कि बादशाही सेना जल्दी-जल्दी बढ़ती हुई चली आ रही है। बादशाही लश्कर का बहुत तेज शोर सुनाई पड़ता था। इस मन्त्र ने बहुत बड़ा प्रभाव किया। जो लोग भाग रहे थे, वे थम गए और जो भाग गए थे, वे लौट पड़े। बस शत्रु के पैर उखड़ गए।

ग्वालियर-वाला राजा राम शाह राणा के आगे आगे भागा आता था। उसनें मानसिंह के राजपूतों पर ऐसी विलक्षण विपत्ति ढाई कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता। ये वह लोग थे जो हरावल के बाएँ से भागकर आए थे। लेकिन ऐसे बद-हवास भागे हुए आए थे कि बहुत सम्भव था कि वे आसफखाँ को भी भगोड़ा बना देते। दाहिनी ओर बारहा के सैयद थे; उन्होंने आकर उन्हीं लोगों में शरण ली। यदि बारहावाले सैयद लोग दृढ़तापूर्वक न अड़ते और हरावल की भाँति नोक दुम भागते तो बदनामी में कोई बात बाकी न रह जाती। राणा ने आकर अपने हाथियों को बादशाही हाथियों से ला टकराया। उनमें से दो मस्त हाथी चूर-चूर हो गए। बादशाही पीलवान हुसैनखाँ उस समय मानसिंह के आगे बैठा हुआ था। जब वह हाथी से नीचे गिर पड़ा, तब मानसिंह स्वयं महावत की जगह आ बैठा और ऐसी दृढ़ता से बैठा कि उससे बढ़कर और दृढ़ता क्या होगी! ईश्वर को धन्यवाद है कि सेना का मध्य भाग अपने स्थान पर स्थित रहा।

इधर से जो राम शाह भागा था, उसने अपने तीन पुत्रों के रक्त से अपने नाम पर का कलंक धोया।

शत्रु की ओर से पीलवान ने रामप्रसाद नामक हाथी को चढ़ाया। यह बहुत बड़ा और जंगी हाथी था। उसने बहुत से वीरों को अपने पैरों तले रौंदकर सेना की पंक्तियों को टुकड़े-टुकड़े कर दिया। इधर से बादशाही फौजदार कमालखाँ ने गजराज हाथी को सामने किया। दोनों देर तक आपस में एक दूसरे को रेलते-ढकेलते रहे। बादशाही हाथी दब निकला था, परन्तु इतने में अकबर के प्रताप ने रामप्रसाद के महावत को मौत की गोली मार दी। वह इस धक्कम-धक्के में जमीन पर आ गिरा। बादशाही पीलवान, वाह रे तेरी फुरती! झट कूदकर राणा के हाथी पर जा बैठा और वह काम किया जो किसी से न हो सके। इतने में एक्के के सवार, जो मानसिंह की अरदली में थे, राणा की सेना पर टूट पड़े। उस समय ऐसा घमासान युद्ध हुआ कि मानसिंह का सेनापतित्व उसी दिन लोगों को मालूम हो गया। मुल्ला शीरीं ने सच कहा है—

که هندو میزند شمشیر اسلام —

अर्थात्—हिन्दू भी इस्लाम की ओर से तलवार चलाते हैं।

राणा के साथ मानसिंह का सामना हुआ! ऊपर तले कई वार हुए। अन्त में राणा न ठहर सका। वह मानसिंह के हाथ से घायल हुआ और सबको वहीं छोड़कर भागा। उसकी सेना में खलबली मच गई और उसके सरदार भाग-भाग कर उसकी ओर हटने लगे। अन्त में सब लोग पहाड़ों में घुस गए। ग्रीष्म ऋतु अग्नि की वर्षा कर रही थी। लू चल रही थी। जमीन और

आस्मान दोनों तँदूर की तरह धधक रहे थे। सिर में भेजे पानी हो गए थे। प्रातःकाल से दो-पहर तक लोग लड़ते रहे। पाँच सौ आदमी खेत रहे जिनमें से १२० मुसलमान और वाकी हिन्दू थे। घायल गाजियों की संख्या तीन सौ से अधिक थी। लोग यह समझते थे कि राणा भागनेवाला नहीं है। यहीं किसी पहाड़ी के पीछे छिप रहा है। वह फिर लौटकर आवेगा। इसलिये किसी ने उसका पीछा नहीं किया। सब लोग अपने खेमों में लौट आए और घायलों की मरहम-पट्टी में लग गए।

दूसरे दिन वहाँ से कूच किया। मैदान में होते हुए और प्रत्येक व्यक्ति की कारगुजारी देखते हुए घाटी से निकल कर कोकंडे में आए। राणा ने कुछ विश्वसनीय और निष्ठ व्यक्तियों को महलों पर नियुक्त किया। कुछ तो वे लोग और कुछ मन्दिरों में से निकल आए। कुल बीस आदमी होंगे। वे अपने प्राण देकर कीर्त्तिशाली हो गए। हिन्दुओं में यह प्राचीन प्रथा थी कि जब नगर खाली करते थे, तब अपनी प्रतिष्ठा और कीर्त्ति की रक्षा के लिये अवश्य प्राण दे देते थे। पता लगा कि राणा रात के समय छापा मारने का भी विचार कर रहा है; क्योंकि नगर के चारों ओर पत्थर चुन-चुन कर हाथों-हाथ ऐसी दीवार और खाई बना ली थी कि जिस परसे सवार घोड़ा न उड़ा सकें। मानसिंह ने सरदारों को एकत्र करके उन लोगों की सूचियाँ बनाईं जो युद्ध में निहत हुए थे; और जिनके घोड़े मारे गए थे, उनके भी नाम माँगे गए। सैयद महमूदखाँ बारहा ने कहा कि हमारा न तो कोई आदमी मरा और न घोड़ा मरा। केवल नाम लिखने-लिखाने से क्या लाभ। हाँ, अनाज की चिन्ता करो।

इस पहाड़ी प्रान्त में खेती बहुत कम होती है। अनाज घट गया था और रसद नहीं पहुँचती थी। फिर कमेटी हुई। ऐसे अवसरों पर प्रायः ऐसा ही हुआ करता है। एक-एक अमीर को एक-एक सरदार बनाकर यह निश्चित किया गया कि प्रत्येक सरदार बारी-बारी से अनाज की तलाश में निकला करे। वे लोग पहाड़ों पर चढ़ जाते थे। जहाँ कहीं अनाज के खत्ते या बस्ती की खबर पाते थे, वहाँ पहुँच जाते थे। अनाज समेटते थे और आदमियों को बाँध लाते थे। पशुओं के मांस पर निर्वाह करते थे। आम वहाँ इतनी अधिकता से होते थे कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता। लश्कर के कंगलों ने भोजन के स्थान पर भी वही आम खाए और बीमार होकर सारे लश्कर में गन्दगी फैला दी। वहाँ का एक-एक आम भी सवा-सवा सेर का होता था, जिसमें छोटी सी गुठली होती थी। परन्तु स्वाद चाहो तो खटास; मिठास कुछ भी नहीं।

बादशाह को भी इस युद्ध का बहुत अधिक ध्यान था। उसने डाक बैठाकर एक सरदार को भेजा कि जाकर युद्ध का समाचार ले आओ। यहाँ विजय हो चुकी थी। वह सरदार आया और यहाँ का समाचार जानकर दूसरे ही दिन विदा हो गया। सब की सेवाएँ स्वीकृत हुईं। इतना होने पर भी कुछ चुगली खानेवालों ने कह दिया कि युद्ध में विजय प्राप्त कर लेने के उपरान्त भी कुछ त्रुटि की गई। नहीं तो राणा जीवित पकड़ लिया जाता। बादशाह को भी यह बात कुछ ठीक जान पड़ी, परन्तु जाँच करने पर पता चला कि शैतानों ने व्यर्थ ही यह बात उड़ा दी थी।

सन् ९८९ हि० में मानसिंह से वह वीरता दिखलाई कि

भारतीय लोहे ने विलायती लोहे के जौहर मिटा दिए। बंगाल प्रदेश में अकबर के अमीरों ने विद्रोह किया। ये सब नमकहराम नए पुराने तुर्क और काबुली अफगान थे। उन्होंने सोचा कि बादशाह का विरोध करने के लिये जब तक हमारे पास कोई बादशाही हड्डी न होगी, तब तक हम विद्रोही कहलावेंगे। इसलिये उन लोगों ने मिरजा हकीम के पास निवेदनपत्र लिख कर भेजे। साथ ही उसके अमीरों के नाम भी पत्र और जबानी सँदेसे भेजे। उन सबका सारांश यह था कि आप हुमायूँ बादशाह की सन्तान हैं और समानता का अधिकार रखते हैं। यदि आप राजोचित साहस करके उधर से आवें तो आपके ये पुराने सेवक इधर से प्राण निछावर करने के लिये प्रस्तुत हैं। उसके पास भी हुमायूँ के समय के सेवक बल्कि बाबर के शासन-काल की खुरचन बाकी थी। सबसे पहले उसका शुभचिन्तक शादमान कोका था, जिसका पिता सुलेमान बेग अन्दजानी और दादा लुकमान बेग था, जो किसी समय बाबर बादशाह का बहुत बड़ा प्रेमपात्र था। इन लोभियों ने उक्त विचार को और भी चमका कर नवयुवक शाहजादे के सामने उपस्थित किया। उसने यह अवसर बहुत ही उपयुक्त समझा और पंजाब की ओर प्रस्थान किया। एक सरदार को कुछ सेना देकर आगे भेज दिया। वह पेशावर से बढ़कर अटक नदी के इस पार उतर आया। यूसुफखाँ (मिरजा अजीज का बड़ा भाई) वहाँ का जागीरदार था। उस दरिद्र ने बहुत ला-परवाही के साथ एक सरदार को भेज दिया। वह इस प्रकार आया कि सेना भी अपने साथ नहीं लाया। भला ऐसी दशा में वह शत्रु को क्या रोक सकता था! जरा अकबर के

प्रताप की करामात देखिए कि वह एक दिन उधर से शिकार करने के लिये निकला। शत्रु उधर के जंगल और मैदान देख रहा था। मार्ग में दोनों मिल गए और तलवार चल गई। शत्रु घायल हो कर भाग निकला और पेशावर पहुँच कर मर गया। अकबर ने यूसुफखाँ को बुला लिया और मानसिंह को सेनापति नियुक्त करके भेज दिया।

अब देखिए, यदि वंश के पुराने-पुराने सेवकों से चित्त दुःखी न हो तो और क्या हो; और पराये आदमियों से कोई काम न ले, तो क्या करे? जिस समय बादशाह के भाई-बन्दों में से कोई विद्रोह करता था, उस समय अमीर लोग दोनों ओर देखते रहते थे। एक घर के कुछ आदमी इधर हो जाते थे और कुछ उधर हो जाते थे। दोनों ओर बात-चीत चलाए चलते थे। जब किसी एक पक्ष की जीत होती थी, तब दूसरे पक्षवाले भी उसी ओर जा मिलते थे। कुछ लज्जित सा रूप बनाकर सामने जाकर सलाम करते थे और कहते थे कि हुजूर, हम लोग तो इसी वंश में पले हुए हैं। हुमायूँ और बाबर बल्कि तैमूर के समस्त वंश में जो घर बिगड़ा, वह इसी प्रकार बिगड़ा। अकबर को शाह तहमास्प का उपदेश स्मरण था। जब उसने साम्राज्य सँभाला, तब राजपूतों को जोर दिया। वह विशेषतः ऐसे ही अवसरों पर उनसे तथा ईरानियों और बारहा के सैयदों से काम लेता था; क्योंकि वे भी बुखारावालों या अफगानों से मेल खानेवाले नहीं थे। ईरानी लोग बहुत स्वामिनिष्ठ और प्राण निछावर करनेवाले थे और साथ ही योग्यता के भी पुतले थे। और सैयदों की तो जाति ही तलवार की मालिक है। मानसिंह

ने अपनी जागीर स्यालकोट में आकर डेरा डाला। वहीं से वह सेना की व्यवस्था करने लगा। एक फुरतीले सरदार को सेना देकर आगे भेजा और कहा कि जाकर अटक के किले की व्यवस्था करो। राजा भगवानदास ने किले को दृढ़ किया। उधर जब मिरजा हकीम ने सुना कि मेरा भेजा हुआ सरदार मारा गया, तब उसने अपने कोका शादमान को अच्छी सेना के साथ भेजा। उसकी माँ ने मिरजा को झूला हिला-हिला कर पाला था। वह मिरजा के साथ खेल कर बड़ा हुआ था और वास्तव में बहुत साहसी युवक था। अफगानिस्तान में उसकी तलवार ने अच्छे जौहर दिखलाए थे और सरदारी का नाम उज्वल किया था। उसने आते ही झट किले को घेर लिया। मानसिंह भी रावलपिंडी तक पहुँच चुके थे। जब यह समाचार मिला, तब उसके हृदय में राजपूती रक्त उबल पड़ा। जब तक अटक उसकी दृष्टि के सामने नहीं आया, तब तक वह कहीं न अटका। शाद-मान निश्चिन्तता की नींद में पड़ा हुआ था। नगाड़े का शब्द सुन कर जागा। वह अपने डेरे से उठ कर बहुत साहसपूर्वक आकर सामने हुआ। कुँवर मानसिंह और शादमान दोनों ने साहस और सरदारी के अरमान निकाल दिए। मानसिंह के भाई सूरजसिंह ने ऐसे वीरतापूर्ण आक्रमण किए कि उसी के हाथ से शादमानखाँ घायल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा और मर गया।

जब मिरजा ने सुना कि शादमान इस संसार से उठ गया, तब उसे बहुत अधिक दुःख हुआ और वह लश्कर लेकर चला गया। पर अकबर की आज्ञा बराबर पहुँच रही थी कि घबराना

नहीं और मिरजा को मत रोकना। उसे आने देना। और जब तक हम न आवें, तब तक उस पर आक्रमण न कर बैठना।

इसमें बुद्धिमत्ता की बात यह थी कि अकबर जानता था कि यह अदूरदर्शी लड़का इन वीरों के सामने न ठहर सकेगा, अवश्य हार जायगा। और यदि यह भागा तो कहीं ऐसा न हो कि उसका जी छोटा हो जाय और वह सीधा तुर्किस्तान चला जाय। अब्दुल्लाखाँ इस अवसर को अपने लिये बहुत अच्छा समझेगा। यदि वह उधर से सेना लेकर आया, तो बात कुछ और ही हो जायगी। बस ये लोग पीछे हटते गए और वह बढ़ता-बढ़ता लाहौर तक चला आया। रावी के किनारे महदी कासिम खाँ के बाग में आ उतरा। राजा भगवानदास, कुँवर मानसिंह, सैयद हामिद बारहा और दरबार के कुछ दूसरे अमीर दरवाजे बन्द करके बैठ गए। अकबर के सँदेसे पहुँच रहे थे कि देखो, कहीं उस पर आक्रमण न कर बैठना। अभिप्राय यह था कि मैं भी लश्कर लेकर आ पहुँचूँ; तब अमीर लोग चारों ओर फैल जायँ और उसे घेर कर पकड़ लें, जिसमें सदा के लिये यह झगड़ा ही मिट जाय। शेर नगर में बन्द पड़े हुए तड़पते थे और रह-रह जाते थे, क्योंकि वे आज्ञा की श्रृंखलाओं से जकड़े हुए थे। फिर भी उन लोगों ने नगर और उसके आस-पास के सब स्थानों का बहुत ही अच्छा और दृढ़ प्रबन्ध कर लिया था। वे अपने-अपने मोरचों को सँभाले हुए बैठे थे; और मिरजा के आक्रमणों का दाँत खट्टे करनेवाला जवाब देते थे। समाचार मिला कि लाहौर के मुल्ला लोग उसे बुलाना चाहते हैं और काजी तथा मुफ्ती कागज के चूहे दौड़ा रहे हैं। इस

लिये बड़ी रोक-थाम से उनका प्रबन्ध किया। अकबर ने दिल्ली में यह समाचार सुना। वह साहस के घोड़े पर सवार हुआ और बाग उठाई।

मिरजा हकीम समझता था कि बादशाह उधर बंगाल के युद्ध में लगा हुआ है। देश खाली पड़ा है। उसने उक्त बाग में बीस दिन तक खूब आनन्द-मंगल किया। पर जब उसने सुना कि उधर नमकहरामों के काम बिगड़ते चले जाते हैं और अकबर सरहिन्द तक आ पहुँचा है, तब उसने नगर पर से घेरा उठा लिया। वह महदी कासिम खाँ के बाग से एक कोस और ऊपर चढ़ कर नदी के पार हुआ और गुजरात के इलाके में जलाल-पुर नामक स्थान में उसने चनाब नदी पार की। भेरे के पास झेलम उतरा और भेरे की ओर लौटा। फिर वहाँ से भी भागा और बेप नामक स्थान में सिन्ध नदी पार करके काबुल की ओर भागा। घाटियों पर घबराहट में उसके बहुत से आदमी बह गए। साथ ही सरहिन्द से अकबरी आज्ञा पहुँची कि उसका पीछा मत करना। वह अपने दरबार में मुसाहबों से बार-बार कहता था कि भाई कहाँ पैदा होता है! घबराकर भागा है। मार्ग में उसे अटक पार करना है। ऐसा न हो कि कोई दुर्घटना हो जाय।

अकबर की आज्ञा से कुँवर मानसिंह साधारण मार्ग से चल कर पेशावर पहुँचा। अकबर ने बादशाही लश्कर की व्यवस्था करके शाहजादा मुराद को काबुल की ओर भेजा, जिसमें वह वहाँ पहुँच कर काबुल की ठीक-ठीक व्यवस्था करे। बादशाही अमीर और पुराने अनुभवी सेनापति उसके साथ गए। पर उनमें

वही चलती तलवार सेना के हरावल का प्रधान बनाया गया। यह लश्कर आगे चला और स्वयं बादशाह अपने प्रताप का लश्कर लेकर उनके पीछे-पीछे उनकी रक्षा करता हुआ चला।

भारतवर्ष आजाद की मातृ-भूमि है। पर वह सत्य कहने से कभी न चूकेगा। भारत की मिट्टी में मनुष्य को साहस-हीन, काम-चोर, मुफ्तखोर और आराम-तलब बनाने में रामबाण का सा गुण है। यद्यपि दरबार के प्रायः अमीर ईरानी, तूरानी और अफगानों की हड्डी के थे, पर जब अकबर अटक के पास पहुँचा, तब उन अमीरों को बहुत दिनों तक भारत में रहने के कारण उस देश में एक बिलकुल ही नया संसार दिखाई देने लगा। वहाँ की भूमि की बिलकुल नई ही दशा थी। चारों ओर पहाड़, हर कदम पर जान जाने का डर, आदमी नए, जंगल के जानवर नए, पहनावे नए, बात नई, आवाज नई। आगे एक पड़ाव से दूसरा पड़ाव कठिन। उन्होंने यह भी सुन रखा था कि वहाँ खूनी बरफ पड़ती है जिससे उँगलियाँ बल्कि हाथ-पैर तक झड़ जाते हैं। लश्कर के लोग प्रायः भारतीय बल्कि हिन्दू थे, जिनके लिये अटक पार करना भी ठीक नहीं था। इसके सिवा चाहे विलायती हों और चाहे भारतीय, अब तो सबके घर यहीं थे। कुछ तो भारत के सुख और आनन्द याद आए और कुछ बाल-बच्चों का ध्यान आया। सभी यह चाहते थे कि इस विषय को जबानी बातों में लपेट कर सन्धि कर ली जाय और हम लोग लौट चलें। उन्होंने प्रार्थनाएँ और निवेदन करके अकबर को रास्ते पर लाना चाहा। पर उसकी यह सम्मति थी कि मिरजा हकीम ने हमें कई बार तंग किया है। यदि इस बार भी हम लोग इसी तरह लौट

जायँगे, तो कल फिर यही झगड़ा उठ खड़ा होगा। उसने यह भी सोचा होगा कि सेना के हृदय में इस प्रकार का भय बैठना ठीक नहीं है। वह इस बात का भी पता अवश्य लगाता होगा कि ये लोग इस देश की कठिनाइयों से घबराकर इस लड़ाई से बचना चाहते हैं या इनके हृदय में मिरजा हकीम के प्रेम ने घर किया है। शेख अब्बुलफजल को आज्ञा दी कि परामर्श के लिये सभा करो। उसमें हर एक आदमी जो कुछ कहे, वह लिखकर मेरे सामने उपस्थित करो। शेख ने हर एक का कथन और तर्क संक्षेप में लिखकर सेवा में उपस्थित किया। पर बादशाह के विचार पर उन सब बातों का कुछ भी प्रभाव न पड़ा। मानसिंह शाहजादे को लिए हुए आगे बढ़ा था। उसे बादशाह ने और आगे बढ़ा दिया; और आप लश्कर लेकर चल पड़ा। बरसात ने अटक का पुल न बाँधने दिया। स्वयं बादशाह और लश्कर के सब लोग नावों पर चढ़कर नदी के पार हो गए। भारी सामान अटक के किनारे छोड़ दिए और यों ही सेना लेकर आगे चल पड़े। साथ ही भाई के पास ऐसे सँदेसे भी भेजे जाते थे जिनसे उसका चित्त भी कुछ शान्त हो और वह कुछ डरे भी। बल्कि कुछ देर भी यही समझ कर की जा रही थी कि कहीं बादशाही लश्कर के दौड़ा-दौड़ पहुँचने से सन्धि और मेल का अवसर हाथ से न निकल जाय और नवयुवक भाई के प्राण व्यर्थ न जायँ। इसलिये अटक नदी पार करके मिरजा हकीम के नाम एक आज्ञापत्र भेजा। उसका सारांश यह था कि भारतवर्ष के विस्तृत देश में राजमुकुट धारण करनेवाले बहुत से राजा-महाराज थे। पर अब वह सारा देश

हमारे अधिकार में आ गया। बड़े-बड़े सरदारों ने सिर झुका दिए। तुम्हारे वंश के अमीर उन राजाओं और बादशाहों के स्थान पर बैठे हुए शासन कर रहे हैं। जब यहाँ की यह अवस्था है, तब इस सुख से भाई ही क्यों वंचित रहे ? पुराने समय के बड़े लोगों ने छोटे भाई को लड़के के स्थान पर बतलाया है, पर वास्तव में बात यह है कि लड़का तो और भी हो सकता है; पर भाई और नहीं हो सकता। अब तुम्हारी बुद्धि और समझ के लिये यही उपयुक्त है कि तुम इस अज्ञान की निद्रा छोड़कर जागो और हमें मिल कर प्रसन्न करो। अब इससे अधिक हमें अपने दर्शनों से वंचित न रखो।

मिरजा के यहाँ से कुछ तो जबानी सँदेसा आया और साथ में एक पत्र भी आया जिसमें अपने किए पर पश्चात्ताप प्रकट किया गया था और क्षमा माँगी गई थी। पर वह पत्र निराधार और नियम-विरुद्ध था। वहाँ से जो आदमी आया था, उसके साथ अकबर ने एक अमीर यहाँ से भेजा और कहलाया कि तुम्हारे अपराध की क्षमा तो इसी बात पर निर्भर है कि जो कुछ हुआ, उसके लिये पश्चात्ताप करो और लज्जित हो। भविष्य के लिये तुम जो कुछ प्रण करो, उसे शपथ की शृंखलाओं से दृढ़ करो; और जिस बहन का विवाह ख्वाजा हसन से करना ठीक किया है, उसे इधर भेज दो। मिरजा ने कहा कि मुझे और सब बातें तो सच्चे हृदय से स्वीकृत हैं, पर बहन को भेजने के लिये ख्वाजा हसन तैयार नहीं होता। वह उसे बदख्शाँ ले गया है। हाँ मैंने जो कुछ किया है, उसके लिये मुझे बहुत पश्चात्ताप है।

मिरजा के इस प्रकार निवेदन करने और सँदेसे भेजने से

अमीरों को उसका अपराध क्षमा करने की चर्चा चलाने का और भी अधिक अवसर मिला। यह भी पता चला कि कलीचखाँ और यूसुफखाँ कोका आदि बड़े-बड़े अमीरों के पास उन्हें अपनी ओर मिलाने के लिये मिरजा ने पत्र भेजे हैं। यद्यपि उन लोगों ने पत्र लानेवालों को वध तक का दंड दिया, पर फिर भी अकबर ने मन्त्रणा के लिये सभा की और अब्बुलफजल मन्त्री हुए। उस सभा के बीस सदस्य थे। सब की सम्मति का सारांश यही था कि मिरजा अपने किए पर पश्चात्ताप प्रकट करता है; और अपराध क्षमा करना बादशाह के अनुग्रह का नियम है, इसलिये उसका अपराध क्षमा किया जाय और देश भी उसी के पास छोड़ दिया जाय। सब लोग यहाँ से लौट चलें। शेख यद्यपि नए आए थे और अभी नौ दस बरस के ही नौकर थे, न तो उमर ने उनकी दाढी ही बढ़ाई थी और न उसे सफेद ही किया था, न वे कई पीढ़ियों के सेवक ही थे, पर फिर भी समय देख कर उसी के अनुसार बातें करना उनका सिद्धान्त था। इसलिये उन्होंने खूब जी खोल कर भाषण किया। उन्होंने कहा कि बादशाही लश्कर इतना सामान लेकर इतनी दूर तक आ पहुँचा है। स्वयं बादशाह उसके सिर पर उपस्थित हैं। कुछ ही पड़ाव आगे अभीष्ट स्थान है। खाली बातों पर, निराधार लेख पर, अज्ञात और अप्रसिद्ध आदमी के वकालत करने पर लौट चलना कहाँ की समझदारी है! और जरा पीछे घूमकर तो देखो। पंजाब का देश है। बरसात सिर पर है। नदियाँ चढ़ गई हैं। इस दशा में यह दुनियाँ भर का सामान साथ है। सैनिक सामग्री भी कम नहीं है। यहाँ से पीछे लौटना तो आगे बढ़ने से भी अधिक कठिन

है। हानि उठा कर लौटना और लाभ को छोड़ देना किसी प्रकार उचित नहीं है। फल पास आ गया है। उसे प्राप्त कर लो। अच्छी तरह दंड या शिक्षा देने के बाद क्षमा प्रकट करने में भी कोई हानि नहीं है। दरबार के अमीर इस लच्छेदार भाषण से अप्रसन्न हो गए। बहुत सी बातें हुई। अन्त में शेख ने कहा कि अच्छी बात है। हर आदमी अपनी-अपनी सम्मति बादशाह की सेवा में निवेदन कर दे। इस सेवक से जब तक वे कुछ न पूछेंगे, तब तक यह कुछ न बोलेगा। इस पर सब लोग उठ खड़े हुए।

इस सभा का कार्य-विवरण लिखा गया। दूसरे दिन शेख को ज्वर चढ़ आया। कार्य-विवरण बादशाह की सेवा में उपस्थित किया गया। बादशाह ने पूछा कि शेख कहाँ है और उसकी क्या सम्मति है? एक आदमी ने धृष्टता करके कहा कि वह बीमार है; पर उसकी सम्मति भी यही है। बादशाह बहुत दुःखी हुए। बोले कि हमारे सामने तो उसकी ऐसी सम्मति थी। वहाँ सभा में जाकर वह इन लोगों के साथ हो गया। शेख जब दूसरे दिन सेवा में गए तो देखते हैं कि बादशाह के तेवर बिगड़े हुए हैं। वह लिखते हैं कि मैं समझ गया कि दगाबाजों ने कोई पेच मारा। मैं अपने जीवन से दुःखी हो गया। अन्त में भाषण को प्रेरणा हुई और बात की जाँच हुई। तब कहीं चित्त शान्त हुआ। बादशाह ने बिगड़ कर कहा कि काबुल की सरदी और यात्रा की कठिनाइयाँ लोगों को डराती हैं। ये लोग आराम को देखते हैं। यह नहीं देखते कि इस समय क्या करना उचित है। अच्छा अमीर लोग यहीं रहें। हम यों ही अपने सेवकों को साथ लेकर चढ़ाई पर जायँगे। भला यह किस की मजाल

थी कि अकबर बादशाह तो आगे जाय और लोग वहीं रह जायँ? कूच पर कूच चलना आरम्भ किया। अब तक जो धीरे-धीरे आगे बढ़ते थे, उसका कारण यही था कि सँदेसे आदि भेजने से ही मिरज़ा ठीक मार्ग पर आ जाय। ऐसा न हो कि निराश होकर घबरा जाय और अचानक तुर्किस्तान को निकल जाय। निज़ामउद्दीन बख्शी से कहा कि तुम बहुत जल्दी जलालाबाद जाओ और शाहज़ादे के लश्कर में बैठ कर वहाँ के अमीरों से परामर्श करके सारा हाल लिखो। वह गए और बहुत जल्दी लौट आए। यह समाचार लाए कि यद्यपि मिरज़ा ज़बान से कहते हैं कि हम बहुत हैं, बहुत हैं, पर उनकी दशा यही कहती है कि विजय श्रीमान् के ही चरणों में है।

जो जो भारी चीज़ें थीं, वह सब पेशावर में छोड़ दी गईं। सलीम को राजा भगवानदास की रक्षा में लश्कर के साथ छोड़ा। बादशाही ठाठ-बाट भी छोड़ दिया और हलके होकर जल्दी-जल्दी आगे बढ़ने के लिये घोड़ों की बागें लीं। कुछ साहसहीन वहीं रह गए और कुछ मार्ग में से लौट गए।

अब मिरज़ा हकीम की कहानी सुनो। उपद्रव करनेवाले उससे यही कहते जाते थे कि अकबर इधर नहीं आवेगा। और यदि आवेगा भी तो इतना पीछा नहीं करेगा। पर जब उसने देखा कि अकबर और उसके सब साथी बिना पुल के ही अटक से पार हुए और लश्कर रूपी नदी की लहरें बराबर आगे को ही बढ़ती चली आती हैं, तब उसने नगर की कुंजियाँ वहाँ के बड़े-बूढ़ों को दे दीं और बाल-बच्चों को बदख्शाँ भेज दिया। धन-सम्पत्ति के सन्दूक और आवश्यक सामग्री लेकर आप बाहर

निकल गया। एक विचार यह था कि फकीर होकर तुर्किस्तान चला जाय। दरबारी लोग उसे सलाह देते थे कि यंगश के मार्ग से फिर भारत चल कर वहाँ उपद्रव करो। या अफगानिस्तान के पहाड़ों में सिर फोड़ते फिरो; और जैसी कि इधर की प्रथा है, लूट-मार करते रहो।

मिरजा इसी तरह आगा-पीछा कर रहा था कि इतने में उसे समाचार मिला कि बादशाह के अमीरों में से कोई इधर आने के लिये तैयार नहीं है। उपद्रवियों को मानों फिर एक दिया-सलाई मिल गई। उन्होंने फिर आग सुलगाई। उस समय जो अवस्था थी, वह उसे बतलाई और कहा कि बादशाह के लश्कर में सभी जातियों के लोग हैं। ईरानी, तूरानी, खुरासानी, अफगानी सभी हैं। इनमें से कोई आप पर तलवार न खींचेगा। जब सामना होगा, तब सभी लोग हम से आ मिलेंगे। हिन्दू और उनकी तलवार कभी विलायती तलवार के आगे नहीं चल सकती और उनका जी यहाँ को सरदी और बरफ के नाम से थर्राता है। उचित यही है कि वीरों की तरह साहस करके एक युद्ध करें। यदि मैदान हाथ आ गया तो ईश्वर की कृपा ही है। और यदि कुछ भी न हुआ, तो जो मार्ग हमारे सामने उपस्थित हैं, उन्हें तो कोई बन्द कर ही नहीं सकता।

कुछ तो इन लोगों ने उसकाया और कुछ बाबरी खून में धूआँ उठा। नवयुवक का विचार भी बदल गया। उसने कहा कि मैं बिना मरे-मारे देश हाथ से न जाने दूँगा। उसने सरदारों को यह कह कर आगे बढ़ाया कि नाशाक लश्कर समेटते चले जाओ; और जहाँ अवसर मिले, बादशाही लश्कर पर हाथ

साफ करते जाओ। अफगानिस्तान सरीखे देश में इस प्रकार लश्कर इकट्ठा करना और पहाड़ों के पीछे से शिकार मारते जाना कोई वहुत वड़ी वात नहीं है। वे लोग आगे चले। पीछे मिरजा ने भी साहस के झंडे पर फरहरा चढ़ाया। वादशाही लश्कर का ताँता वँधा हुआ था। इन्होंने जहाँ पाया, पहाड़ियों के पीछे से निकल-निकल कर हाथ मारना आरम्भ किया, पर डाकुओं की तरह। हाँ फरीदूँखाँ ने मानसिंह के लश्कर के पिछले भाग पर अच्छा धावा किया। उसने वादशाही खजाना लूट लिया और सरदारों को पकड़ लिया। डाक-चौकी का प्रधान अधिकारी दौरा करता हुआ वादशाह के लश्कर से मानसिंह के लश्कर तक आता-जाता था। वह उस समय पहुँचा, जव कि वहीर लुट रही थी। वह उन्हीं पैरों भागा।

यह वह समय था जव कि कुँवर मानसिंह अपने साथ नवयुवक शाहजादा मुराद को लिए हुए खुर्द कावुल तक, जो कावुल से सात कोस इधर था, जा पहुँचा था। उधर वादशाह जलालावाद से वढ़ कर सुरखाव नामक स्थान पर मानसिंह से पन्द्रह कोस इधर पहुँच चुके थे। मिरजा की दुर्दशा और अपने लश्कर के अच्छी तरह वढ़ने के समाचार वरावर चले आते थे। अचानक समाचारों का आना विलकुल वन्द हो गया। पर डाक-चौकी के हरकारे वरावर समाचार ला रहे थे। उनसे पता लगने पर डाक के अफसर हाजी मुहम्मद अहदी ने आकर निवेदन किया कि वादशाही सेना परास्त हो गई। अफगानों ने मार्ग वन्द कर दिया है। अकवर को वड़ी चिन्ता हुई। इतने में डाक-चौकी के अफसर ने आकर वड़ी घवराहट के साथ समाचार

दिया; पर केवल इतना ही कि लड़ाई हुई और बादशाही लश्कर हार गया। तुरन्त मन्त्रणा के लिये सभा बैठी। पहले इस विषय पर वाद-विवाद हुआ कि समाचारों का आना क्यों बन्द है। इसी में बात-चीत बहुत बढ़ गई। अकबर ने कहा कि यदि हमारा लश्कर हार जाता तो वह इतना बड़ा था और अन्तर भी इतना थोड़ा, केवल पन्द्रह कोस का था कि उनमें से सैंकड़ों लूटे-मारे हुए लोग अब तक यहाँ आ जाते। एक ही आदमी आया और फिर समाचारों का आना बिलकुल बन्द हो गया। इसका क्या अर्थ है ? यह समाचार ठीक नहीं है। विचार करने के योग्य दूसरी बात यह है कि अब क्या करना चाहिए। कुछ लोगों ने कहा कि उलटे पैरों लौट जाना चाहिए। जो बादशाही लश्कर पीछे आ रहा है, उसे और पूरी सामग्री साथ लेकर यहाँ आना चाहिए और इसके लिये उपद्रवियों को पूरा-पूरा दंड देना चाहिए। इस पर यह आपत्ति हुई कि यदि बादशाह ने एक पैर भी पीछे हटाया तो फिर लाहौर तक ठहरने के लिये जगह न मिलेगी। सारी हवा बिगड़ जायगी। मिरजा का साहस एक से हजार हो जायगा। हमारे लश्कर के लोगों के जी छोटे हो जायँगे। अफगानों के कुत्ते और बिल्लियाँ शेर बन कर तुम्हारे सिपाहियों को फाड़ खायँगे। देश अफगानी है। देखो, हमारी शक्ति के तीन टुकड़े हो गए। एक सेना अटक के किनारे पड़ी है। दूसरी पेशावर में है और तीसरी खुर्द काबुल में पहुँच चुकी है। तीन जगह लड़ाई आ पड़ी। एक सम्मति यह भी थी कि यहीं ठहरना चाहिए और जो लश्कर पीछे आ रहा है, उसकी प्रतीक्षा करनी चाहिए। इसमें यह झगड़ा निकला कि

इस प्रकार यहाँ चुपचाप बैठना भी पीछे हटने से कम नहीं है। यदि बादशाह कुछ सरदारों के साथ बीच में घिर गए तो भी कठिनता होगी। बादशाह का मिजाज पहचाननेवाले बोल उठे कि ईश्वर पर भरोसा करके आगे बढ़े चलो। यद्यपि बादशाह के साथ जान निछावर करनेवालों की संख्या कम है, तो भी उनका बल अधिक है; क्योंकि वे अनुभवी योद्धा और जान हथेली पर रख कर लड़नेवाले हैं और साथ ही सच्चे हृदय से स्वामी पर निष्ठा रखनेवाले हैं। यदि मिरजा हकीम ने लश्कर को रोका भी होगा, तो बादशाही धौंसे का शब्द सुनते ही छिन्न-भिन्न होकर हट जायगा। यही सम्मति ठीक ठहरी और सब लोग आगे बढ़े।

समाचारों के बन्द होने का कारण केवल यही था कि मिरजा का मामा फरीदूँ उपद्रव करता हुआ पहाड़ के पीछे-पीछे चला आता था। उसने अपने बाहुओं में इतना बल नहीं देखा कि इन शेरों के साथ सामने होकर लड़े। इसलिये वह सेना के पीछे से आकर चँदावल पर गिरा। भला बहीर की बिसात ही क्या! सब लोग भागने लगे। साहसी सैनिक लौटकर पीछे आए। पर लूटने के लिये आनेवाले अफगान भागने में ही विजय से बढ़कर सफलता समझते थे। वे पहाड़ों में भाग गए। बादशाह ने कई लाख का खजाना भेजा था जो कलीचखाँ के संरक्षण में था, और वह भी सेना के पिछले भाग में था। इस भागा-भाग में शत्रुओं का हाथ उस पर पड़ गया। वे लोग खजाने के ऊँट भी घसीट ले गए। उसी अवस्था में डाक-चौकी का अफसर वहाँ जा पहुँचा। बहीर को भागते हुए देखकर वह पीछे हटा और बादशाह के पास समाचार ले गया। साहसी बादशाह अपने

अमीरों को साथ लिए हुए बागें उठाए चला जाता था। हर कदम पर साहस उसके घोड़े को चाबुक और हौसला एड़ लगाता चलता था। बादशाह उस समय सुरखाब और जगदलक नामक स्थानों के बीच में था। वहीं विजय का सु-समाचार पहुँचा। बादशाह ने तुरन्त घोड़े पर से उतरकर जमीन पर सिर रख दिया और देर तक ईश्वर को धन्यवाद देने का आनन्द लूटता रहा।

अब युद्ध-क्षेत्र की अवस्था भी सुनने के योग्य है। यद्यपि बादशाही खजाना लूटने के कारण मिरजा का अभिमान बढ़ गया था, पर उसका दिल घटा जाता था। वह दिन की लड़ाई से घबरा गया था और रात के समय छापा मारना चाहता था। मानसिंह सेना लिए तैयार था और ईश्वर से मनाता था कि किसी प्रकार शत्रु मैदान में सामने आवे। उधर वह साहस-हीन और कायर पैदल सैनिक एकत्र किए जाता था और मेल-मिलाप के उद्देश्य से लश्कर के अमीरों के नाम चिट्ठियों के चूहे दौड़ाता था। वह चाहता था कि बादशाह के मन में इन अमीरों की ओर से कुछ सन्देह और खुटका उत्पन्न हो जाय। बादशाही सेनापति शाहजादा मुराद को अपने साथ लिए हुए खुर्द काबुल नामक स्थान पर पड़ा था। मिरजा सामने पहाड़ पर था। एक रात को बहुत चहल-पहल दिखाई पड़ी। रात को सामने बहुत से स्थानों पर आग जलती हुई दिखाई दी। भारतीय सैनिक देखकर चकित रह गए। सोचने लगे कि यह शब-बरात की रात है या दीवाली की धूम-धाम है। उन्होंने अपने सब प्रबन्ध ऐसे पक्के कर लिए कि यदि शत्रु रात के समय छापा मारे तो पछताकर पीछे हटे। प्रातःकाल के प्रकाश ने आकर युद्ध का सँदेसा पहुँचाया। मिरजा

एक घाटी से सेना लेकर निकला और युद्ध आरम्भ हुआ। नवयुवक सेनापति एक पहाड़ी पर खड़ा हुआ पछता रहा था कि हाय, यहाँ मैदान न हुआ। हरावल ने बढ़कर टक्कर मारी। बहुत कुछ हत्या और रक्तपात हुआ। मिरज़ा भी खूब जान तोड़कर लड़ा। वह भी समझ चुका था कि यदि मैं दाल खाने-वाले भारतवासियों के सामने से भागा तो काला मुँह लेकर कहाँ जाऊँगा। उधर मानसिंह को भी राजपूत के नाम की लज्जा थी। खूब बढ़ बढ़कर तलवारें मारीं और ऐसी वीरता दिखलाई कि अन्त में दाल ने गोश्त को दबा लिया। मिरज़ा मैदान छोड़कर भाग गए। इस युद्ध में हरावल के साहस ने ऐसा काम किया कि लश्कर के और लोगों की वीरता दिखलाने की कामना मन की मन में ही रह गई।

दूसरे दिन प्रातःकाल का समय था। मिरज़ा का मामा फरीदूँ खाँ फिर सेना लेकर प्रकट हुआ। मोहरे पर मानसिंह की ही सेना थी। म्यान से तलवारें निकलीं और कमानों में से तीर चले। बन्दूकों ने आग उगली, पर तोपें अपना हौसला मन में ही लिए खड़ी थीं, क्योंकि वह प्रदेश पहाड़ी था। जगह-जगह लड़ाई छिड़ गई। काबुली वीर यद्यपि शेर थे, पर ये लोग भी कोई दाल-भात का कौर तो थे ही नहीं कि वे इनको निगल जाते। रेल-पेल हो रही थी। कहीं ये लोग चढ़ जाते थे, कहीं वे लोग बढ़ आते थे। मानसिंह एक पहाड़ी पर खड़ा देख रहा था। जिधर बढ़ने का अवसर देखता था, उधर सेना को आगे बढ़ाता था। जिधर जगह नहीं पाता था, उधर से हटा लेता था। कठिनता यह थी कि वहाँ की जमीन ऊबड़-खाबड़ थी, जिससे

कोई ठीक और निश्चित व्यवस्था नहीं होने पाती थी। अचानक शत्रु जोरों से बढ़ आया। हरावल की सेना अपनी छाती को ढाल बनाकर आगे हुई। पर लड़ाई बहुत ही पास और सटकर हो रही थी। कुछ लोग तो प्राण देकर धन्य हुए और कुछ लोगों ने पीछे हट जाना ही उचित समझा। सेनापति ताड़ गया कि मेरी सेना ने रंग बदला। वह तड़प उठा। अपने भाई को उसने अपने पास से अलग किया। तलवार चलानेवाले सूरमा और सरदार राजपूत उसके आस-पास जमे हुए थे। उन्हें भी आज्ञा दी और अवसर देख देखकर सहायता के लिये सेनाएँ भेजना आरम्भ किया। गज-नालें भरी तैयार थीं। हाथियों को रेला और तोपों को महताब दिखाई जिससे जंगल गूँज उठा और पहाड़ धूआँधार हो गए। वे हाथी खास बादशाह के साथ रहनेवालों में से थे। शेरों के शिकार के लिये सधे हुए थे। वे बादलों की तरह पहाड़ियों पर उड़ने लगे। यह विपत्ति देखकर अफगानों के बढ़े हुए दिल पीछे हटे और थोड़ी ही देर में उनके पैर उखड़ गए। निशानची ने निशान फेंका और सब लोग मैदान छोड़कर भाग गए। मिरजा ने चाहा था कि यदि सैनिक लोग अपने प्राणों को प्रिय समझकर पीछे हट गए हैं, तो मैं ही प्रतिष्ठा और सम्मान पर अपने प्राण निछावर कर दूँ। पर थोड़े से शुभचिन्तकों ने आकर उसे घेर लिया। मिरजा ने झुँझलाकर उन्हें पीछे हटा दिया और आगे बढ़कर आक्रमण करना चाहा। पर मुहम्मद अली उसके घोड़े की बाग पकड़कर घोड़े से लिपट गया और बोला कि पहले मेरे प्राण ले लो। फिर तुम्हें अधिकार है; जो चाहो सो करो। तात्पर्य यह कि इस प्रकार मिरजा भी वहाँ से भाग गए।

सूरमा राजपूतों ने बड़ा साका किया। वीरों ने बहुत अच्छे-अच्छे काम करके दिखलाए। भागते हुए शत्रुओं के पीछे घोड़े उठाए। तलवारें खींच लीं और दूर तक मारते और ललकारते हुए चले गए। फिर भी जैसा पीछा करना चाहिए था और जैसा पीछा वे करना चाहते थे, वैसा न हो सका। उनके मन का हौसला मन में ही रह गया। वे लोग यह भी सोचते थे कि कहीं ऐसा न हो कि मिरजा किसी टीले के पीछे से चक्कर मार कर दूसरी ओर निकल आवे और सेना के पिछले भाग पर आक्रमण कर बैठे। कुछ बहादुर घोड़े बढ़ाते हुए ऐसे गए कि कई कोस आगे बढ़कर उन्होंने मिरजा को जा लिया। उस समय उसने अपने प्राण बचाने में ही सब से बड़ी जीत समझी। सेनापति विजय के धौंसे बजाता हुआ काबुल जा पहुँचा। अकबर भी पीछे-पीछे चला आता था। उस दिन बुतखाक नामक स्थान पर उसका डेरा था। मानसिंह सरदारों को साथ लिए हुए पहुँचे और उन्होंने सफल होकर विजय की बधाई दी। बादशाह ने काबुल में पहुँच कर फिर वह देश मिरजा हकीम को प्रदान किया और पेशावर तथा सीमा प्रान्त का प्रबन्ध और अधिकार कुँवर मानसिंह को सौंप दिया और अटक के किनारे किला बनवाया। उस नवयुवक हिन्दू राजा ने अफगानों के साथ जो अच्छा मेल-जोल पैदा किया, इसके लिये उसकी योग्यता की प्रशंसा न तो जबान से हो सकती है और न कलम से। सीमा प्रान्त के अफगानों का भी उन्होंने ऐसा प्रबन्ध किया कि विद्रोह की गरदनें ढीली हो गईं।

सन् ९९३ हि० में उस समय की और भावी बातों पर अच्छी तरह विचार करके यह परामर्श हुआ कि कछवाहा वंश के

साथ साम्राज्य के उत्तराधिकारी का सम्बन्ध अधिक और दृढ़ कर दिया जाय। राजा मानसिंह की बहन से विवाह निश्चित हुआ। इस विवाह में जो धूम-धाम और सजावट आदि हुई थी, उसका विवरण कहीं लिखा हुआ नहीं है। पर यदि यह विवरण कहीं लिखा हुआ होता तो उसकी एक पुस्तक ही बन जाती। मुल्ला साहब ने संक्षिप्त रूप में लिखा है कि सलीम की अवस्था सोलह बरस की थी। बादशाह दरबार के अमीरों को साथ लेकर आप ब्याहने चढ़े। विवाह की मजलिस में काजी, मुफ्ती और अनेक मुसलमान सज्जन उपस्थित हुए। निकाह पढ़ा गया, दो करोड़ तिंगे का महर बाँधा (अर्थात् दो करोड़ तिंगे दुलहिन को उपहार और स्त्री-धन के रूप में दिए गए)। फेरे भी हुए। हिंदुओं की हवन आदि क्रियाएँ भी हुईं। दुलहिन के घर से दुलहे के घर तक रास्ते भर नालकी पर से अशरफियाँ निछावर करते हुए लाए। लड़की के पिता राजा भगवानदास ने कई तबेले, घोड़े और सौ हाथी दिए। साथ में खुतनी हब्शी चरकस और भारतीय सैंकड़ों दास और दासियाँ दीं। दुलहिन के गहनों का तो कहना ही क्या है! बरतन तक सोने-चाँदी के और जड़ाऊ थे। अनेक प्रकार के वस्त्रों के सैकड़ों सन्दूक भरे हुए थे। दहेज में फर्श आदि और दूसरे पदार्थ भी इतने थे कि न उनकी गिनती थी और न सीमा। अमीरों में से भी हर एक को उसकी योग्यता तथा मर्यादा आदि के अनुसार खिलअतें और ईरानी, तुरकी, ताजी आदि घोड़े दिए, जिन पर सुनहली और रुपहली जीनें और साज आदि थे।

काबुल से समाचार आ रहे थे कि मुहम्मद हकीम मिरजा

को मद्य-पान चौपट कर रहा है। सन् ९९४ हि० में इसी मद्य-पान ने उसके प्राण ही ले लिए। अकबर ने कुँवर मानसिंह को इसी लिये पहले से वहाँ की दीवार के नीचे ही नियुक्त कर रखा था। आज्ञा पहुँची कि तुरन्त सेना लेकर काबुल में जा बैठो। यह भी पता चल गया था कि मिरजा हकीम के मामा फरीदूँखाँ और जो दूसरे दरबारी तथा सेवक उसके पास रहते थे, वही उसे अधिक बहकाया करते थे। अब उनमें से कुछ लोगों को तो यह भय हुआ कि ईश्वर जाने, अकबर के दरबार से हमारे साथ कैसा व्यवहार हो; और कुछ लोगों में आपस में ही लड़ाई-झगड़े होने लग गए थे। इसलिये वे लोग मिरजा के बच्चों को अपने साथ लेकर तुर्किस्तान में अब्दुल्लाखाँ उजबक के पास जाने को तैयार हो गए। अकबर ने अपने दो पुराने और ऐसे सेवकों को भेजा जो पीढ़ियों से इस वंश की सेवा कर रहे थे। आज्ञा-पत्र भेजकर उन सब लोगों को दिलासे दिए और पीछे-पीछे आप भी पंजाब की ओर आगे बढ़ा। उधर मानसिंह के अटक पार होते ही दल के दल अफगान सलाम करने के लिये उसकी सेवा में उपस्थित होने लगे। उसने काबुल पहुँच कर शासन और व्यवस्था की वह योग्यता दिखलाई, जो उसे अपने पूर्वजों से सैंकड़ों वर्ष के शासन से उत्तराधिकार में मिली थी। उसके मेल-मिलाप, अनुग्रह और सद्व्यवहार आदि ने काबुलवालों के हृदय को अपने हाथ में कर लिया। दो बरस पहले जो सद्भाव थे, उन्होंने उसका समर्थन किया। मिरजा ने मरने से पहले अकबर के पास एक निवेदन-पत्र भेजा था, जिसमें अपने किए हुए अपराधों के लिये क्षमा माँगी थी। साथ ही अपने

दोनों बच्चों, बहन बख्तउन्निसा और उसके लड़के मिरजा वाली को दरबार में भेजने के विचार से जलालाबाद भेज दिया था। उनमें से मिरजा का अनाथ लड़का अफरासियाव ग्यारह वरस का, कैकबाद चार वरस का और उसका भाञ्जा वाली भी छोटी ही अवस्था का था। उपद्रव करनेवाले फरीदूँखाँ आदि अपने दुष्ट विचारों में ही भटक रहे थे। मानसिंह ने मेल-मिलाप की बातें करके सब लोगों को ठीक मार्ग पर लाकर नीति और चातुरी के बन्धन में बाँध लिया। अपने लड़के जगतसिंह को वहाँ छोड़ा और आप उन सब लोगों को लेकर चल पड़ा। रावलपिंडी पहुँच कर अकबर के सिंहासन का चुम्बन किया और सबको सेवा में उपस्थित किया। अकबर ने बहुत उदारतापूर्वक सब व्यवहार किया। ६६ हजार रुपए पारितोषिक में दिए। सब की अवस्था और मर्यादा के अनुसार जागीरें और वृत्तियाँ आदि नियत करके प्रेम का बीज बोया। उदार-हृदय अकबर ने सीमा प्रान्त के यूसुफजई आदि इलाके कुँवर को दे दिए और काबुल में राजा भगवानदास को बैठाया। वहाँ राजा को पुराने बल्कि वंशगत रोग ने पागल कर दिया। कुँवर ने तुरन्त जाकर राजा का स्थान लिया और वहाँ राज्य करना आरम्भ किया। कुँवर ने अपने इस शासन में यह काम किया कि यूसुफ-जई के पहाड़ी इलाके में अफरीदी आदि जो अफगानी जत्थे उपद्रव की आग जला रहे थे, उन्हें देश से निकाल दिया। इस बीच में अकबर अटक के किनारे-किनारे इधर-उधर घूमता फिरता था। कभी शिकार खेलता था और कभी अटक के किले के कारखाने में तोपें ढलने का तमाशा देखता था और उसमें सुन्दर

सुन्दर आविष्कार करता था। ये खेल-तमाशे भी नीति से खाली नहीं रहे। यूसुफजई के सरदारों की व्यवस्था जम गई। काबुल का प्रबन्ध हो गया। सब अदूरदर्शी अफगान अपने-अपने स्थान पर बैठ गए। देश का स्वामी स्वयं उपस्थित है। सब से बड़ी बात यह हुई कि जो अब्दुल्लाखाँ उजबक यह समझ रहा था कि काबुल का शिकार अब मैंने मारा, वह अकबर की इन सफलताओं और सीमा पर होनेवाली कार्रवाइयों से डर गया। उसने सोचा कि कहीं ऐसा न हो कि मेरे पैतृक देश पर ही कोई आपत्ति आवे। इसलिये उसने राजोचित भेंट आदि के साथ अपना राजदूत भेजा और उसके हाथ सन्धिपत्र भी भेज दिया।

सन् ९९५ हि० में मानसिंह की बहन के घर लड़का पैदा हुआ। बादशाह ने उसका नाम खुसरो रखा। आजाद की बुद्धि तो संसार की दुष्टता और उपद्रव की वृत्ति देखकर चकरा रही है। इसी लाहौर नगर में वह बालक उत्पन्न हुआ था। यहीं छठी की खुशियाँ मनाई गई थीं और बधाइयाँ बजी थीं। यहीं बालक नवयुवक होकर पिता से विद्रोही हुआ और पकड़ा जाकर इसी लाहौर नगर में आया। जहाँगीरी नियमों के अनुसार गले में तलवार लटक रही थी। सिर झुकाए हुए था और थर-थर काँपता था। दरबार में अपने पिता के सामने खड़ा था। आज न बाप है और न बेटा। सब बातें कहानी हो गईं।

जिस समय अकबर की चातुरी और ईश्वरदत्त बुद्धिमत्ता का वर्णन हो, उस समय मानसिंह की योग्यता को भी न भूलना चाहिए। वह नवयुवक था। अवस्था उसकी थोड़ी थी और काबुल जैसा देश था, जहाँ उद्दंड मुल्लाओं और जंगली मुसलमानों

का सब प्रकार से पूरा-पूरा अधिकार था और मानसिंह उन लोगों पर शासन करता था। वह बरस भर से अधिक वहाँ रहा और बहुत तपाक से शासन करता था। केवल राजपूत सरदार और राजपूत सेना ही उसके अधिकार में नहीं थी, बल्कि हजारों तुर्क, अफगानी और भारतीय उसके साथ थे। क्या गरमी और क्या जाड़ा, बरफीले पहाड़ पर शेर की तरह दौड़ता फिरता था। जहाँ कोई बात बिगड़ती थी, तुरन्त उसका सुधार करता था।

सन् ९९५ हि० में राजा भगवानदास को बादशाह के अन्तःपुर और महलों का प्रबन्ध सौंपा गया। और यह सेवा प्रायः इन्हीं के सपुर्द रहती थी। यात्रा में अन्तःपुर की सवारियों का प्रबन्ध सदा यही किया करते थे। मरियम मकानी की सवारी की व्यवस्था भी यही करते थे। अफगानिस्तान से शिकायतें पहुँचीं कि राजपूत लोग इस देश के निवासियों पर अत्याचार करते हैं। इसलिये कुँवर मानसिंह को बिहार का हाकिम बनाकर भेज दिया। बंगाल में अफगानों की कमीनी और उद्दंड खुरचन बाकी थी। जिन दिनों मुगलों ने विद्रोह किया था, उन दिनों वे भी निकम्मे नहीं बैठे थे। उन्होंने फत्तू जाट को अपना सरदार बनाया और सारे उड़ीसा देश तथा दामोदर नद के तट के सब नगरों पर अधिकार कर लिया। कुँवर मानसिंह ने वहाँ पहुँचकर प्रबन्ध करना आरम्भ किया। कई बरस पहले कुछ नमक-हराम अमीरों ने बंगाल देश में मुसलमान विद्वानों और शेखों से फतवा या धार्मिक व्यवस्था लिखवाकर लोगों में यह प्रसिद्ध कर दिया था कि बादशाह धर्मभ्रष्ट हो गया है; और उन्होंने तलवारें खींचकर जगह-जगह विद्रोह के झंडे

खड़े कर दिए थे। अब उनकी गरदनें सैनिक रक्तपात की सहायता से तोड़ी गईं। पर उनमें से कुछ लोग अब भी ऐसे बचे हुए थे जो जमींदारों की छाया में सिर छिपाए हुए बैठे थे। वे लोग जब अवसर पाते थे, तब उपद्रव करते थे। मानसिंह ने उनके मार्ग बन्द किए। राजा पूरनमल कन्धौरिया एक बहुत बड़ा और विशाल किला बनाकर उसमें बैठे हुए थे और समझते थे कि हम लंका के कोट में बैठे हैं। उन्हें तलवार के घाट पर उतारकर सीधा किया। लूट-मार में बहुत से खजाने और मालखाने हाथ आए। अपने भाई के लिये उसकी लड़की ली। सन्धि के समय भेंट और उपहार में तथा विदाई के समय दहेज में सब कुछ पाया। संग्राम को लोहे की चोट से दबाया। आनन्द चरदा पर भी चढ़ गया। उससे भी अधीनता स्वीकृत करा के बहुत से उपहार आदि लिए। अनेक अद्भुत और सुन्दर पदार्थों के साथ ५४ हाथी दरबार में भेजे।

सन् ९९७ हि० में अकबर का मन काश्मीर की सैर की हवा में लहलहाया। राजा भगवानदास को लाहौर का प्रबन्ध सौंप कर प्रस्थान किया। यहाँ राजा टोडरमल का स्वर्गवास हुआ। राजा भगवानदास बादशाह को पहले पड़ाव तक पहुँचाने के लिये गए। आते ही पेट में ऐसा दरद होने लगा कि उसने इन्हें लेटा दिया। किसी चिकित्सा से कोई लाभ न हुआ। पाँचवें दिन उन्होंने भी इस संसार से प्रस्थान किया। शेख अब्बुल फजल उनके सम्बन्ध में अपनी यह सम्मति लिखते हैं कि वह सत्यता और सहन-शीलता से सम्पन्न था। बादशाह काश्मीर से लौट कर काबुल की ओर चले थे। मार्ग में उन्हें यह समाचार

मिला। बहुत दुःख किया। कुँवर मानसिंह को राजा की उपाधि दी, खासे की खिलअत दी, जरी के जीन का घोड़ा दिया और पंज-हजारी मन्सब देकर उनका सम्मान बढ़ाया।

बिहार का समुचित प्रबन्ध करके तो मानसिंह का चित्त शान्त और सन्तुष्ट हुआ, पर अकबर के सेनापति से भला चुप-चाप कैसे बैठा जाता! सन् ९९७ हि० में उड़ीसा की ओर घोड़े उठाए। यह देश बंगाल की सीमा के उस पार स्थित है। पहले प्रतापदेव वहाँ का राजा था। उसके अयोग्य पुत्र नृसिंह-देव ने पिता को विष देकर मार डाला और बहुत जल्दी मार डाला। उस समय बुद्धिमत्ता और धर्म का पुतला सुलैमान किरारानी बंगाल में शासन करता था। उसने मुफ्त में उक्त देश ले लिया। पर समय ने थोड़े ही दिनों बाद उसका भी पृष्ठ उलट दिया।

उड़ीसा कतलूखाँ आदि अफगानों के हाथ में रहा। उस समय मानसिंह ने विजय के दंड पर फरहरा चढ़ाया। बरसात दल-बादल के लश्कर में बिजली की झंडियाँ चमका रही थीं। पानी बरस रहे थे। नदियाँ चढ़ी हुई थीं। उधर से कतलू आया और पचीस कोस के अन्तर पर उसने डेरे डालकर युद्ध-क्षेत्र में आने के लिये निमन्त्रित किया। मानसिंह ने उसका सामना करने के लिये अपने बड़े लड़के को भेजा। वह अपने पिता का सुयोग्य पुत्र था। पर अभी युवावस्था का मसाला तेज था। ऐसा गरम हो गया कि व्यवस्था का सूत्र उसके हाथ से निकल गया और विजय ने पराजय का रूप धारण किया। सेनापति ने स्वयं आगे बढ़कर बिगड़ा हुआ काम सँभाला। सरदारों को धैर्य दिलाकर

और फिर से सेना को समेट कर सामने किया। ईश्वर की ओर से सहायता यह हुई कि कतलूखाँ मर गया। अफगानों में फूट पड़ गई। बहुत से सरदार शत्रु पक्ष से टूटकर इधर आ मिले। जो लोग बाकी बच रहे थे, वे इस शर्त्त पर सन्धि करने के लिये उत्सुक हुए कि अकबर के नाम का खुतबा पढ़ा जायगा। हम लोग प्रति वर्ष राज-कर और भेंट सेवा में भेजा करेंगे। जब आज्ञा होगी, तब सेवा करने के लिये उपस्थित हुआ करेंगे। सेनापति ने भी देखा कि इस समय इस प्रकार सन्धि कर लेना ही उचित है। १५० हाथी और बहुत से बहुमूल्य उपहार आदि लेकर दरबार में भेज दिए।

जब तक कतलू का वकील और प्रतिनिधि ईसा जीता रहा, तब तक सन्धि की सब शर्त्तों का ठीक तरह से पालन होता रहा। उसके कुछ ही वर्षों बाद नए नवयुवक अफगानों के साहस ने जोर किया। उन्होंने पहले जगन्नाथ का इलाका मारा। फिर बादशाही देश पर हाथ डालने लगे। मानसिंह ईश्वर से मना ही रहा था कि सन्धि की शर्तें तोड़ने के लिये कोई बहाना हाथ आवे। तुरन्त बहुत बड़ी सेना लेकर चला। स्वयं नदी के मार्ग से आगे बढ़ा और सरदारों को चारखंड के मार्ग से बढ़ाया। उन्होंने शत्रु के इलाके में पहुँचकर विजय के झंडे फहरा दिए। यद्यपि अफगान लोग सन्धि की झंडियाँ लहरा रहे थे, पर अब यह क्यों सुनने लगा था। इसने युद्ध के लिये निमन्त्रित किया। उन लोगों ने भी विवश हो कर हाथ-पैर सँभाले। बुड्ढे और जवान बड़े-बड़े पठान एकत्र हुए। पास-पड़ोस के राजाओं ने भी उनका साथ दिया। बहुत बड़ी लड़ाई आ पड़ी। वीरों ने बहुत साहस के और

अच्छे-अच्छे काम कर दिखलाए। बड़े-बड़े रण पड़े। उक्त देश प्रकृति का हाथी-खाना है। युद्ध-क्षेत्र में हाथी मेढ़ों की तरह लड़ते और दौड़ते फिरते थे; और अकबर की सेना के बहादुर उन पर तीर चला कर उन्हें मिट्टी का ढेर बनाते थे। अन्त में सूरमा सेनापति ने विजय पाई। देश को बढ़ाते-बढ़ाते समुद्र तक पहुँचा दिया। नगर-नगर में अकबर के नाम का खुतबा पढ़ा गया। जगन्नाथजी ने भी अकबर बादशाह पर दया की कि अपना मन्दिर देश समेत दे दिया। मानसिंह सुन्दर वन के पूर्वी भागों के फानी आदि स्थानों में फैलता जाता था। उचित यह जान पड़ा कि इधर एक ऐसा नगर बसाया जाय जहाँ एक बड़ा हाकिम रहा करे और जहाँ से चारों ओर सहायता पहुँच सके। जल की ओर से होनेवाले आक्रमण से भी वह रक्षित रहे और दुष्ट विचारवाले शत्रुओं की छाती पर पत्थर रहे। बहुत कुछ ढूँढ़ने, देखने और परामर्श आदि करने पर यह निश्चय हुआ कि आक महल नामक स्थान पर ऐसा नगर बसाया जाय। शुभ मुहूर्त्त देख कर नींव का पत्थर रखा गया और उसका नाम अकबर नगर पड़ा। आज-कल यही राजमहल के नाम से प्रसिद्ध है। शेर शाह ने अपने घूमने-फिरने और मनोविनोद के लिये यह सुन्दर स्थान चुनकर इसे प्रसिद्ध किया था। अब भी जब कोई यात्री उस ओर जा निकलता है, तो बकावली और बदरे मुनीर की कल्पित कहानियाँ मिटे हुए चित्रों की तरह पृथ्वी के पृष्ठ पर दिखाई पड़ती हैं। इसी स्थान पर एक बहुत बड़ा किला बनाकर उसका नाम सलीम नगर रखा। शेरपुर का किला और अकबरनगर का मोरचा ऊँचे-ऊँचे भवनों, सजे हुए मकानों और चलते हुए बाजारों के

कारण थोड़े ही दिनों में इन्द्रजाल की सी अवस्था दिखलाने लगा। मानसिंह के धौंसे का शब्द ब्रह्मपुत्र के किनारे-किनारे समस्त पूर्वी बंगाल में गूँजने लगा।

राजा मानसिंह ने जो अनेक बड़े-बड़े काम किए थे और बड़े-बड़े साहस दिखलाए थे, वे लेख की कलम को सिर नीचा नहीं करने देते। पर अकबर के गुण भी इतने उच्च कोटि के हैं कि उनका वर्णन किए बिना रहा नहीं जाता। उड़ीसा देश में राजा रामचन्द्र नामक एक शासक था। वह स्वयं तो मानसिंह के दरबार में नहीं आया, हाँ उसने अपने लड़के को भेज दिया। राजा ने कहा कि लड़के का आना ठीक नहीं है। राजा रामचन्द्र को स्वयं यहाँ आना चाहिए। कतलूखाले युद्ध में राजा इनकी सहायता भी कर चुका था। पर फिर भी उसे आने का साहस नहीं होता था। वह सोचता था कि ये राजनीतिक मामले हैं। ईश्वर जाने यहाँ जाने पर क्या हो। मानसिंह ने उसकी की हुई सब सेवाओं को उठाकर ताक पर रख दिया और सेना साथ देकर अपने लड़के को उस पर चढ़ाई करने के लिये भेज दिया। उस नवयुवक ने जाते ही उसके इलाके की मिट्टी उड़ा दी। कई किले जीत लिए। राजा किले में बन्द हो गया और चारों ओर घेरा पड़ गया। बादशाह के पास भी यह समाचार पहुँचा। उसने मानसिंह के नाम आज्ञापत्र भेजा कि यदि राजा रामचन्द्र इस समय नहीं आए हैं, तो फिर आ जायँगे। ऐसा कदापि नहीं होना चाहिए। देश और वैभव की उन्नति इस प्रकार की बातों से नहीं होती। जल्दी घेरा उठा लो; क्योंकि इस प्रकार घेरा डालना औचित्य के नियमों के विरुद्ध है। मानसिंह ने तुरन्त बादशाह की आज्ञा का

पालन किया और अपने लड़के को वापस बुला लिया। सन् १००१ हि० में बंगाल और उड़ीसा को सब प्रकार के उपद्रवों और बखेड़ों आदि से रहित करके बादशाह के आज्ञानुसार दरबार में उपस्थित हुआ। उस देश के कई प्रसिद्ध राजाओं और सरदारों को भी अपने साथ दरबार में लेता गया। उन्हें भी बादशाह की सेवा में उपस्थित कराया और बादशाह की राज्यश्री के मस्तक पर ईश्वरीय प्रकाश का तिलक लगाया। इतिहास-लेखकों ने बंगाल को उपद्रवों आदि से रहित करने का श्रेय इन्हीं को दिया है।

यद्यपि उस समय जहाँगीर का लड़का खुसरो बहुत ही छोटा था, पर फिर भी सन् १००२ हि० में वार्षिक जशन के अवसर पर उसे पाँच-हजारी मन्सब देकर उड़ीसा देश जागीर में दे दिया। कुछ राजपूत सरदारों के अधिकार भी उसमें सम्मिलित कर दिए और राजा मानसिंह को उसके गुरु और शिक्षक होने का सम्मान प्रदान किया। उसकी सरकार का प्रबन्ध भी राजा मानसिंह को ही सौंपा गया। राजा को बंगाल देश देकर उधर भेज दिया और उसी देश पर उसका वेतन मुजरा कर दिया। नवयुवक जगतसिंह अब इस योग्य हो गया था कि स्वयं ही अकेला बादशाही सेवाएँ कर सके।

सन् १००२ हि० में कूचबिहार के राजा ने सूरमा सेनापति के दरबार में अभिवादन करके अकबर की अधीनता स्वीकृत की। इस देश की लम्बाई सौ कोस है और चौड़ाई में यह चालिस से सौ कोस के बीच में फैलता और सिमटता चला जाता है। यहाँ के राजा के यहाँ चार लाख सवार, दो लाख पैदल, सात सौ हाथी और एक हजार सैनिक नावें सदा सेवा

और जान निछावर करने के लिये उपस्थित रहती थीं। यद्यपि सन् १००५ हि० में मानसिंह के लड़के जगतसिंह को पंजाब के पहाड़ी प्रदेशों का प्रबन्ध सौंपा गया, पर फिर भी मानसिंह के लिये यह वर्ष बहुत ही खराब और मनहूस हुआ।

मानसिंह के लड़के हिम्मतसिंह को पहले तो मिचली आने लगी और फिर मिचली से उसे दस्त आने लगे; और इन दस्तों के कारण उसकी बुरी दशा हो गई और अन्त में वह मर भी गया। हिचकी लग गई थी और उसी से प्राण निकल गए। शेख अब्बुलफजल कहते हैं कि वह वीर और साहसी था। प्रबन्ध और नेतृत्व के उसमें स्वाभाविक गुण थे। समय और अवसर पर वह चूकता नहीं था। उसके मरने से सारी कछवाहा जाति में हाहाकार मच गया था। बादशाह की सहानुभूति ने सब के हृदय के घावों पर मरहम रखा। सब लोगों को धैर्य हो गया।

इसी सन् में ईसाखाँ अफगान ने विद्रोह किया। मानसिंह ने अपने लड़के दुर्जनसिंह को सेना देकर भेजा। सरदारों में से एक सरदार नमक-हराम था जो शत्रु-पक्ष से मिला हुआ था। वह उधर समाचार पहुँचा रहा था। एक जगह पर ये लोग बेखबर थे और शत्रु इन पर आ पड़ा। घोर युद्ध हुआ। दुर्जनसिंह मारा गया। और भी बहुत से लोगों के प्राण गए। सब खजाने और मालखाने लुट गए। पर पीछे से ईसाखाँ अपने किए पर पछताया। उसने जो कुछ माल असबाब लिया था, वह सब बहुत कुछ पश्चात्ताप और क्षमा-प्रार्थना आदि करके लौटा दिया। हद है कि बहन भी दे दी। हाय, और सब कुछ तो आ गया, पर दुर्जनसिंह कहाँ से आवें।

सन् १००७ हि० में मानसिंह का प्रताप फिर नहूसत की काली चादर ओढ़कर निकला। अवस्था यह हुई कि अकबर को जिस प्रकार समरकन्द और बुखारा लेने की कामना थी, उसी प्रकार मेवाड़ के राणा से अधीनता स्वीकृत कराने की भी अभिलाषा थी। इसलिये जब तूरान का बादशाह अब्दुल्लाखाँ उजबक मर गया, तब अकबर ने विचारों के बड़े बड़े मन्सूबे बाँधे और शतरंज पर मोहरे फैलाए। विचार यह था कि इधर के मन्सूबे पूरे करके और विजय प्राप्त करके पहले निश्चिन्त हो लिया जाय और तब पैतृक देश पर चढ़ाई की जाय। शाहजादा दानियाल, अब्दुल रहीम खानखानाँ और शेख अब्बुलफजल को दक्खिन की चढ़ाई पर भेजा हुआ था और उन लोगों के पीछे पीछे आप था। जहाँगीर को राणा पर चढ़ाई करने के लिये भेज दिया। मानसिंह को सेनापति बनाकर पुराने-पुराने अमीरों के साथ उसको सहायता के लिये नियुक्त कर दिया। बंगाल में उसकी जो जागीर थी, वह उसके उत्तराधिकारी जगतसिंह को प्रदान की। नवयुवक कुँवर ने बहुत प्रसन्न होकर वहाँ के लिये प्रस्थान किया। वह आगरे पहुँच कर आगे बढ़ने की सब व्यवस्था कर ही रहा था कि अचानक जगत-सिंह की मृत्यु हो गई। सारी कछवाहा जाति में घर-घर शोक छा गया। अकबर को भी बहुत दुःख हुआ। उसके लड़के महासिंह को उसके पिता का स्थान दिया और प्रस्थान करने का आज्ञापत्र देकर रवाना किया। उद्दंड और उपद्रवी अफगानों ने देखा कि यह अवसर बहुत अच्छा है। वे आँधी की तरह उठे। महासिंह साहस करके आगे बढ़ा। पर यौवन-काल की दौड़ थी,

इसलिये उसने ठोकर खाई। विद्रोहियों ने भद्रक नामक स्थान पर बादशाही लश्कर को पराजित किया और पानी की तरह फैलकर सारे बंगाल का बहुत बड़ा भाग दवा लिया। उधर सलीम (जहाँगीर) सदा आनन्द-मंगल में मग्न रहनेवाला आदमी था। वह यह नहीं चाहता था कि उदयपुर के पहाड़ों में जाय और वहाँ के पत्थरों से सिर टकराता फिरे। उसकी इच्छा पूरी हो गई। राणा पर की चढ़ाई स्थगित कर दी गई और बंगाल की ओर प्रस्थान हुआ। बाप उधर आसीर पर घेरा डाले हुए पड़ा था। किलेवालों के प्राणों पर आ बनी थी; वे मर जाना अच्छा समझते थे। खानखानाँ अहमदनगर पर विजय प्राप्त किया चाहता था। अकबर के प्रताप के कारण सारे दक्षिण देश में भूँचाल सा आ रहा था। इब्राहीम आदिल शाह ने बहुमूल्य उपहारों और भेंटों के साथ अपनी कन्या को भेजा था कि दानियाल के महलों में व्याह रचे। पर मूर्ख शाहजादे ने इस बात का कुछ भी विचार नहीं किया कि पिता किन किन उद्देश्यों से क्या-क्या कार्य कर रहा है और इस समय क्या परिस्थिति है। उसने मानसिंह को तो बंगाल की ओर भेज दिया और आप आगरे जा पहुँचा। किले में जाकर अपनी दादी को सलाम तक न किया। जब दादी ने आप उसके पास जाकर उससे मिलना चाहा तो ऊपर से ऊपर नाव में बैठ कर इलाहाबाद की ओर चल पड़ा। वहाँ जाकर खूब आनन्द-मंगल और भोग-विलास करने लगा। अकबर को उसका यह आचरण अच्छा न लगा। बल्कि उसके मन में यह बात आई कि मानसिंह ने ही इसको कुछ ऐसा समझाया-बुझाया है कि यह राणा की

ओर से हटा है और बंगाल की ओर चला है। सब से बढ़कर विपत्ति यह हुई कि शाहज़ादे के विद्रोह करने के कुछ लक्षण दिखाई पड़ने लगे। नमक-हलाल अमीरों के निवेदन-पत्र आने आरम्भ हुए। यदि अकबर का यह सन्देह किसी दूसरे अमीर पर होता, तो कोई बड़ी बात नहीं थी। क्योंकि जब कोई बादशाह बुड्ढा होता है, तब दरबारवालों की आशाएँ सदा युवराज की ओर ही झुकती हैं। लेकिन शाहज़ादा सलीम के साथ मानसिंह का जो विशेष सम्बन्ध था, उसने इन सन्देहों के और भी भद्दे भद्दे चित्र लाकर उपस्थित किए। चाहे झूठ हो और चाहे सच, इससे राजा मानसिंह के नाम पर जो कलंक लगा, उसका अकबर को बहुत दुःख हुआ।

खैर, ये तो घर की बातें हैं। राजा मानसिंह ने ज्यों ही बंगाल के विद्रोह का समाचार सुना, त्यों ही वह शेर की तरह उधर झपटा। जिस समय वह वहाँ पहुँचा, उस समय पुरनिया, कहगरवाल, विक्रमपुर आदि भिन्न-भिन्न स्थानों में शत्रुओं ने स्वतन्त्रता के झंडे खड़े कर रखे थे। उसने जगह जगह के लिये सेनाएँ भेजीं; और जहाँ आवश्यकता देखी, वहाँ चलकर स्वयं पहुँच गया। अकबर के पुण्य-प्रताप और राजा मानसिंह के साहस तथा अच्छी नीयत ने कुछ दिनों के बाद विद्रोह की आग बुझाई और तब मानसिंह ने ढाके में आकर निश्चिन्त भाव से शासन करना आरम्भ किया।

बादशाहों के मन का हाल तो भला कोई कैसे जान सकता है, पर ऊपर से देखने से यही मालूम हुआ कि अकबर का मन उसकी ओर से साफ हो गया। इस विद्रोह में जो युद्ध हुए थे,

उनसे यह भी पता चलता है कि बंगाल के विद्रोहियों के साथ फिरंग के सिपाही भी सम्मिलित थे और उनके साथ रहकर अपने प्राण देते थे। कदाचित् ये लोग डच या पुर्त्तगाली थे।

सन् १००२ हि० में जब भारत में सब ओर शान्ति और व्यवस्था हो गई और तूरान के बादशाहों में आपस में झगड़े-बखेड़े होने लगे, तब अकबर का ध्यान फिर तूरान की ओर गया। उसने सेनापति खानखानाँ और दूसरे सरदारों को परामर्श करने के लिये बुलाया। मानसिंह के नाम भी सेवा में उपस्थित होने के लिये आज्ञा-पत्र भेजा गया और उसे यह भी लिखा गया कि कुछ बहुत ही आवश्यक समस्याएँ उपस्थित हैं, जिनके लिये सब लोगों का परामर्श लिया जायगा। तुम बादशाह के बहुत पुराने और ख़ास सेवक हो, इस दरबार के प्रिय "आक सक्काल"* हो; इसलिये उचित है कि तुम भी दरगाह (दरबार) की ओर प्रवृत्त हो। इसी सन् में उसे जौंद का परगना प्रदान किया गया और आज्ञा हुई कि रोहतास के किले की मरम्मत करो। उसके पुत्र भावसिंह को हजारी जात, पाँच सौ सवार का मन्सब प्रदान किया गया।

---

* तुर्की भाषा में "आक सक्काल" सफेद दाढ़ीवाले को या वृद्ध को कहते हैं। इसका आशय "पूज्य वृद्ध व्यक्ति" है। आजकल तुर्किस्तान के नगरों में चौधरी या महल्ले मुख्तार ही "आक सक्काल" कहलाता है। हर एक गाँव में और नगर के हर एक महल्ले में एक एक "आक सक्काल" होता है। पेशेवालों के हर एक दल का "आक सक्काल" भी अलग अलग हुआ करता है।

सन् १०१३ हि० में मानसिंह के भानजे और जहाँगीर के बड़े लड़के खुसरो को दस-हजारी मन्सब मिला। मानसिंह उसके शिक्षक और गुरु नियुक्त हुए और उनका मन्सब भी बढ़ाकर सात-हजारी छः हजार सवार का कर दिया गया। उनका पोता भावसिंह हजारी मन्सब और तीन सौ सवार पर नियत हुआ। अब तक कोई अमीर पाँच-हजारी मन्सब से आगे नहीं बढ़ा था। पर यह सम्मान सबसे पहले इसी शुद्ध-हृदय राजा की निष्ठा और जान निछावर करनेवाली सेवाओं ने लिया और अकबर की गुण-ग्राहकता ने उसे दिया।

जब तक अकबर जीता रहा, तब तक मानसिंह का सितारा बृहस्पति में रहा (बहुत उच्च रहा)। पर जब वह अन्तिम बार बीमार होकर मृत्यु-शय्या पर पड़ा, तब से उसका सितारा भी ढलने लगा। सबसे पहले खुसरो के विचार से ही स्वयं अकबर को यह उचित था कि मानसिंह को आगरे से हटा दिया जाय (देखो अकबर का हाल)। इसलिये उन्हें आज्ञा हुई कि अपनी जागीर पर जाओ। उस आज्ञाकारी सेवक ने अपनी समस्त कामनाओं और इच्छाओं को अपने प्रिय स्वामी की प्रसन्नता के हाथ बेच डाला था। यद्यपि उसके पास बीस हजार निजी नौकर थे और वह समस्त कछवाहा जाति का सरदार था, यदि बिगड़ बैठता तो सारी जाति तलवार पकड़कर खड़ी हो जाती, पर फिर भी उसने तुरन्त बंगाल की ओर प्रस्थान किया और खुसरो को भी अपने साथ ले लिया। जब नया बादशाह सिंहासन पर बैठा, तब सभी पुराने अमीर दरबार में उपस्थित हुए। नवयुवक बादशाह उस समय मस्त था। पर उसके सम्बन्ध में भी यह

खान प्रशंसा करने के योग्य है कि वह सब पुरानी बातों को भूल गया। वह स्वयं लिखता है कि मानसिंह ने कुछ ऐसी बातें की थीं कि वह अपने लिये इस कृपा की आशा नहीं रखता था। पर फिर भी उसे चार-कुब्ब (एक प्रकार की बढ़िया) खिलअत, जड़ाऊ तलवार, जरी के जीन के सहित खासे का घोड़ा आदि देकर उसका सम्मान बढ़ाया और बंगाल का सूबा दोबारा अपनी ओर से उसे प्रदान किया। पर भाग्य की वक्रता को कौन सीधा कर सकता है! कुछ ही महीने बीते थे कि खुसरो ने विद्रोह खड़ा कर दिया। पर फिर भी धन्य है जहाँगीर का हौसला कि मानसिंह के कार-बार में उसने किसी प्रकार के परिवर्त्तन का कोई लक्षण नहीं प्रकट किया। मानसिंह को भी धन्य कहना चाहिए, क्योंकि वह अपने भानजे का भला तो अवश्य चाहता होगा। परन्तु इस अवसर पर उसने भी कोई ऐसा काम नहीं किया जिसके कारण उसपर स्वामी-द्रोह का अभियोग लगा सकें।

मस्त बादशाह जहाँगीर अपने राज्यारोहण के एक बरस आठ महीने के बाद स्वयं लिखता है, परन्तु उसके लेख पर कुछ धूल-मिट्टी पड़ी हुई जान पड़ती है। ऐसा जान पड़ता है कि ये बातें किसी दुःखी हृदय से निकल रही हैं। वह लिखता है कि राजा मानसिंह रोहतास के किले से चलकर दरबार में सेवा में उपस्थित हुआ। रोहतास का किला पटने के प्रदेश में स्थित है। जब छः सात आज्ञापत्र जा चुके हैं, तब आया है। वह भी खान आजम की तरह इस साम्राज्य के पुराने पापियों में से एक है। जो कुछ उन्होंने मेरे साथ किया और जो कुछ मैंने इन लोगों के

साथ किया, वह भेद जाननेवाला ईश्वर ही जानता है। और कोई किसी के साथ इस प्रकार निर्वाह नहीं कर सकता। राजा ने नर और मादा सौ हाथी भेंट किए। पर उनसे एक हाथी में भी कोई ऐसी बात नहीं थी कि वह खास (बादशाही) हाथियों में सम्मिलित किया जा सकता। वह मेरे पिता के बनाए हुए नवयुवकों में से है। उसके अपराधों का मैंने उसके सामने कुछ भी उल्लेख नहीं किया और राजोचित कृपाओं से उसे सम्मानित किया। पूरे दो महीने के बाद फिर लिखता है कि एक घोड़ा मेरे और सब घोड़ों का सरदार था। वह मैंने कृपा की दृष्टि से मानसिंह को प्रदान किया। यह घोड़ा कई और घोड़ों के साथ और अच्छे-अच्छे उपहारों के साथ शाह अब्बास ने मनोचहरखाँ के दूतत्व में स्वर्गीय पूज्य पिता जी (अकबर) को भेजा था। मनोचहर उक्त शाह का विश्वसनीय दास है। जब मैंने यह घोड़ा प्रदान किया, तब मानसिंह मारे प्रसन्नता के इस प्रकार लोटा जाता था कि यदि मैं उसे कोई साम्राज्य दे देता, तो पता नहीं कि वह इतना प्रसन्न होता या न होता। जब यह घोड़ा आया था, तब तीन चार बरस का था। भारत में आकर ही यह बड़ा हुआ था और यहीं इसमें सब गुण प्रकट हुए थे। दरबार में रहनेवाले सभी मुगल और राजपूत सेवकों ने एक स्वर से यह निवेदन किया कि ऐसा घोड़ कभी ईरान से भारत में नहीं आया था। जब पूज्य पिता जी भाई दानियाल को खानदेश और दक्खिन का सूबा प्रदान कर के आगरे की ओर लौटने लगे, तब उन्होंने प्रेम की दृष्टि से उससे कहा था कि तुझे जो चीज बहुत पसन्द हो, वह मुझ से माँग। उसने अवसर पाकर यह घोड़ा माँगा। इसी कारण उसे दे दिया था।

आजाद कहता है कि भला बीस बरस के बुड्ढे घोड़े पर क्या प्रसन्न होना था ! यह कहो कि समय को देखते थे, आदमी को पहचानते थे और थे मसखरे। क्या यह और क्या खानखानाँ, मस्त को पागल बनाते थे। बुड्ढे हुए तो हो जायँ, पर तबीयत की शोखी तो नहीं जा सकती। अकबर के शासन-काल में बुद्धिमत्ता, साहस, हौसले और जान निछावर करने का समय था। उसे ये लोग इन्हीं बातों से प्रसन्न करते थे। जब इसे देखा कि यह इस ढब का नहीं है, तो इसे दूसरे ढब से नरम कर लिया।

बादशाह के खानजहाँ आदि अमीर दक्खिन में अपनी कार-गुजारियाँ दिखला रहे थे। उनका साहस और योग्यता अवश्य यह चाहती होगी कि हम भी मैदान में चलकर अपने गुण दिख-लावें; और जान निछावर करने की आदत ने इसमें और भी उत्तेजना दी होगी। लेकिन खुसरो के कारण मामला कुछ नाजुक हो रहा था। इसलिये वह पहले अपनी जन्मभूमि को गया और वहाँ अपने पुराने कर्मचारियों से परामर्श करके जहाँगीर से निवेदन किया और अपने लश्कर सहित दक्खिन पहुँचा। दो बरस तक वहाँ रहा; और सन् १०२३ हि० में वहीं से परलोक सिधारा। उसके लड़कों में से केवल एक भावसिंह जीता बचा था। जहाँगीर ने इस अवसर पर स्वयं लिखा है कि पूज्य पिता जी के अच्छे-अच्छे अमीरों और सहायकों में से मैंने दरबार के अनेक सेवकों को एक-एक करके दक्खिन में काम करने के लिये भेजा था। वह भी इन दिनों वहीं सेवा कर रहा था। वहीं मर गया। मिरजा भावसिंह उसका सुयोग्य पुत्र था। मैंने बुला भेजा। जिस समय मैं युवराज था, उस समय वह मेरी सेवा अधिक से

भी अधिक किया करता था। हिन्दुओं की प्रथा के अनुसार जगतसिंह के लड़के महासिंह को रियासत मिली थी, क्योंकि वही सब भाइयों में बड़ा था। वह राजा के जीवन-काल में ही मर गया था। परन्तु मैंने इस बात का विचार न किया। भावसिंह को मिरजा राजा की उपाधि देकर चार-हजारी जात और तीन सौ सवार के मन्सब से सम्मानित किया। आमेर का इलाका उसे प्रदान किया। वही उसके बाप-दादा की जन्मभूमि है। इस विचार से कि महासिंह भी प्रसन्न रहे, उसका मन रखने के लिये उसके पुराने मन्सब पर पाँच सदी बढ़ाकर गढ़ का देश उसे पुरस्कार में दिया।

जो लोग वास्तविक बातें न जानते होंगे, वे यह वर्णन पढ़कर चट बोल उठेंगे कि जहाँगीर के शासन-काल में उसने कुछ भी उन्नति नहीं की। परन्तु जाननेवाले लोग जानते हैं कि उसका मामला कैसा पेचीला था। बल्कि उसकी बुद्धिमत्ता और उत्तम आचरण हजार प्रशंसा के योग्य हैं। चारों ओर चढ़ाइयाँ और लड़ाई-झगड़े हो रहे थे। परन्तु वह किसी विपत्ति की झपट में नहीं आया। उसने अपनी प्रतिष्ठापूर्ण अवस्था का प्रतिष्ठापूर्वक अन्त किया। खानखानाँ और मिरजा अजीज कोका आरम्भ से ही उन्नति के क्षेत्र में इसके साथ घोड़े दौड़ाते थे। उनकी अवस्था की इसकी अवस्था से तुलना करके देखो। जहाँगीर के शासन-काल में उन लोगों ने कैसी कैसी विपत्तियाँ सहीं। पर इसके आचरण और गति में एक विशेष सिद्धान्त था, जिसने इसे कुशलपूर्वक क्षेत्र के मार्ग से उद्दिष्ट स्थान तक पहुँचाया। प्रतिष्ठा और सम्मान की जो पगड़ी अकबर ने अपने हाथ से इसके

सिर पर बाँधी थी, उसे दोनों हाथ से पकड़े हुए यह बहुत ही कुछ और शान्ति से निकल गया।

इसने देशों पर विजय प्राप्त करने और उनका शासन तथा रक्षा करने के सभी गुणों में अपना पूरा-पूरा अंश प्राप्त किया था। यह जिधर लश्कर ले गया, उधर ही इसे सफलता हुई। काबुल में आज तक बच्चा-बच्चा उसका नाम जानता है। उसके सम्बन्ध की कहावतें आज तक लोगों की जबानों पर हैं। इसने पूर्व में अकबर के शासन का धौंसा समुद्र के किनारे तक जा बजाया। बंगाल में इसने अपने उत्तम शील और गुणों के ऐसे अच्छे बाग लगाए हैं जो आज तक हरे-भरे हैं। उसकी विशाल-हृदयता और उदारता के स्रोत अब तक लोगों की जबानों पर प्रवाहित हो रहे हैं; और आशा है कि बहुत दिनों तक यों ही बने रहेंगे। उसकी माट की सरकार में सौ हाथी फीलखाने में झूमते थे। बीस हजार अच्छे अच्छे सैनिक और योद्धा उसके निजी सेवक थे। उसके लश्कर के साथ बड़े-बड़े विश्वसनीय सरदारों, ठाकुरों और अच्छे-अच्छे अमीरों की सवारियाँ बराबर अमीरी ठाठ से निकलती थीं। सभी सैनिकों के लिये अच्छे वेतन नियत थे और वे सब प्रकार से सुखी तथा सम्पन्न थे। प्रत्येक गुण और कला के पूर्ण ज्ञाता उसके राजसी दरबार में सदा उपस्थित रहते थे और प्रतिष्ठापूर्वक, सुखी और सम्पन्न रहते थे।

इतना सब कुछ होने पर भी उसका स्वभाव बहुत अच्छा और मिलनसार था और वह सदा प्रसन्न-चित्त रहता था। जहाँ कहीं जलसे में बैठता था, अपने भाषण को नम्रता और सरों के

आदर-सत्कार से रँग देता था। जब दक्खिन में युद्ध करने के लिये गया था, तक खानजहाँ लोधी सेनापति था। उस समय वहाँ ऐसे पन्द्रह पंज-हजारी अमीर उपस्थित थे, जिन्हें बादशाह की ओर से झंडा और नगाड़ा आदि मिला हुआ था। उनमें खानखानाँ, स्वयं राजा मानसिंह, आसफखाँ और शरीफखाँ अमीर उल् उमरा आदि सम्मिलित थे। चार-हजारी से पाँच-सदी तक एक हजार मन्सबदार सेनाएँ लिए हुए और कमर बाँधे हुए उपस्थित थे। बालाघाट नामक स्थान पर बादशाही लश्कर पर बहुत बड़ी विपत्ति आई। देश में अकाल पड़ गया। रास्ते भी बहुत खराब थे, इसलिये रसद का आना बन्द होने लगा। अमीर लोग नित्य एकत्र होकर परामर्श के लिये सभाएँ करते थे; पर कोई उपाय ठीक बैठता हुआ दिखाई नहीं देता था। एक दिन मानसिंह ने भरी सभा में खड़े होकर कहा कि यदि मैं मुसलमान होता, तो दिन-रात में एक समय आप सब सज्जनों के साथ बैठकर भोजन किया करता। अब तो दाढ़ी सफेद हो गई है, इसलिये कुछ कहना उचित नहीं है। एक पान है। आप सब सज्जन स्वीकृत करें। सब से पहले खानजहाँ ने उनका मन रखा और मान का पान समझकर सब लोगों ने उसे स्वीकृत कर लिया। पंज-हजारी से लेकर सदी तक के सभी मन्सबदारों के यहाँ उनकी मर्यादा और पद के अनुसार नगद और भोजन के लिये सब आवश्यक सामग्री हर आदमी की सरकार में पहुँच जाया करती थी। हर थैले और खरीते पर उस मन्सबदार का नाम लिखा हुआ होता था। तीन चार महीने तक यह क्रम बराबर चलता रहा। एक दिन भी नागा नहीं हुआ। बनजारों ने

रसद का ताँता लगा दिया। लश्कर के बाजार में हर चीज के ढेर पड़े रहते थे; और चीजों का जो भाव आमेर में था, वही यहाँ भी था। एक समय का भोजन भी सबको मिलता था। उसकी कुँवर नाम की रानी बहुत ही बुद्धिमती थी और सब बातों की बहुत अच्छी व्यवस्था करती थी। वह घर में बैठी रहती थी और सब बातों का बराबर प्रबन्ध किया करती थी। यहाँ तक कि कूच में और ठहरने के स्थानों पर मुसलमानों को स्नानागार और मसजिद के ढंग के खेमे भी तैयार मिलते थे।

उत्तम शील और आचरणवाला यह राजा सदा प्रफुल्लित और प्रसन्न रहता था। एक बार दरबार में एक सैयद साहब किसी ब्राह्मण से उलझ पड़े। अन्त में उन्होंने कहा कि जो कुछ राजा साहब कह दें, वही ठीक माना जाय। राजा ने कहा कि मुझ में इतना ज्ञान नहीं है जो मैं ऐसे विषयों में बात-चीत कर सकूँ। पर हाँ, एक बात देखता हूँ कि हिन्दुओं में कोई कैसा ही गुणवान्, पंडित, ज्ञानी, ध्यानी या साधु जब मर गया तो जल गया। उसकी राख उड़ गई। रात के समय वहाँ जाओ तो भूत-प्रेत का भय है। इस्लाम में जिस नगर बल्कि गाँव में जाओ, अनेक पूज्य वृद्ध पड़े सोते हैं। दीपक जलते हैं। फूल महक रहे हैं। चढ़ावे चढ़ते हैं और लोग उनके व्यक्तित्व से लाभ उठाते हैं।

एक दिन ये और खानखानाँ बैठे हुए शतरंज या चौपड़ खेल रहे थे। शर्त यह हुई कि जो हारे, वह जीतनेवाले के कहने के अनुसार एक पशु की बोली बोले। खानखानाँ की बाजी दबने लगी। मानसिंह ने हँसना आरम्भ किया। कहा कि मैं तो बिल्ली

की बोली बुलवाऊँगा। खानखानाँ साहस करते गए। अन्त में चार पाँच चालों के उपरान्त निराश हो गए। पर वे बड़े चाल-बाज थे। उन्होंने घबरा कर उठना चाहा। कहा कि ओहो! मैं तो बिलकुल भूल ही गया था। बहुत अच्छा हुआ कि इस समय स्मरण आ गया। मानसिंह ने कहा—आप कहाँ चले? उन्होंने कहा—बादशाह सलामत ने एक काम के लिये मुझे आज्ञा दी थी। वह बात अभी इसी समय मुझे याद आई। मैं जाकर जल्दी उसका प्रबन्ध करता हूँ। राजा ने कहा—नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। खानखानाँ बोले—मैं अभी आता हूँ। राजा ने उनका पल्ला पकड़ लिया और कहा—बहुत अच्छी बात है। आप बिल्ली की बोली बोल लीजिए और फिर चले जाइए। उन्होंने कहा—आप मेरा पल्ला छोड़ दीजिए। मे आयम्। मे आयम्। मे आयम्। (अर्थात् मैं आता हूँ। मैं आता हूँ। मैं आता हूँ।) (इस प्रकार फारसी भाषा में अपनी बात भी कह दी और बिल्ली की बोली 'म्याँव' की नकल भी कर दी।) वह भी हँस पड़े। ये भी हँस पड़े। वाह, क्या बात है! अपनी बात भी कह दी और विपक्षी की बात भी पूरी कर दी।

मानसिंह सदा साधुओं और त्यागियों आदि की सेवा में जाया करता था। इस विषय में वह हिन्दू और मुसलमान में किसी प्रकार का भेद-भाव नहीं रखता था। बंगाल की यात्रा में एक स्थान पर शाह दौलत नामक फकीर के गुणों और योग्यताओं की प्रशंसा सुनी। जाकर उनकी सेवा में उपस्थित हुआ। वे भी उसकी पवित्र और बुद्धिमत्ता-पूर्ण बातों से बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा—मानसिंह, तुम मुसलमान क्यों नहीं हो जाते? मान-

सिंह ने मुस्कराकर कुरान की एक आयत पढ़ी जिसका आशय यह है कि यह (धर्म) ईश्वर की की हुई मोहर है। इसे मनुष्य कैसे तोड़ सकता है ? यदि तोड़े तो उसका अनादर होता है।

मानसिंह के सम्बन्ध में यह दुःख वास्तव में नहीं भूलता कि जहाँगीर के शासन-काल में आकर सेनापतित्व और देशों पर विजय प्राप्त करने की योग्यता मुरझा कर रह गई। शराबी-कबाबी बादशाह ने उसकी कुछ परवाह नहीं की, बल्कि उसकी ओर से खटकता रहा। गुणग्राहक वही मरनेवाला था, जिसने उसकी योग्यता और गुणों को छोटी अवस्था से ही पालकर पूर्णता के बहुत ऊँचे पद पर पहुँचाया था। वह यदि जीवित रहता तो ईश्वर जाने इसकी तलवार से अपने पूर्वजों के देश के पहाड़ों को टकराता या समुद्र में फिरंगियों का बल तोड़ता। अकबर सदा खानखानाँ को मिरजा खाँ, खान आजम को मिरजा अजीज और मानसिंह को मिरजा राजा कहा करता था। घर की रीत-रस्मों और दूसरी सभी बातों में उसके साथ पुत्रों का सा व्यवहार होता था। विशेषतः अन्तःपुर के सब कार-बार, यात्रा के समय उसका सारा प्रबन्ध राजा भगवानदास के ही हाथ में रहता था। मरियम मकानी तक की सवारी होती तो राजा साहब साथ रहते थे। इससे अधिक और क्या विश्वास हो सकता है! बहुत ही पवित्र समय था और बहुत ही पवित्र हृदय थे। देखो उनके परिणाम भी कैसे शुभ और पवित्र निकलते थे।

मानसिंह के जीवन-चरित्र में इस वर्णन पर फूल बरसाने

चाहिएँ कि उसने और उसके सारे वंश ने अपनी सब बातों को अकबर की इच्छा और प्रसन्नता पर निछावर कर दिया था। पर फिर भी धर्म के विषय में अपनी बात कभी हाथ से जाने नहीं दी। जिन दिनों अकबर के चलाए हुए दीन इलाही अकबर-शाही का जोर हुआ और अब्बुलफजल उसके खलीफा हुए, तब जो बीरबल ब्राह्मण कहलाते थे, उन्होंने शिष्यता के क्रम में चौथा स्थान प्राप्त किया था। परन्तु मानसिंह गम्भीरता और बुद्धिमता के बिन्दु से बाल बराबर भी नहीं हटा। एक बार की बात है कि रात के समय साम्राज्य की कुछ विकट समस्याओं पर विचार करने के लिये मन्त्रणा सभा हो रही थी। इनको हाजीपुर पटना जागीर में प्रदान किया गया। इसके बाद एकान्त की सभा होने लगी। खानखानाँ भी उपस्थित थे। अकबर मानसिंह को टटोलने लगे कि देखूँ, यह भी मेरे शिष्यों और अनुयायियों में आता है या नहीं। बात-चीत का क्रम इस प्रकार छिड़ा कि जब तक वह चार बातें नहीं होतीं, तब तक पूर्ण प्रेम नहीं होता। सिपाही राजपूत ने स्पष्ट भाव और निःसंकोच रूप से उत्तर दिया कि हुजूर, यदि शिष्यता से प्राण निछावर करने का अभिप्राय है तो आप देखते हैं कि हम अपनी जान हथेली पर रखे हुए हैं। इसमें परीक्षा की कोई आवश्यकता नहीं। यदि इसका अभि-प्राय कुछ और है और हुजूर का आशय धर्म से है तो मैं हिन्दू हूँ। यदि आपकी आज्ञा हो तो मुसलमान हो जाऊँ। और मार्ग मैं नहीं जानता कि कौन सा है जो मैं ग्रहण करूँ। अकबर भी टाल गए। और हम तो कहते हैं कि वास्तविक बात यही है कि जो आदमी अपने धर्म का पक्का और पूरा होगा, वही निष्ठा

और प्रेम-सम्बन्ध में भी पूरा होगा। निष्ठा और प्रेम की दृढ़ता ही प्रत्येक धर्म का मूल है। भला संसार में कौन सा ऐसा धर्म है जिसने निष्ठा और प्रेम-भाव को बुरा समझा होगा! जो अच्छी बातें हैं, वे सभी धर्मों में अच्छी मानी गई हैं और उनका पालन करने पर सभी में जोर दिया गया है। यदि किसी धर्म के अनुयायी उन बातों का पालन न करें तो इसमें उस धर्म का कोई दोष नहीं है। हाँ उन धर्म-भ्रष्ट लोगों का अवश्य दोष है।

यह चुटकुला भी लिखने के योग्य है कि राजा की १५ सौ रानियाँ थीं और उनमें से हर एक के गर्भ से एक-एक दो-दो सन्तानें उत्पन्न हुई थीं। हाँ, वीर ऐसे ही होते हैं। पर दुःख है कि वे कोंपलें टहनी से निकलती गईं और जलती गईं। कुछ ही बच्चे ऐसे थे जो युवावस्था तक पहुँचे और दुःख है कि वे भी इसके सामने ही चले गए। एक भावसिंह को जीता छोड़ गया था। पर वह भी शराब की भेंट हुए। जब राजा साहब का स्वर्गवास हुआ, तब साठ रानियों ने सती होकर परलोक-गमन में उनका साथ दिया था।

जिस भूमि पर ताजगंज का रौजा है, वह राजा मानसिंह की थी। मैंने आगरे में जाकर पूछा तो पता चला कि अब भी उसके आस-पास कुछ बीघे ऐसी भूमि है जो जयपुर के राजा के नाम लिखी चली आती है। जयपुर के महाराज सवाई के कर्मचारी उसपर अपना अधिकार रखने में अपना गौरव समझते हैं।

सूक्ष्मदर्शिता—एक फकीर ने एक बीघा भर जमीन के लिये अकबर के दरबार में प्रार्थना की। वहाँ सैकड़ों हजारों

बीघे की भी कोई बड़ी बिसात नहीं थी। भूमि प्रदान कर दी ग; को उसकी सनद पर सभी अमीरों के कार्यालयों से हस्ताक्षर हो। चले आए। जब वह कागज मानसिंह के सामने आया, तब उन्होंने उसपर लिख दिया कि काश्मीर की भूमि को छोड़कर, जहाँ केसर उत्पन्न होता है। जब उस फकीर ने यह लिखा देखा, तब वह सनद फेंक कर चला गया। बोला कि अब मुझे क्या करना है। यदि साधारण बीघा भर जमीन ही लेनी होती तो जहाँ चाहता, वहीं बैठ जाता। ईश्वर का क्षेत्र विस्तृत पड़ा है। कुछ अन्वेषकों से यह भी पता चला कि यह काम टोडरमल ने किया था।

मेरे मित्रो, यदि इस समय हिन्दुओं और मुसलमानों के लिये कोई ऐसा शासन है जिसका अनुकरण देश के कल्याण, लोकहित, बल्कि भिन्न-भिन्न विरोधी धर्मों में प्रेम और एकता उत्पन्न करने के लिये आवश्यक है, तो वह अकबर का शासन है। इस निरुपम और शुभ शासन काल में मुसलमानों में नेता और मार्गदर्शक अकबर और हिन्दुओं में राजा मानसिंह हैं। कहाँ हैं वे संकुचित विचारवाले और संकुचित हृदयवाले जिन्होंने इस समय सबसे बड़ी देशहितैषिता इसी में निश्चित की है कि दोनों धर्मवालों को आपस में लड़ाया करें और हृदयों में द्वेष और शत्रुता की आग सुलगाया करें। इस समय की सभाओं और समाजों के प्रभाव-शून्य भाषणों आदि से कुछ भी लाभ नहीं हो सकता। जो बात हृदय से नहीं निकलती, वह हृदय पर प्रभाव भी नहीं डाल सकती। तुम अकबर के समय के इन पवित्र-हृदय लोगों के वर्णनों पर विचार करो और इन्हीं को अपना

मार्गदर्शक बनाओ। अकबर और मानसिंह ऐसे व्यक्ति हैं कि यदि इनकी मूर्तियाँ बनवा कर हर जातीय सभा की उनसे शोभा बढ़ाई जाय, तो दोनों दलों में एकता उत्पन्न होने का यह एक अच्छा उपाय है। विशेष ध्यान देने की बात यह है कि मानसिंह ने यह मेल अपने धर्म को पूरी तरह से बनाए रखकर स्थापित किया। यही वह गुण है जो हमारे हृदय में मानसिंह का बहुत अधिक आदर और प्रतिष्ठा स्थापित करता है। भला वह क्या धार्मिकता है जिससे दूसरों के हृदय को दुःख पहुँचता हो! मुसलमानों और हिन्दुओं के धर्मों में हजारों ऐसी बातें हैं जिन्हें दोनों ही पक्ष उत्तम समझते हैं। अतः धार्मिक बनने के लिये ऐसी ही बातों का पालन करना चाहिए। राजा मानसिंह! नैतिक इतिहास में तुम्हारा नाम सुनहले अक्षरों में प्रलय काल तक प्रकाशित रहेगा। नीति और धर्म के सम्बन्ध में निष्पक्षता तुम्हारे शुभ नाम पर सदा फूल और मोती बरसावेगी। तुम्हारा सिर ऐसे फूलों के हारों से सजा है जिनकी सुगन्ध प्रलय काल तक सारे संसार के दिमाग को सुगन्धित रखेगी।

मिरजा अब्दुलरहीम खानखानाँ

सन् ९६४ हि० में बैरमखाँ का बुढ़ापा प्रताप के यौवन में लहलहा रहा था। हेमूँवाले युद्ध में विजय प्राप्त कर ली थी। अकबर शिकार खेलते हुए लाहौर चले आते थे। बुलबुल के गीत के सुरों में किसी ने कहा कि बुढ़ापे के बाग में रंगीन फूल शुभ हो। विजय की प्रसन्नता में यह शुभ समाचार एक शकुन सा जान पड़ा; इसलिये बादशाह ने जशन किया, वजीर ने खजाने

लुटाए और अपने-परायों को पुरस्कार आदि से मालामाल कर दिया। बैरमखाँ को तो सारा संसार जानता है। अब माँ के वंश का हाल भी जान लो जो जमालखाँ मेवाती की कन्या और हसनखाँ मेवाती की भतीजी थी। उसकी बड़ी बहन बादशाह के महल में थी* और छोटी वजीर के अन्तःपुर में। मौसा बादशाह ने स्वयं उसका नाम अब्दुलरहीम रखा। इस शुभ पुत्र का जन्म इसी लाहौर नगर में हुआ था।

यह फूल प्रायः तीन वर्ष तक लाड-प्यार और वैभव की हवा में प्रताप की ओस से खिला और हरा रहा। अचानक पतझड़ की नहूसत ऐसी बगूला बनकर लिपटी कि उसके उपवन को जड़ से उखाड़ कर फेंक दिया और घास-फूस की तरह बहुत दिनों तक इधर-उधर होती रही। कोई नहीं जानता था कि कहीं इसका ठिकाना भी लगेगा या नहीं। हम कागजों के देखनेवाले तरस खाते हैं। फिर भला उसके सम्बन्धियों और शुभचिन्तक सेवकों की क्या दशा हुई होगी! जब वे उसकी और अपनी दशा का स्मरण करते होंगे, तब उनकी छाती पर साँप लोट जाते होंगे कि क्या था और क्या हो गया। पर वास्तविक बात यह है कि इसी प्रकार लोग ऊँचे से नीचे गिरते हैं। यह गिरना उस समय होता है जब वे इतनी ऊँचाई पर पहुँचते हैं कि देखनेवाले आश्चर्य करके कहते हैं कि यह तारा कहाँ से निकल आया।

चाहे ईश्वर घी से तर ग्रास दे और चाहे टुकड़ा, पर पिता

---

* अकबरनामे में तो यही लिखा है। पर आश्चर्य है कि मआसिर उल् उमरा में लिखा है कि बड़ी बहन हुमायूँ को ब्याही गई थी।

का हाथ बच्चे के पोषण का चमचा बल्कि उसके भाग्य का मूल सूत्र होता है। जब बैरमखाँ के प्रताप ने मुँह फेरा, उसके प्रतिद्वन्द्वियों की बातों में आकर अकबर दिल्ली में आ बैठा, तब बैरमखाँ आगरे में रह गए। यहीं से दुर्भाग्य का आरम्भ समझना चाहिए। दशा यह थी कि साथी साथ छोड़कर दिल्ली चले जाते हैं। निवेदनपत्र जाते हैं तो उलटे उत्तर आते हैं। जब निवेदन आदि करने के लिये वकील पहुँचता है, तो वह कैद कर लिया जाता है। दरबार के ढंग वेढब हो रहे हैं। जो समाचार आता है, वह विकट और भीषण। बेचारा निर्दोष बच्चा इन भेदों को न समझता होगा। पर इतना तो अवश्य देखता होगा कि पिता की मजलिस में वह रौनक नहीं है। वह अमीरों और दरबारियों की भीड़-भाड़ क्या हो गई? पिता किस चिन्ता में है कि मेरी ओर देखता भी नहीं?

बेचारा बैरमखाँ क्या करे! कभी बंगाल जाने का विचार करता है और कभी हज जाने के विचार से गुजरात की ओर बढ़ने का। पर उधर मार्ग नहीं पाता। राजपूताने की ओर बढ़ता है। कुछ दिनों तक इधर-उधर घूमता है। अन्त में पंजाब जाता है। कब्बा साथ ठहरा। अपने आपको और अपनी दशा को सँभाले कि बाल-बच्चों को। अन्त में अन्तःपुर के लोगों और जवाहिरखाँ ने तोशाखाने आदि बहुत से सामान और आवश्यक पदार्थों को भटिंडे में छोड़ा और आप पंजाब आया। भटिंडे का हाकिम उसी के नमक से पला था। वह मिट्टी में से उठाया हुआ, हाथों का पाला हुआ, छोटे से बड़ा करके शासन तक पहुँचाया हुआ। उसने भी सम्पत्ति और बाल-बच्चों को अपने अधिकार में

पाकर दरबार में भेज दिया। दिल्ली में आकर सब कैद हो गए। सब सामान बादशाही खजाने में रख दिया गया। वह तीन चार बरस का बच्चा, नित्य की परेशानी, सब वस्तुओं के अभाव, घरवालों के इधर-उधर मारे-मारे फिरने से और नित्य नए-नए नगर और नए-नए जंगल देख कर चकित होता होगा कि यह क्या दशा है और हम कहाँ हैं! मेरी हवा खाने की सवारियों और सब लोगों की सहानुभूति और प्रेम आदि में क्यों अन्तर आ गया। जो लोग मुझे हाथों की जगह आँखों पर लेते थे, वे सब क्या हो गए?

और उस दशा के चित्र से तो रोंगटे खड़े होते हैं कि पिता दरबार से बिदा होकर हज करने चला गया। गुजरात-पटन पर डेरे हैं। अभी सूरज झलकता है। सन्ध्या होना ही चाहती है। लोग सोच यह रहे थे कि अब खानखानाँ आता होगा। इतने में समाचार आया कि वह तो मारा गया। उसके मरते ही सेना में हलचल मच गई। पल के पल में अफगानों ने घर-बार लूट लिया। कोई गठरी लिए जाता है, तो कोई सन्दूक लिए जाता है। किसी ने मसनद घसीट ली, कोई बिछौना ले चला। उस बेचारे मुरदे के कपड़े तक उतार लिए। बिना प्राणों की लाश को कफन कौन पहनावे, जहाँ अपने ही प्राणों का ध्यान नहीं है। वह तीन बरस की जान, भला क्या करता होगा! माँ की गोद में दबक जाता होगा। डरता होगा और दाई के पास छिप जाता होगा। अब वह बेचारियाँ इसे कहाँ छिपा लें? उन्हें आप ही छिपने को जगह नहीं। ईश्वर तू ही रक्षक है। विलक्षण समय होगा। वह रात भी प्रलय की रात रही होगी। दिन चढ़ा तो

यह भी हशर या अन्तिम विचार का। मुहम्मद अमीन दीवाना और जम्बूर आदि लश्करों को लड़ानेवाले थे। इस समय कुछ न बन आई थी। फिर भी वे लोग हजार वार धन्य हैं कि उन्होंने लुटे हुए दल को समेटा है और उड़े हुए अहमदाबाद चले जाते हैं। अवसर पाते हैं तो पलट कर एक हाथ मारते जाते हैं।

उस समय इन टूटे हुए पैरोंवाली स्त्रियों को, जिनमें सलीमा सुलतान बेगम और यह तीन वरस का बच्चा भी सम्मिलित है, ले निकलना ही बहुत है। लुटेरों ने अभी तक पीछा नहीं छोड़ा। पीछे-पीछे लूटने-मारते चले आते हैं। बेचारा निर्दोष बच्चा सहमा हुआ इधर-उधर देखता है और रह जाता है। कौन दिलासा दे ? और यदि कोई दिलासा दे भी तो उससे होता क्या है ! हे ईश्वर, ऐसा समय तुम शत्रुको भी मत देना।

इन विपत्ति के मारे हुए लोगों ने लड़ते-लड़ते अहमदाबाद में जाकर दम लिया। कई दिनों बाद गए हुए होश-हवास ठिकाने आए। परामर्श करके यह निश्चित किया गया कि दरबार के सिवा और कहीं शरण नहीं है। फिर चलना चाहिए। चार महीने के बाद आवश्यक सामग्री एकत्र करके प्रस्थान किया। यहाँ भी समाचार पहुँच गया था। चगताई उदारता और अकबरी क्षमा की नदी में लहर आई। इनके लिये आज्ञापत्र भेजा। खानखानाँ के मरने का शोक और इनके तबाह होने का दुःख था। साथ ही बड़े दिलासे और सान्त्वना के साथ लिखा था कि अब्दुलरहीम को तसल्ली दो; और बहुत खबरदारी और सतर्कता के साथ लेकर दरबार में उपस्थित हो। चित्त को शान्त और धीर करनेवाला यह जन्तर उन्हें जालौर नामक स्थान में मिला

था। बड़ा सहारा हो गया। हिम्मत बँध गई और बादशाह की सेवा में उपस्थित हुए।

इस दल के वास्ते वह समय बहुत ही निराशा और आश्चर्य का हुआ होगा, जिस समय बाबा जम्बूर विपत्ति के मारे हुए इन सब लोगों को लेकर आगरे पहुँचे होंगे। स्त्रियों को महल में उतारा होगा। इस अनाथ बच्चे को, जिसका पिता किसी दिन दरबार का मालिक था, बादशाह के सामने लाकर छोड़ दिया होगा। अन्दर भग्न-हृदय स्त्रियों के मन में धुकुड़-पुकुड़ हो रही होगी। बाहर उसके पुराने नमक खानेवाले ईश्वर से प्रार्थनाएँ करते होंगे। कहते होंगे कि हे ईश्वर, इसके पिता ने दरबार की जो-जो सेवाएँ की हैं, उन्हें तू बादशाह की दृष्टि में ला। अन्त समय में इसके बाप ने जो कुछ किया है, वह इस समय भुला दे, जिससे बादशाह इस निर्दोष बच्चे पर और हम लोगों की दशा पर दया करें। हे ईश्वर, सारा दरबार शत्रुओं से भरा है। इस बिना बाप के बच्चे का कोई नहीं है। हमारे जीवन और भविष्य के कल्याण का सहारा कौन है। अगर है तो इसी बच्चे की जान है। तू ही इसे उन्नति के शिखर पर बढ़ावेगा और तू ही इस बेल को मँढ़े चढ़ावेगा।

चगताई वंश में इन थोड़े से बादशाहों की बातें क्षमा-प्रदान के विषय में बहुत प्रशंसा के योग्य हैं। यदि शत्रु भी सामने आता था, तो आँखें झपक जाती थीं। बल्कि उसकी जगह स्वयं लज्जित हो जाते थे। उसके अपराधों की कोई चर्चा ही नहीं होती थी। भला यह तो अबोध बच्चा था और वह भी बैरम का लड़का। जिस समय लोग उसे सामने लाए, उस

समय अकबर की आँखों में आँसू भर आए। गोद में उठा लिया। उसके नौकरों के लिये वृत्तियाँ और वेतन यथेष्ट नियत किए और कहा कि इसके सामने कोई खान बाबा की चर्चा न किया करे। बच्चा है, मन में बहुत दुःखी होगा। बाबा जम्बूर ने कहा कि हुजूर, ये बार-बार पूछते हैं, रात के समय चौंक उठते हैं। कहते हैं कि कहाँ गए। अब तक क्यों नहीं आए। अकबर ने कहा कि कह दिया करो कि हज करने गए हैं। ईश्वर के घर में पहुँच गए। बच्चा है। बातों में बहला लिया करो। देखो, इसे सब प्रकार से प्रसन्न रखो। इसे यह पता न लगे कि खान बाबा सिर पर नहीं हैं। बाबा जम्बूर, यह हमारा बेटा है। इसे हमारी दृष्टि के सामने रखा करो।

सन् ९६९ हि० में जब यह दया का पात्र बालक अकबर के दरबार में पहुँचा था, उस समय इसके पिता के घोर शत्रु साम्राज्य के स्तम्भ हो रहे थे। या तो स्वयं वे लोग और उनकी खुशामद करनेवाले सदा अकबर की सेवा में उपस्थित रहा करते थे। प्रायः ऐसी ही बातें छिड़ा करती थीं जिनसे बैरमखाँ की बातें अकबर को स्मरण हो आवें और उसका मन इन लोगों की ओर से खटक जाय। उनमें से अनेक लोग तो ऐसे भी थे जो खुल्लम खुल्ला समझाते थे। पर अकबर का हृदय शुद्ध था और इस बालक का प्रताप था जिससे कुछ भी नहीं होता था। बल्कि दूसरे लोगों के मन में भी इन बातों से दया उत्पन्न होती थी। अकबर उसे मिरजा खाँ कहा करता था; और आरम्भिक वर्णन में इतिहास-लेखक इसे प्रायः मिरजा खाँ ही लिखते हैं।

यह होनहार बालक अकबर की छाया में पलने और बढ़ने लगा। बड़ा होकर यह ऐसा निकला कि इतिहास-लेखक इसकी विद्या सम्बन्धी योग्यता की साक्षी देते हैं। बल्कि इसकी विद्वत्ता से बढ़कर वे इसकी बुद्धिमत्ता या विचार-शीलता और स्मरण-शक्ति की प्रशंसा करते हैं। किसी ने स्पष्ट और विस्तृत रूप से यह नहीं बतलाया कि अब्दुल रहीम ने कौन-कौन सी विद्याएँ और कलाएँ आदि सीखी थीं अथवा किस प्रकार और कहाँ तक विद्या का अध्ययन किया था। लक्षणों से जान पड़ता है कि इसने अपने जीवन का आरम्भिक समय दूसरे अमीरों के लड़कों की तरह खेल-कूद में नष्ट नहीं किया; क्योंकि जब यह बड़ा हुआ, तब विद्वानों का बहुत बड़ा गुणग्राहक हुआ। लेखकों और कवियों से बहुत प्रेम रखता था। स्वयं भी अच्छा कवि था। अरबी भाषा का ज्ञाता था और उसमें बहुत अच्छी तरह बात-चीत करता था। तुरकी और फारसी भाषाएँ भी, जो बाप-दादा से उत्तराधिकार के रूप में मिली थीं, नहीं छोड़ीं। प्रत्येक बात का तुरन्त उत्तर देता था; बातें हास्य-रस से पूर्ण होती थीं। उनमें बहुत बारीकी होती थी; और सभी विषयों पर बहुत अच्छी तरह बातें करता था। संस्कृत में भी अच्छी योग्यता प्राप्त की थी। युद्ध विद्या में भी इसकी योग्यता बहुत अधित और उच्च कोटि की थी।

इसके साथ कुछ ऐसे लोग थे जो इसके पिता के परम निष्ठ और जान निछावर करनेवाले सेवक थे। वे प्रेम की शृंखलाओं से जकड़े हुए थे और अपने भाग्य को इस होनहार प्रतापी के हाथ बेचे हुए बैठे थे। उन्हें यह आशा थी कि कभी तो इसके यहाँ से वर्षा होगी और हमारे घर पर भी नाले गिरेंगे। अन्तःपुर

में कुछ भले घर की महिलाएँ भी थीं जो दीनता और विवशता की चादर में लिपटी हुई बैठी थीं। कामनाएँ, आशाएँ और निराशाएँ उनके विचारों में इन्द्रजाल का सा कौतुक करती होंगी; कभी उन्हें बनाती होंगी और कभी बिगाड़ती होंगी। बादशाह का दरबार भी ईश्वर के यहाँ की अद्भुत वस्तुओं का संग्रहालय था। अमीर और सरदार वहाँ से रत्नों की पुतलियाँ बनकर निकलते थे। इसके साथी देखते थे और रह जाते थे। मन में कहते थे कि इसका पिता भी किसी दिन जिसे चाहता था, उसे रत्नों और मोतियों में छिपा देता था। भला ईश्वर करे कि लड़का उस प्रकार के पुरस्कार पानेवाले लोगों में ही सम्मिलित हो जाय। उस ईश्वर में सब सामर्थ्य है। यदि वह चाहे तो फिर वही तमाशा दिखला सकता है। दिन-रात, सवेरे-सन्ध्या, आधी रात अर्थात् हर समय उनके हाथ आकाश की ओर ही रहते थे और उनका ध्यान सदा ईश्वर की ओर रहता था। वे अपने मन में कह रहे थे कि ईश्वर करे, ऐसा ही हो। ईश्वर करे, ऐसा ही हो।

मिरजाखाँ बहुत ही सुन्दर और रूपवान् था। जिस समय बाहर निकलता था, उस समय लोग देखते रह जाते थे। जो लोग नहीं जानते थे, वे खाह मखाह पूछते थे कि यह किस अमीर का लड़का है। चित्रकार उसके चित्र बनाते थे और उन चित्रों से अमीर लोग अपने मकान और दीवानखाने सजाते थे। बादशाह भी उसे अपने दरबार और सभा का शृंगार समझते थे। बैरमखाँ की कृपा से खाने-पीने और रहनेवाले आदमी सैकड़ों नहीं बल्कि हजारों थे। कोई तो परम निष्ठ था। किसी पर समय ने विपत्ति ढाई थी। कोई विद्वान् था, कोई कवि और कोई

परम गुणी था। जो इसे देखता और इसका नाम सुनता था, वही आकर आशीर्वाद देता हुआ बैठता था। और उसके छोटे से दीवानखाने की साधारण दशा देखकर उसके पिता के वैभव और उपकारों का स्मरण करता था और आँखों में आँसू भर लाता था। उन लोगों की एक-एक बात उसके और उसके साथियों के लिये मरसिए या उस कविता का काम करती थी, जो किसी मृत व्यक्ति की मृत्यु पर दुःख प्रकट करने के लिये और उसके गुणों का कीर्तन करने के लिये होती है। और उनकी वह बात रक्त को आँसू बनाकर बहानेवाली होती थी।

जब कभी यह बादशाह के साथ दिल्ली, आगरे या लाहौर आदि जाता था, तब-तब बुड्ढे-बुड्ढे कला-कुशल अनेक प्रकार के उपहार, चित्रकार लोग चित्र और माली लोग डालियाँ लेकर इसके यहाँ आते थे। उस समय इसके अन्तःपुर में दो प्रकार के भाव उत्पन्न होते थे। एक तो इस बात का दुःख और पश्चात्ताप होता था कि हाय, हम इन लोगों से क्या लें, जब कि इनके लानेवालों को उनकी योग्यता के अनुसार कुछ दे न सकें। और कभी उन लोगों का ये सब पदार्थ लेकर आना एक शुभ शकुन का रंग दिखलाता था। मन में विचार आता था कि इन उपहारों की चमक-दमक से जान पड़ता है कि कभी हमारा भी रंग पलटेगा; और हमारे मुरझाए हुए हृदय पर भी प्रफुल्लता की ओस छिड़की जायगी।

अकबर बहुत अच्छी तरह जानता था कि माहम के वंश तथा पक्ष के अमीरों और सरदारों में से कौन-कौन से ऐसे लोग हैं जो इसके पिता से व्यक्तिगत द्वेष रखते हैं। इसलिये उसने खान आजम मिरजा अजीज कोकलताश की बहन माह बानो बेगम के

साथ मिरज़ाखाँ का विवाह कर दिया। इसमें उसका यह उद्देश्य था कि इसको हिमायत के लिये भी दरबार में प्रभाव उत्पन्न हो और बढ़े।

सन् ९७३ हि० में इसके सौभाग्य के क्षेत्र में एक शुभ शकुन की ज्योति दिखलाई पड़ी। अकबर उस समय खान आजम पर चढ़ाई करने गया हुआ था। उसने अपने अपराधों के लिये क्षमा-प्रार्थना की। उधर पंजाब से समाचार पहुँचा था कि मुहम्मद हकीम मिरज़ा काबुल से सेना लेकर आया है और लाहौर तक पहुँच गया है। अकबर ने खानजमाँ के अपराध क्षमा करके उसका देश उसी के पास रहने दिया और स्वयं पंजाब का प्रबन्ध करने के लिये चला। मिरज़ाखाँ को खिलअत और मन्सब प्रदान करके मुनइमखाँ की उपाधि दी (यद्यपि मुनइमखाँ उस समय स्वयं जीवित और उपस्थित था); और कुछ बुद्धिमान् अमीरों के साथ आगरे जाने के लिये विदा किया जिसमें वे लोग राजधानी में पहुँच कर वहाँ की व्यवस्था और रक्षा का पूरा-पूरा प्रबन्ध करें।

हमारी समझ में इसमें दो गुप्त उद्देश्य थे। एक तो यह कि सुननेवाले लोग आकृति नहीं देखते, जो वे यह कहें कि बुड्ढा मुनइमखाँ नौ बरस का कैसे हो गया। हाँ, लोगों पर आतंक छा गया कि पुराना और अनुभवी काम करनेवाला घर पर उपस्थित है। खानखानाँ शब्द भी बहुत अच्छा है। पिता और पुत्र में कुछ बहुत बड़ा अन्तर नहीं है। जरा साम्राज्य की नीति तो देखो। यही पेच हैं जिन्हें आजकल लोग "पालिसी" कहते हैं। यदि किसी नीति का आधार कोई अच्छा कार्य और अच्छा विचार हो तो वह असत्यता से युक्त नीति भी अच्छी ही है। हाँ, यदि

उसकी जड़ में स्वार्थ और लोक-पीड़न हो, तो वह छल और क़पट है।

इसके सौभाग्य के उदय या वीरता के गुण की चमक हि० तेरहवीं शताब्दी (?) में सभी छोटे बड़ों की दृष्टि में आई, जब सन् ९८० हि० में खान आजम मिरजा अजीज कोका अहमदाबाद गुजरात में घिर गया और अकबर दो महीने का मार्ग सात दिन में चलकर गुजरात में जा खड़ा हुआ। बड़े-बड़े पुराने और अनुभवी सरदार रह गए। भला तेरह बरस के लड़के की क्या बिसात थी। वह बराबर बादशाह के साथ था। उसके मन का आवेश और वीरता की उमंग देखकर अकबर ने उसे लश्कर के मध्य भाग में स्थान दिया था जो अच्छे सेनापतियों के लिये उपयुक्त होता है।

अब वह इस योग्य हुआ कि हर समय दरबार में उपस्थित रहने लगा और बादशाह के अनेक कार्य करने लगा। प्रायः कामों के लिये बादशाह की जबान पर इसी का नाम आने लगा और इसकी जेब भी हाथ डालने के योग्य (अर्थात् भरी हुई) रहने लगी। अनुभवी नवयुवकों, सुनते हो? इसके लिये यही समय नाजुक था। स्मरण रहे कि अमीरों और भले आदमियों के लड़के जो कुमार्गगामी होते हैं, उनके बिगड़ने का पहला स्थान यही है। हाँ, चाहे इसे उसका सौभाग्य कहो और चाहे उसके पिता की अच्छी नीयत कहो, यही अवसर उसके लिये उन्नति के आरम्भ का बिन्दु हुआ। मैंने बड़े लोगों से सुना है और स्वयं भी देखा है कि पिता का किया हुआ पुत्र के आगे आता है और पिता के विचारों का फल पुत्र को अवश्य मिलता

है। जो रुपया मिरजाओं के पास आता था, उससे वह अपने दस्तरख्वान का विस्तार करता था—लोगों को खूब खिलाया-पिलाया करता था। वह अपनी शान, सवारी और दरबारी रौनक बढ़ाता था। बड़े-बड़े विद्वान् और गुणी आते थे। अब्दुलरहीम उन्हें पुरस्कार तो नहीं दे सकता था, पर जो कुछ देता था, वह इतनी सुन्दरता से देता था कि उसके छोटे-छोटे हाथों का दिया हुआ पुरस्कार लेनेवालों के हृदय पर बड़े-बड़े पुरस्कारों का सा प्रभाव उत्पन्न करता था। इसका वर्णन करते समय इसके निष्ठ सेवकों और नमक खानेवालों को न भूलना चाहिए और उनकी भी प्रशंसा करनी चाहिए। क्योंकि यह इनकी व्यवहार-कुशलता और योग्यता की परीक्षा का समय था जिसकी वे वर्षों से प्रतीक्षा कर रहे थे। इसमें सन्देह नहीं कि वे लोग परीक्षा में पूरे उतरे। यह उन्हीं की बुद्धिमत्ता थी कि हर काम में थोड़ी सी चीज में बहुत बड़ा फैलाव दिखलाते थे। वे रुपए खर्च करते थे और अशर्फियों के रंग दिखाई पड़ते थे। और यही सब बातें थीं जो उस समय अमीरों के वास्ते दरबार में मन्सब आदि की वृद्धि के लिये उनकी सिफारिश करती थीं। एशियाई शासनों का यह एक प्राचीन नियम था कि जिस आदमी का ठाठ-बाट अमीरों का सा देखते थे और जिस आदमी के यहाँ बहुत से लोगों को खाते-पीते देखते थे, उसी की अधिकतर और जल्दी-जल्दी उन्नति और पद-वृद्धि करते थे।

सन् ९८३ हि० में अकबर ने अहमदाबाद का शासन मिरजा को सौंपना चाहा, पर वह हठी अमीरजादा अड़ गया और बिगड़ बैठा कि मुझे यह बात कदापि स्वीकृत नहीं है।

उक्त स्थान सीमा पर का था और वहाँ सदा विद्रोहों और उपद्रवों की घुड़दौड़ हुआ करती थी। अकबर ने वह सेवा इस नवयुवक को प्रदान की और इसने बहुत ही धन्यवादपूर्वक वह स्वीकृत की। उस समय इसकी अवस्था उन्नीस बीस वर्ष की रही होगी। बादशाह ने नीचे लिखे चार अनुभवी अमीर उसके साथ कर दिए जो बहुत दिनों से अकबर के दरबार का नमक खाकर पले थे। साथ ही इसे समझा दिया कि अभी तुम्हारी युवावस्था है और तुम्हें यह पहली पहली सेवा मिल रही है। इसलिये जो काम करना, वह वजीरखाँ के परामर्श से करना; क्योंकि वह इस वंश का बहुत पुराना सेवक है। मीर अलाउद्दीन क़िजवीनी को आईनी के पद पर नियुक्त किया और प्रयागदास को, जो हिसाब-किताब के काम में अपना जोड़ नहीं रखता था, दीवानी दी; और सैयद मुजफ्फर बारहा को सेना की बख्शीगिरी पर नियत किया।

सन् ९८६ हि० में शहबाजखाँ राणा के कोमलमेर इलाके पर सेना लेकर चढ़ा। मिरजाखाँ उसके कहने पर उसकी सहायता करने के लिये पहुँचे। कोमलमेर का किला, कोकन्दाक किला और उदयपुर बादशाही सेना के अधिकार में आ गया। राणा पहाड़ों में भाग गया। शहबाजखाँ बाज की तरह उड़ा और दो घोड़ेवाले सवारों को लिये उसके पीछे-पीछे अकेला ही बहुत घूमा, पर वह हाथ न आया। हाँ, उसके दो घोड़ोंवाले सिपाहियों का प्रधान अधिकारी पकड़ा गया और लाकर दरबार में हाजिर किया गया और उसका अपराध क्षमा हुआ।

खानखानाँ कभी तो अपने इलाके में और कभी दरबार में

अनेक प्रकार की सेवाएँ किया करता था और अपनी योग्यता दिखलाता था। सन् ९८८ हि० में उसके सन्तोष, दयालुता, विश्वास और साहस पर दृष्टि रखकर उसे अर्ज-बेगी की सेवा सौंपी गई। इस पद पर रहनेवाले को अभिलाषियों के निवेदन बादशाह की सेवा में उपस्थित करने पड़ते थे; और बादशाह उन निवेदनों पर जो आज्ञा देते थे, वह आज्ञा उन लोगों तक पहुँचानी पड़ती थी।

इसी सन् में अजमेर के इलाके में उपद्रव हुआ। अजमेर का सूबेदार रुस्तमखाँ मारा गया। उसमें कछवाहे राजाओं की उद्दंडता भी सम्मिलित थी। वे राजा लोग राजा मानसिंह के भाई-बन्द थे। अकबर को हर एक बात के हर एक अंग का ध्यान रहता था। इसलिये रणथम्भौर खानखानाँ की जागीर में देकर आज्ञा दी कि वहाँ जाकर उपद्रव शान्त करो और उपद्रवियों को उपद्रव करने के लिये दंड दो।

सन् ९९० हि० में जब शाहजादा सलीम अर्थात् जहाँगीर की अवस्था बारह-तेरह वर्ष की हुई होगी और खानखानाँ अट्ठाइस बरस का रहा होगा, खानखानाँ को शाहजादे का शिक्षक नियुक्त किया।

मैं प्रायः रियासतों के सम्बन्ध में सुना करता हूँ कि वहाँ का राजा छोटी अवस्था का है। सरकार ने अमुक व्यक्ति को उसका शिक्षक या ट्यूटर (Tutor) नियुक्त करके भेजा है। इस अवसर पर अवश्य कुछ मिनट ठहरना चाहिए और उस समय के शिक्षक की आज-कल के ट्यूटर से तुलना करके देखनी चाहिए। यह देखना चाहिए कि प्राचीन काल में बादशाह लोग

किसी शिक्षक में क्या-क्या गुण देखते थे। आज-कल सरकार जो बातें देखती है, वह तो सब लोग देख ही रहे हैं। पुराने समय के लोग सबसे पहले तो यह देखते थे कि शिक्षक स्वयं रईस हो और उत्तम तथा रईस वंश का हो। रईस का शब्द ही आज तक सब लोगों की जबान पर है। मगर मैं देखता हूँ कि उस समय के रईस का स्वरूप दिखलाने के लिये बहुत विस्तृत व्याख्या करने की आवश्यकता है। हमारे समय के शासक लोग तो इससे इतना ही अभिप्राय रखते हैं कि किसी व्यक्ति ने हब्श या काबुल की लड़ाई में जाकर कभी किसी सड़क या इमारत का ठेका लेकर या कभी नहर की नौकरी करके बहुत सा धन कमा लिया है। वह अपने घर में बैठा हुआ है। बग्घी में चढ़कर हवा खाने के लिये निकलता है। जब विलायत से युवराज आते हैं या कोई लाट साहब जाते हैं या कमिश्नर साहब एक गंज बनाते हैं, तो उसमें सबसे अधिक चन्दा देता है। यही सरकार में रईस माना जाता है और इसे दरबार में कुरसी मिलने की भी आज्ञा है। डिप्टी कमिश्नर साहब ने एक ऐसी मोरी निकाली जिससे नगर की सारी गन्दगी निकल जाय। इसने उसमें पहले से भी अधिक चन्दा दिया। इसलिये यह बहुत बड़ा और उदार रईस है। इसे खान बहादुर या राय बहादुर की उपाधि भी मिलनी चाहिए। और यह म्युनिसिपल मेम्बर भी हो, और आनरेरी मजिस्ट्रेट भी हो। यदि तहसीलदार या सरिश्तेदार यह सूचित करता है कि हुजूर, इससे कुलीनों और वास्तविक रईसों के हृदय पर चोट पहुँचेगी, तो साहब लोग कहते हैं कि वेल, यह हिम्मतवाला लोग है। यह रईस है। अगर वह लोग भी रईस होना चाहते हैं,

तो हिम्मत दिखलावें। हम इसको सितारे हिन्द बनावेंगे। तब वह लोग देखेंगे। नए रईस की यह शान है कि जब घर से निकलते हैं, तो चारों ओर देखते रहते हैं कि हमें कौन-कौन सलाम करता है और सब लोग क्यों नहीं सलाम करते। विशेषतः जिसे कुलीन देखते हैं, उसे और भी अधिक दबाते हैं और समझते हैं कि हमारी रईसी तभी प्रमाणित होगी, जब ये झुककर हमें सलाम करेंगे। अब नगर की मजिस्ट्रेटी उनके हाथ में है। सबको झुकना ही पड़ता है। न झुकें तो रहें कहाँ। पर उनके अभिमान और आडम्बर और बार-बार दिखाव दिखाने से केवल कुलीन लोग ही तंग नहीं होते, बल्कि महल्लेवाले भी तंग रहते हैं। जिन लोगों ने वास्तविक कुलीनों के पूर्वजों को देखा है, वे उन्हें स्मरण करके रोते हैं। और जो लोग उन्हें भूल गए थे, उनके हृदय में प्रेम के मिटे हुए अक्षर फिर से स्पष्ट हो जाते हैं। पारखी लोगों ने ऐसे रईसों का अँगरेजी रईस और अँगरेजी शरीफ नाम रक्खा है।

आज-कल कभी-कभी रईस शब्द समाज में हमारे कानों तक पहुँचता है। यह बात भी सुनने के योग्य है। मान लीजिए कि अच्छे कपड़े पहने हुए दो वृद्ध सज्जन किसी समाज या जलसे में आए। एक मीर साहब हैं और दूसरे मिरजा साहब हैं। आइए, तशरीफ रखिए! मीर साहब वहाँ के उपस्थित लोगों से कहते हैं कि जनाब, आपने हमारे मिरजा साहब से मुलाकात की? जी नहीं; मुझे तो मुलाकात का मौका नहीं मिला। जनाब, आप देहली के रईस हैं। मिरजा साहब एक ओर देखकर कहते हैं—जनाब, हमारे मीर साहब से अब तक आपकी मुलाकात नहीं हुई? जी नहीं, बन्दे को तो ऐसा मौका नहीं मिला। अजी आप लखनऊ के

रईस हैं। अब लखनऊ में जाकर पूछिए कि मीर साहब कहाँ रहते हैं ? कुछ हो तो पता लगे। माँ टेनी, बाप कुलंग। बच्चे देखो रंग-बिरंग। लाहौल विला कूवत इल्ला बिल्ला ! मिरजा साहब को देहली में ढूँढ़िए तो बाप बवनियाँ, माँ पदनियाँ, मिरजा मननियाँ। नई रोशनी, असलियत का यह अन्धेर ! जो चाहे, सो बन जाय।

अब जरा यह भी सुन लो कि पुराने जमाने के वृद्ध लोग किसको रईस कहते थे और पुराने समय के बादशाह लोग रईसों पर क्यों जान देते थे। (१) मेरे मित्रो, तुम्हारे पूर्वज उसको रईस कहते थे जिसका मातृकुल और पितृकुल दोनों ही अच्छे और उत्तम होते थे। उन पर यह कलंक न हो कि माँ दासी थी या दादा ने घर में डोमनी रख ली थी। याद रखना कि चाहे कोई कितना ही बड़ा धनवान और सम्पन्न क्यों न हो, पर दोगले आदमी की लोगों की दृष्टि में प्रतिष्ठा नहीं होती थी। जरा सी बात देखते हैं तो साफ कह बैठते हैं कि मियाँ, क्या है। आखिर तो डोमनी-बच्चा है। एक कहता है कि मियाँ, नवाबजादा है तो क्या हुआ ! पर लौंडी की यही तो रग है। उसका असर जरूर ही आवेगा। बिना आए रह ही नहीं सकता।

(२) रईस के लिये यह भी आवश्यक था कि वह भी और उसके पूर्वज लोग भी धनवान् और सम्पन्न हों। वे दान देने में बहुत उदार हों और लोगों का हाथ उनके दानशील हाथ के नीचे रहा हो। यदि कोई दरिद्र का लड़का था और अब धनवान हो गया तो कोई उसका आदर न करेगा। उसे कुछ भी न समझेगा। वह यदि ब्याह-शादी के अवसर पर किसी को खिलाने-पिलाने के

समय या लेने-देने में बल्कि एक मकान बनाने में जान-बूझ कर किसी अच्छे हेतु से भी कुछ कम खर्च करेगा, तो कहनेवाले अवश्य कह देंगे कि साहब यह क्या जाने। कभी इसके बाप-दादा ने किया होता तो यह भी जानता। कभी कुछ देखा होता तो जानता।

(३) उसके लिये यह भी आवश्यक होता था कि स्वयं उदार हो, खाने-खिलानेवाला हो, दूसरों को लाभ पहुँचानेवाला और उनका उपकार करनेवाला हो। यदि वह कंजूस होगा और अधिकार-सम्पन्न होने पर भी उसके द्वारा लोगों को कोई लाभ न पहुँचेगा, तो कोई उसे कुछ भी न समझेगा। सब लोग साफ कह देंगे कि यदि उसके पास धन है तो अपने घर में लिए बैठा रहे। हमें क्या है!

(४) उसके लिये यह भी आवश्यक था कि उसका आचरण और व्यवहार आदि बहुत अच्छा हो। जिस आदमी का आचरण अच्छा नहीं होता, वह चाहे लाख धनवान हो, पर लोगों की दृष्टि में वह घृणित और तुच्छ ही होता है। उसका धन लोगों की आँखों में नहीं जँचता। लोग उसपर भरोसा नहीं करते।

अच्छा, इन बातों से अभिप्राय यही था कि प्राचीन काल के बादशाह लोग किसी आदमी में यही सब गुण ढूँढते थे। बात यह है कि जो व्यक्ति इन गुणों से युक्त होकर अमीर होगा, उसके बाप-दादा भी अमीर होंगे। उसकी बातों और उसके कामों का सब लोगों की दृष्टि में और हृदय में भी बहुत आदर और मान होगा। सब लोग उसका लिहाज करेंगे। उसके कहने के विरुद्ध आचरण करना उन्हें अन्दर से सह्य न होगा। ऐसे

एक आदमी को अपना कर लेना मानों बहुत से लोगों के समूह पर अधिकार कर लेना है। वह जहाँ जा खड़ा होगा, वहाँ बहुत से लोग भी उसके पास आ खड़े होंगे। समय पर राज्य के जो काम उस से निकलेंगे, वह कमीने अमीर से नहीं निकलेंगे। भला कमीने का साथ कौन देता है! और जब यह बात नहीं, तो फिर बादशाह उसे लेकर क्या करे!

(५) उसके लिये यह भी आवश्यक होता था कि चाहे विद्या की दृष्टि से वह बहुत बड़ा विद्वान् या पंडित न भी हो, पर देश की विद्या सम्बन्धी भाषाओं का अवश्य ज्ञाता हो। यदि एशियाई देशों में है तो अरबी और फारसी भाषाओं की साधारण पुस्तकें अवश्य पढ़ा हो। प्रसिद्ध विद्याओं और कलाओं की प्रत्येक शाखा का उसे ज्ञान हो। उसे उत्तम कोटि के कौशल का अनुराग हो; और जब उसकी चर्चा होती हो, तो उससे उसे आनन्द आता हो। जिसे विद्याओं और गुणों आदि का ज्ञान न होगा, जिसे इन सब बातों में आनन्द न आता होगा और जिसका हृदय तथा मस्तिष्क इस प्रकाश से प्रकाशमान न होगा, वह शिष्य के मस्तिष्क को क्या प्रकाशमान करेगा! जिसको बहुत बड़े देश का बादशाह होना है और अनेक देशों तथा देशवासियों का रंजन करना है, उसका शिक्षक यदि ऐसा होगा जो विद्या सम्बन्धी चर्चा से प्रसन्न होता होगा और ज्ञान की बात सुनकर जिसका मन और अधिक सुनने को चाहता होगा, तो शिष्य के हृदय पर भी उसका अच्छा प्रभाव पड़ सकेगा और उसके यहाँ सदा उसकी मनोरंजक चर्चा होती रहेगी। यदि स्वयं ही उसे इन सब बातों में वास्तविक आनन्द न आता होगा तो रूखे-सूखे और खाली विषयों की

रचकर न वह शिष्य के हृदय को अपनी ओर क्या अनुरक्त करेगा ! और वह अनुरक्त ही कब होगा ! विद्या सम्बन्धी विषय उनके सामने ऐसे अच्छे ढंग से उपस्थित करने चाहिएँ, जैसे अच्छा स्वादिष्ट पदार्थ खाकर या अच्छी सुगन्धि सूँघ कर या सुन्दर फूल देख कर आनन्द आता है, वैसे ही विद्या विषयक बातें सुन कर भी आनन्द आवे। और तुम स्वयं समझ लो कि जब तक विद्या में आनन्द न हो, तब तक कुछ आना सम्भव ही नहीं। जिसमें यह बात नहीं, वह विद्या का क्या आदर करेगा। और उनके यहाँ विद्वानों का क्या आदर होगा ! और वह अपने देश में विद्या और कलाओं आदि का क्या प्रचार कर सकेगा ! गुणी लोग उनके दरबार में क्या एकत्र हो सकेंगे ! और जब यह बात नहीं, तो फिर राज्य ही नहीं।

उस समय धर्म और विद्या की भाषा अरबी थी। अर्द्ध-साहित्यिक अर्थात् दरबारी दफ्तरों की और पत्र-व्यवहार आदि की भाषा फारसी थी। तुरकी का बड़ा आदर था और उससे बहुत कुछ काम भी निकलता था। वह उन दिनों वैसी ही थी, जैसी आज-कल अँगरेजी है, क्योंकि वह उस समय के बादशाहों की भाषा थी। सब अमीर लोग एशियाई कोचक के रहनेवाले थे। उनकी भी और सैनिकों की भाषा भी तुरकी थी। ईरानी लोग भी तुरकी बोलते थे। और तुरकी समझते तो सभी लोग थे। स्वयं अकबर बहुत अच्छी तरह तुरकी बोलता था। यद्यपि खानखानाँ का जन्म इसी देश में हुआ था और उसका पालन-पोषण भी यहीं हुआ था, पर फिर भी तुरकमान की हड्डी थी। अपने पिता के नमक-हलाल और निष्ठ सेवकों की गोद में उसका

पालन-पोषण हुआ था। इसलिये वह भी तुरकी बहुत अच्छी तरह बोलता था।

यह भी सुन लो कि तुम्हारे पूर्वज लोग किसी को किसी भाषा का अच्छा ज्ञाता तभी समझते थे, जब वह उस भाषा के बोलनेवालों के साथ उठने-बैठने में केवल बात-चीत और लिखा-पढ़ी ही नहीं कर लेता था, बल्कि उतनी ही अच्छी तरह और अभ्यास के साथ बातें कर सकता था, जितनी अच्छी तरह और मुहावरेदार उस भाषा के भाषी लोग बोलते हैं। यह नहीं कि नवाब साहब अरबी जानते हैं। दो-चार उलटे-सीधे वाक्य याद कर लिए। कभी कुछ आयँ बायँ शायँ बक दिया और भाषा के ज्ञाता हो गए। साहब, आप कितनी भाषाएँ जानते हैं? जी, मैं पैंतिस भाषाएँ जानता हूँ। बात करो तो एक वाक्य शुद्ध नहीं बोल सकते। लिखवाओ तो एक पंक्ति भी ठीक नहीं लिख सकते। एक सज्जन ने मुलतान की भाषा में बात-चीत करना सिखलाने के लिये एक पुस्तक बनाई और उसके लिये दो हजार रुपए का पुरस्कार पाया। यदि मुलतानी भाषा में स्वयं उनकी बात-चीत सुनो, तो बस मारे आश्चर्य के चुप ही रह जाओ। एक महाशय ने बलोची भाषा की एक पुस्तक बनाई थी। बात करो तो बस कुछ भी नहीं। उस समय के लोग इसे भाषा-ज्ञान नहीं कहते थे।

मेरे मित्रो, शिक्षक की योग्यता की बात के साथ इतना और स्मरण रक्खो कि वह केवल पढ़ा ही न हो। वह पढ़ा भी हो और साथ ही गुना भी हो। तुम पूछ सकते हो कि पढ़ना क्या है और गुनना क्या है? पढ़ना तो यही है कि पुस्तक के

हुये हैं जो कागज सफेद हैं, उन पर स्याही ने जो कुछ लिखा है, उसे पढ़ लिया। और गुनना मैं तुम्हें क्या बतलाऊँ। वह तो एक ऐसी बात है कि जिसका किसी प्रकार वर्णन हो ही नहीं सकता। पंडित होना सहज है, पर मनुष्य होना कठिन है।

अच्छा, मैं गुने हुए लोगों के कुछ पते बतला देता हूं। बस उन्हें समझ लो। फिर गुने हुए लोगों को तुम स्वयं पहचान लोगे। देख लो कि वे-गुने लोग यही हैं जिन्हें तुम देखते हो कि पृष्ठ के पृष्ठ पुस्तकें पढ़ते हुए चले जाते हैं। किसी बेचारे को छींक आई और कह दिया कि यह तो काफिर है। किसी ने भोजन करके डकार लिया, तो कह दिया कि यह काफिर है। छीः छीः। ईमान या धर्म क्या हुआ कि कच्चा सूत हो गया! जरा सी ठेस लगी और टूट गया। यदि ऐसा शिक्षक हो तो एक सप्ताह में सारे देश की सफाई हो जाय। बस केवल शिक्षक रहे और उनका शिष्य रहे। और सब ईश्वर का नाम ही बचा रह जाय!

पुराने समय के बादशाह और अमीर लोग विद्याओं के अन्तर्गत नीति या व्यवहार शास्त्र, इतिहास-ज्ञान, गणित और फलित ज्यौतिष, रमल, कवित्व, लेखन-कला, सुन्दर अक्षर लिखने की विद्या, चित्रकारी आदि-आदि विद्याओं और कलाओं को उनका बहुत ही आवश्यक अंग समझते थे और इसी लिये ये सब विद्याएँ और कलाएँ पूरा-पूरा परिश्रम और प्रयत्न करके सीखते थे। और जो लोग इन विषयों का पूरा और अच्छा ज्ञान रखते थे, उनका वे बहुत अधिक आदर और सम्मान करते थे। वे स्वयं भी या तो इन विद्याओं और कलाओं का पूरा-पूरा ज्ञान प्राप्त करते थे और या, साधारण ही सही, पर फिर भी बहुत कुछ

ज्ञान प्राप्त करते थे; और वह इसलिये कि वे स्वयं भले और बुरे की परख कर सकें। घोड़े पर चढ़ना, तीर चलाना, भाला चलाना, तलवार चलाना आदि-आदि सैनिक कलाओं में वे बहुत उच्च कोटि का अभ्यास करते थे। आखेट या शिकार को उन लोगों ने अपने अभ्यास का साधन बना रखा था। परन्तु ये सब गुण अकबर के समय तक ही उपयोग में आते रहे; क्योंकि वही था, जो स्वयं चढ़ाइयाँ करके सेनाएँ ले जाता था और अचानक शत्रु की छाती पर जा खड़ा होता था। युद्ध-क्षेत्र में वह स्वयं खड़ा होकर सेनाओं को लड़ाता था। वह स्वयं तलवार पकड़ कर आक्रमण करता था, नदी में घोड़ा डालता था और पार उतर जाता था। उसकी तरह से फिर और कोई बादशाह नहीं लड़ा। सब आराम-तलब या विलास-प्रिय हो गए। बस उनके यहाँ खुशामद करनेवाले लोग कहते हैं कि सरकार, आप का प्रताप ही शत्रुओं को मार लेगा! सरकार बैठे हुए प्रसन्न हो रहे हैं। जब तक शिकार और उक्त सब कलाएँ उक्त उद्देश्य से हों, तब तक इन्हें गुण या कला, जो कुछ कहो, वह सब ठीक है। और नहीं तो वही आलमगीर का कहना ही ठीक है कि शिकार करना तो उन्हीं लोगों का काम है जिन्हें और कोई काम नहीं होता।

ऊपर विद्याओं और कलाओं के जितने अंग बतलाए गए हैं, उन सब का पूरा ज्ञान प्राप्त कर लेने के उपरान्त मनुष्य को सभा-चातुरी आती है। उसका सब से बड़ा अंग सुन्दर, स्पष्ट और प्रभावशाली रूप से बातें करना और बुद्धिमत्तापूर्वक अच्छे अच्छे उपाय सोचना है। और यह एक ईश्वर-दत्त गुण है।

ईश्वर जिसे यह गुण दे, उसी को आ सकता है। एक पढ़ा-लिखा विद्वान् एक विषय पर कोई बात कहता है। पर किसी को पता भी नहीं लगता कि वह क्या कह गया। एक साधारण पढ़ा-लिखा मनुष्य किसी दरबार या सभा में कोई बात इस प्रकार कहता है कि अशिक्षित नौकर-चाकरों तक के कान भी उसी की ओर लग जाते हैं।

सब से बढ़कर बात यह है कि वह बात-चीत करने का समय और अवसर पहचाने। आँखों के मार्ग से लोगों के हृदय में उतर जाय। हर एक मनुष्य की प्रकृति और विचार का ठीक ठीक अनुमान कर ले; और तब उसी के अनुसार अपने अभिप्राय को भाषण का परिच्छद पहनावे और उसपर वर्णन का रंग चढ़ावे। मैं तो उन गुणी और प्रभावशाली वक्ता सज्जनों का दास हूँ जो एक भरी सभा में भाषण कर रहे हैं। वहाँ भिन्न भिन्न सम्मतियों, भिन्न भिन्न विचार और भिन्न भिन्न धर्म रखनेवाले बहुत से लोग बैठे हैं। पर उनके भाषण का एक शब्द भी किसी को नहीं खटकता। किसी को उनकी कोई बात बुरी नहीं लगती। यदि किसी खोन्चेवाले का लड़का या जुलाहे का लड़का मसजिद में रह कर बड़ा भारी विद्वान् हो गया या कालिज में पढ़कर बी० ए०, एम्० ए० हो गया, तो हुआ करे। ऊपर बतलाए हुए उद्देश्यों, सभा-चातुरी और सभा के नियमों आदि का उस बेचारे को क्या ज्ञान हो सकता है! वह स्वयं तो ये सब बातें जानता ही नहीं। फिर वह शिष्य को क्या सिखलावेगा! दरबारों-सरकारों की ड्योढ़ी तक जाने का सौभाग्य उसके बाप-दादों को तो प्राप्त हुआ ही नहीं। वह बेचारा वहाँ की बातें क्या

जाने ! यदि कहीं लिखा हुआ पढ़कर या सुन-सुनाकर उसने उसका कुछ ज्ञान प्राप्त भी कर लिया, तो उससे क्या होता है ! कहाँ ये और कहाँ वे जो इसी नदी की मछली थे। अपने बड़े लोगों के साथ तैरकर बड़े हुए थे। उनका दिल खुला हुआ था। समय पड़ने पर उन्हें नियम आदि सोचने की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। समय पर उनके अंगों में आप से आप वही गति उत्पन्न हो जाती थी। अब भी नवीन ज्ञान और नवीन शिक्षा-प्राप्त लोग यदि कहीं जा पहुँचते हैं, तो उन्हें सलाम करना भी नहीं आता। मेरे मित्रो, उनके होश ही ठिकाने नहीं रहते। यदि वे चलते हैं तो उनका पैर ठिकाने पर नहीं पड़ता। और देखनेवाले लोग भी वहीं किनारे खड़े हैं। बात-बात को परख रहे हैं कि यहाँ चूका, वहाँ भूला, यह ठोकर खाई, वह गिरा। फिर कह देते हैं कि ये मौलवी साहब अथवा बाबू साहब टकसाल-बाहर हैं। खैर; अब तो न वह दरबार है और न वह सरकार। यह संसार टूटा-फूटा कारखाना है। इसका रंग बदलता जाता है। अच्छा हुआ कि ईश्वर ने सब का परदा रख लिया।

देखने के योग्य बात यह है कि इस होनहार नवयुवक ने अपनी विद्याओं, कलाओं, गुणों, व्यावहारिक नियमों, अभ्यासों और रंग-ढंग, गम्भीरता तथा उदारता से बादशाह के हृदय पर ऐसे अच्छे-अच्छे प्रभाव डाले होंगे कि बड़े-बड़े पुराने और अनुभवी अमीरों के होते हुए भी उसने युवराज की शिक्षा-दीक्षा के लिये इसी को नियुक्त किया। जब उसे यह उच्च पद प्रदान किया गया, तब उसने इसके लिये धन्यवाद स्वरूप एक बहुत बड़े और राजसी ढंग के जलसे का प्रबन्ध किया। साथ ही बाद-

शाह की सेवा में यह भी प्रार्थना की कि वह स्वयं पधार कर उस जलसे की शोभा बढ़ावे। बादशाह भी वहाँ पधारे। पानी को बरसना, नदी को बहना और बैरमखाँ के लड़के को उदारता कौन सिखलावे! उसने किले से लेकर अपने घर तक चाँदी-सोने के फूल लुटाए। जब घर पास आया, तब मोती बरसाए। पैर पोंछने की जगह मखमल और जरी के काम के कपड़े बिछाए। घर में सवा लाख रुपए का चबूतरा बनाया। उस पर बादशाह को बैठा कर उसे भेंट दी। वहाँ से उठा कर दूसरे भवन में ले गया। वह चबूतरा लुटवा दिया। बादशाह पर मोती और जवाहिर निछावर किए। अमीरों ने वे सब लूटे। जो पदार्थ उसने बादशाह की सेवा में भेंट किए थे, उनमें ऐसे ऐसे रत्न, वस्त्र और शस्त्र आदि थे जो राजकोष में ही रखने के योग्य थे। अच्छे अच्छे हाथी और असील घोड़े, जो बादशाही कारखानों की शोभा थे, भेंट किए। दरबार के सब अमीरों को भी उनके पद और मर्यादा के अनुसार अनेक विलक्षण पदार्थ भेंट करके प्रसन्न किया और ये सब काम कर के स्वयं प्रसन्न हुआ। परन्तु वास्तविक प्रसन्नता की बात उसके उन वृद्ध साथियों से पूछनी चाहिए जो आज के दिन की आशा पर जीवन का पल्ला पकड़े हुए चले आते थे। कड़वी चाय की प्यालियाँ और फीके शरबत पीते थे और ईश्वर से प्रार्थनाएँ कर-कर के जीते थे। पर उन वृद्धा स्त्रियों की प्रसन्नता का शब्दों में किसी प्रकार वर्णन ही नहीं हो सकता, जिन्हें न तो दिन को आराम था और न रात को नींद थी। जिस समय घर में अकबर का दरबार लगा होगा, उस समय उन वृद्धा स्त्रियों की क्या दशा हुई होगी! वे ईश्वर को

लाख-लाख धन्यवाद देती होंगी। उनके नेत्रों से मारे प्रसन्नता के अश्रुपात हो रहा होगा। और यदि सच पूछो तो इससे बढ़कर उनके लिये प्रसन्नता की और कौन सी बात हो सकती थी। सूखी नहर में पानी आया। विनष्ट उपवन फिर से हरा-भरा हुआ। उजड़ा हुआ खेत फिर से लहराया। जिस घर में धुँधले दीपक जला करते थे, उस में सूरज निकल आया!

मिरजा खाँ के गुणों और योग्यताओं का स्रोत बहुत दिनों से बन्द पड़ा हुआ था। सन् ९९१ हि० में वह फुहारा होकर उछला। बात यह हुई कि अकबर का जी यह चाहता था कि सारे भारतवर्ष में इस सिरे से उस सिरे तक मेरा सिक्का चले। गुजरात की विजय के उपरान्त सुलतान महमूद गुजराती का नमक खानेवाला एतमाद खाँ नाम का एक पुराना सरदार उससे अलग होकर अकबर के अमीरों में सम्मिलित हो गया था। वह सदा बादशाह का ध्यान उसी की ओर आकृष्ट किया करता था। इन दिनों अवसर देख कर उसने कुछ और अमीरों को भी अपने अनुकूल कर लिया और बहुत से ऐसे उपाय बतलाए जिनसे उस देश की आमदनी बढ़ सके, खर्चों में किफायत हो और सीमा आगे को सरके। सन् ९९१ हि० में उसने अवसर देखकर फिर निवेदन किया। कुछ अमीरों को अपनी ओर मिलाकर उनसे भी वही बात कहलवाई। अकबर ने देखा कि यह आदमी उस देश की सब बातों का बहुत अच्छा ज्ञान रखता है। इसलिये उसने यह उचित समझा कि शहाबउद्दीन अहमद खाँ को गुजरात से बुला ले और उसे सूबेदार बना कर वहाँ भेज दे।

अब वहाँ का हाल सुनो। मामला और भी अधिक पेचीला

होता जा रहा था। याद करो कि अकबर ने गुजरात पर जो चढ़ाई की थी, वह इब्राहीम हुसैन मिरज़ा आदि तैमूरी शाहजादों की जड़ उखाड़ चुकी थी। लेकिन फिर भी उसके गले-सड़े रेशे ज़मीन के अन्दर बाकी बचे हुए थे। उनके नाम लेनेवाले बहुत से बलख और बदख़शाँ-वाले तथा तुर्क लोग अभी तक जीवित थे। जब इन्होंने अकबर के प्रबन्धों की दृढ़ता देखी, तब तलवारें जंगलों में छिपाकर बैठ गए। जो सरदार उधर से जाता था, हेर-फेर करके उसके साथ रहनेवाले लोगों की नौकरी कर लेते थे। उपाय-चिन्तन के चूहे दौड़ाते थे और मन ही मन ईश्वर से प्रार्थनाएँ किया करते थे कि हमें फिर से कोई अच्छा अवसर हाथ लगे तो हम भी अपना काम निकालें।

जिस समय शहाबुद्दीन अहमद खाँ वहाँ पहुँचा था, उस समय उसे ज्ञात हो गया था कि ये उपद्रवी लोग पुराने हाकिम (वज़ीरखाँ) की व्यवस्था को भी बिगाड़ना चाहते थे, और अब भी ये लोग उसी ताक में हैं। यह सरदार पुराना सैनिक और वीर था। उसने उनके नेताओं का पता लगाया और सबको सेना, थाने, तहसील आदि में स्थान देकर हर एक को काम में लगा दिया। तात्पर्य यह कि उसने इस प्रकार नीति-कौशल से उनके बल और जत्थों को तोड़ दिया था। जब बादशाह को यह समाचार मिला तो उसने यह आज्ञा भेजी कि इन लोगों को कदापि मत जमने दो और अपने विश्वसनीय तथा निष्ठ आदमियों से काम लो।

बुड्ढे सरदार को इस प्रकार की व्यवस्था करने का अवसर नहीं मिला। वह बात टालता रहा; बल्कि उनके पद और इलाके आदि बढ़ाकर दम-दिलासे से काम लेता रहा। जिस समय

एतमादखाँ पहुँचा, उस समय अकबर के विचारों और नए प्रबन्धों के सुर उनके कानों में पहुँच चुके थे। उपद्रवियों ने विचार किया कि पहले शहाबउद्दीन अहमदखाँ के जीवन का अन्त कर देना चाहिए। एतमादखाँ यहाँ नया-नया आवेगा। सुलतान महमूद का लड़का मुजफ्फर गुजराती, जो इस समय छिपा हुआ अज्ञात-वास कर रहा है, उसे बादशाह बनावेंगे।

उन्हीं में से एक उपद्रवी ने इधर भी आकर यह समाचार दिया। शहाब का रंग उड़ गया। परन्तु बादशाह की आज्ञा के कारण उसका भी उत्साह भंग हो रहा था; इसलिये उसने न तो इस विषय में कोई जाँच-पड़ताल की और न इसकी कोई व्यवस्था ही की। इन लोगों को कहला भेजा कि तुम यहाँ से निकल जाओ। ये लोग तो हृदय से यही बात चाहते थे। झट-पट वहाँ से निकले और अपने पुराने परगनों में पहुँच कर उपद्रवियों को एकत्र करने लगे। साथ ही मुजफ्फर के पास चिट्ठियाँ दौड़ाईं। कुछ उपद्रवी शहाब में पानी की तरह मिल गए और उस बुड्ढे से उन्होंने इस बात की अनेक शपथें ले लीं कि जब वह दरबार में जाय, तो इन लोगों को भी अपने साथ लेता जायगा। वे अन्दर ही अन्दर और लोगों को बहकाते थे और अपने साथियों को यहाँ के समाचार पहुँचाते थे। इन सब लोगों का नेता मीर आबिद था।

विधाता का यह नियम है कि संसार में वह जिन लोगों को बढ़ाता है और जिन बातों को उनके बढ़ने का साधन बनाता है, कुछ समय के उपरान्त वह ऐसा अवसर भी लाता है कि उन्हीं लोगों को घटाता भी है; और जिन बातों को किसी समय उसने

उनके ऊपर चढ़ने के लिये सीढ़ियों के रूप में बनाया था, उन्हीं बातों को नासमझी का उदाहरण बनाकर घटाता है और उस समय वे आगे बढ़नेवाले जिन लोगों को अपने पैरों तले कुचल कर चढ़े-बढ़े थे, उन्हीं को या उनकी सन्तान को उनके आगे बढ़ाता है। पाठकों को स्मरण होगा कि बैरमखाँ जैसे बुद्धिमत्ता के पर्वत को एक बुढ़िया अन्ना और उसके साथियों के हाथ से किस प्रकार तोड़ा! उन सब लोगों का तो उसी वर्ष में अन्त हो गया था। बस एक यही रकम बाकी बच रही थी। ये शहाबखाँ से शहाबउद्दीन अहमदखाँ बनकर पंज-हजारी मन्सब तक पहुँच चुके थे और प्रायः युद्धों में सेनापतित्व भी कर चुके थे। अब तमाशे देखो। उसी बैरमखाँ के पुत्र के सामने वह शहाब को किस तरह पानी-पानी करता है।

आजाद तो पुरानी लकीरों का फकीर है। बुड्ढों की बातें स्मरण करता है और उन्हींमें मग्न हो जाता है। वे कहा करते थे कि जाओ मियाँ, जैसा करोगे, वैसा अपने लड़के-पोतों के हाथों पाओगे। खैर, अब चाहे इसे बैरमखाँ की अच्छी नीयत कहो और चाहे मिरजाखाँ के प्रताप का बल कहो, शहाब की बुद्धिमत्ता उसे लड़कों के सामने मूर्ख बनाती है।

एतमादखाँ और ख्वाजा निजामउद्दीन * जो दरबार से भेजे गए थे, पटन नामक स्थान में पहुँचे। शहाब का वकील या प्रतिनिधि आया हुआ था। उन्होंने अपना वकील उसके साथ कर दिया। दरबार से अपने साथ उसके लिये जो घोड़े,

---

* तबकाते अकबरी के लेखक। देखो परिशिष्ट।

खिलअत और विदा होने का आज्ञापत्र लेकर गए थे, वह सब उसके पास भेज दिया। शहाबखाँ स्वागत करने के लिये कई कोस आगे बढ़ कर पहुँचे। आज्ञापत्र लेकर सिर पर रखा। उठे, बैठ, सलाम किया, पढ़ा और उसी समय कुंजियाँ उन्हें सौंप दीं। आस-पास के किलों आदि पर उसने जो अपने थाने बैठाए हुए थे, वे सब उठवा मँगाए। नए और पुराने सब मिलाकर प्रायः ८० किले थे। उनमें से बहुत से तो उसने स्वयं बनवाए थे और बहुतों की मरम्मत कराके उन्हें ठीक किया था। उपद्रव यहीं से आरम्भ हो गया। थानों के उठते ही वहाँ की कोली और करास आदि जंगली जातियाँ उठ खड़ी हुईं और उन्होंने प्रायः किलों को उजाड़ कर सारे देश में लूट-मार मचा दी।

शहाबखाँ परवान नामक स्थान के किले से निकल कर उस्मानपुर में उसी नगर के किनारे के एक महल्ले में आ गए। एतमादखाँ, शाह अबू तुराब और ख्वाजा निजामउद्दीन अहमद ने बहुत प्रसन्नतापूर्वक किले में प्रवेश किया। जो नमक-हराम मीर आबिद पहले शहाबखाँ के यहाँ नौकर था, वह पाँच सौ आदमियों का एक जत्था बना कर अलग हो गया। वहाँ से उसने एतमादखाँ के पास सँदेसा भेजा कि हमारे पास कुछ भी साधन या सामग्री आदि नहीं है। हम शहाब के साथ नहीं जा सकते। उन्होंने जो जागीर * दी थी, यदि वह हमारे पास

* उन दिनों सरदारों आदि को जागीर रूप में इलाके मिल जाया करते थे। वे लोग अपना व्यय और अपनी सेना का वेतन वहीं से वसूल कर लिया करते थे।

बहाल रखिए, तो हम आपकी सेवा करने को प्रस्तुत हैं। नहीं तो प्रजा भी ईश्वर की है और देश भी ईश्वर का है। हम विदा होते हैं। एतमादखाँ के कान खड़े हो गए। परन्तु उन्होंने न तो कुछ सोचा और न कुछ समझा। उन्होंने कहला भेजा कि बिना बादशाह की आज्ञा के वे जागीरें तुम्हारे पास वेतन स्वरूप नहीं रह सकतीं। हाँ, मैं अपनी ओर से रिआयत करूँगा। उन्हें तो केवल एक बहाना चाहिए था। वे साफ अपने साथियों में जा मिले। अब उपद्रव और भी बढ़ गया।

एतमादखाँ को सरकार से जो सेना मिली थी, वह अभी तक नहीं आई थी; इसलिये उसने सोचा कि इन उपद्रवकारियों को शहाबखाँ के साथ लड़ाकर अपना रंग जमाना चाहिए। इसलिये शाह और ख्वाजा के हाथ सँदेसा भेजा कि तुम्हारे नौकरों ने उपद्रव किया है। अभी तुम मत जाओ। जरा ठहर जाओ और इन लोगों की व्यवस्था करो। बादशाह की सेवा में तुम्हें इसका उत्तर लिखना पड़ेगा। उसने कहा कि ये उपद्रवी लोग तो ईश्वर से इसी दिन के लिये प्रार्थनाएँ कर रहे थे और मेरी हत्या करना चाहते थे। अब इस बात ने ऐसा रूप धारण कर लिया है कि इसका सुधार हो ही नहीं सकता। भला मुझसे क्या हो सकता है! अब तुम जानो और ये लोग जानें। परन्तु इस प्रकार देश पर अधिकार और शासन करने का काम नहीं चलता। इन लोगों को जागीर देकर परचाओ। यदि ऐसा न होगा, तो अभी तो उपद्रवकारियों की संख्या कम है; पर शीघ्र ही वह बहुत बढ़ जायगी और सारे देश में

विद्रोह हो जायगा। सब इसी देश के और जंगली लोग हैं। अभी कोई योग्य और विश्वसनीय सरदार इनमें नहीं पहुँचा है। अपने और मेरे आदमियों को भेजो जो अचानक जाकर उन पर टूट पड़ें और उन लोगों को तितर-वितर कर दें। एतमादखाँ ने कहा कि तुम नगर में आ जाओ। फिर परामर्श करने पर जो निश्चय होगा, उसी के अनुसार काम किया जायगा। ये भी शहाबउद्दीन अहमदखाँ थे। कोई लड़के नहीं थे। माहम के दूध की धारें देखी थीं। कहला भेजा कि मैंने तो स्वयं ऋण लेकर अपनी यात्रा की व्यवस्था की है। सेना की दशा बहुत ही बुरी है। बड़ी कठिनता से नगर के बाहर निकला हूँ। लौटकर फिर नगर में आने में ऊपर से और भी अधिक कठिनता होगी। तात्पर्य यह कि इसी प्रकार हीले-बहाने किए। एतमादखाँ ने कहा कि तुम नगर में चले जाओ। तुम्हारी सहायता के लिये मैं अपने कोष से धन दूँगा। इस प्रकार लड़ाई का ऊँच-नीच समझने, उत्तर-प्रत्युत्तर करने और धन का मान निश्चित करने में कई दिन बीत गए।

शहाब ताड़ गए कि यह दक्खिनी सरदार पुराना सिपाही है। बातों ही बातों में काम निकालना चाहता है। यह चाहता है कि जब तक इसकी सेना आवे, तब तक मुझे और मेरे आदमियों को रोककर अपना बल और सम्मान बनाए रखे। जब इसकी सेना आ जायगी, तब यह मुझे यों ही जंगल में छोड़ देगा। यदि इसकी नीयत अच्छी होती तो यह पहले ही दिन रुपयों की व्यवस्था करता और मेरे लश्कर की सामग्री आदि ठीक कर के परिस्थिति को सँभाल लेता। इसलिये शहाब अहमदाबाद के

मैदान से कूच कर के कड़ी नामक स्थान में जा पड़े, जो वहाँ से बीस कोस की दूरी पर है। उपद्रव करनेवाले और विद्रोही लोग मातर नामक स्थान में पड़े हुए थे। वे तुरन्त काठियावाड़ में जा पहुँचे। सुलतान महमूद गुजराती का लड़का मुज्फ्फर उन दिनों काठियावाड़ में आकर अपनी ससुराल में छिपा हुआ बैठा था। उसे उधर का सारा हाल सुनाकर खूब सब्ज बाग दिखलाए, बड़ी बड़ी आशाएँ दिलाईं। उसके बाप-दादा का देश था। उसे इससे बढ़कर और कौन सा अवसर चाहिए था ! वह तुरन्त उठ खड़ा हुआ। देश के कुछ उपद्रवी नेताओं को भी उसने अपने साथ ले लिया। पन्द्रह सौ के लगभग काठी लुटेरे उसके साथ हो गए। वे सब लोग इतनी शीघ्रता से आए कि दोलका नामक स्थान में पहुँचकर ही उन लोगों ने साँस लिया। वे यह सोच रहे थे कि शहाबखाँ यहाँ से दरबार की ओर जा रहा है। पहले चलकर उसी पर रात के समय छापा मारें; या किसी बसे हुए नगर को जा लूटें। एतमादखाँ पुराना सिपाही और इसी देश का सरदार था। पर उसकी बुद्धि पर भी परदा पड़ गया। जब उसने सुना कि मुजफ्फर दोलका में आ पहुँचा है, तब उसके भी होश उड़ गए। उसने अपने लड़के और दो तीन सरदारों को अहमदाबाद में ही छोड़ा और उनसे कहा कि मैं स्वयं अभी जाकर शहाबखाँ को ले आता हूँ। परामर्शदाताओं ने उसे बहुतेरा समझाया कि शत्रु बारह कोस पर आकर ठहरा हुआ है। इस समय यहाँ से अठारह कोस पर जाना और नगर को इस प्रकार अकेला छोड़ना ठीक नहीं है। पर उस बुड्ढे ने कुछ भी न सुना और ख्वाजा निजामउद्दीन को अपने साथ लेकर वहाँ से चल

पड़ा। उसके निकलते ही बदमाशों ने यह समाचार शत्रु के यहाँ जा पहुँचाया। शत्रु-पक्ष के लोग स्वयं ही चकित थे। वे यह भी नहीं जानते थे कि इस समय हमें कहाँ जाना चाहिए और क्या करना चाहिए। पर यह समाचार सुनते ही वे सब लोग उठ खड़े हुए और सीधे चलकर अहमदाबाद जा पहुँचे। एक एक पग पर सैकड़ों लुटेरे उसके साथ होते गए। सरगंज नामक स्थान वहाँ से तीन कोस पर है। जब मुजफ्फर वहाँ पहुँचा, तब तो कुछ मुजावरों ने आत्मिक बादशाहों या औलियाओं के दरबार से उठकर फूलों का एक छत्र सजाया और लेकर उसके सामने उपस्थित हुए। उसने इसे बहुत ही शुभ शकुन समझा और गोली की चोट नगर में प्रवेश किया*। उन दिनों पहलवान अली सीसरतानी उस नगर का कोतवाल था। आते ही उसे पछाड़कर कुरबान किया। नगर में प्रलय का दृश्य उपस्थित हो गया। बादशाही सरदारों के पास बल ही क्या था! उन्होंने अपनी जान लेकर भागने को ही सब से बड़ी विजय समझा। नगर का कोई रक्षक नहीं रह गया। उपद्रवियों ने लूट-मार आरम्भ कर दी। घर और बाजार, धन-सम्पत्ति, जवाहिरात और सामग्री से भरे हुए थे। बात की बात में वे सब लुटकर साफ हो गए।

उधर एतमादखाँ ने शहाब के पास पहुँच कर यह रंग जमाया कि दो लाख रुपए नगद मुझसे लो और जो परगने तुम्हारी जागीर में थे, उन्हें भी तुम अपने पास ही रखो और

---

* इसने नगर में रहगर दरवाजे से प्रवेश किया था जो उस समय किसी दरवाजे का नाम था।

लौटकर अहमदाबाद चलो। वह किस्मत का मारा तैयार हो गया। दोनों बुड्ढे साथ ही वहाँ से चल पड़े।

शहाब अपने नौकरों का हाल जानता था। रात के समय बीच में कुरान रखे गए। शपथों और वचनों से सब बातें पक्की की गईं और सब ने वहाँ से प्रस्थान किया। थोड़ी ही दूर आगे बढ़े थे कि नगर से भागकर आए हुए लोग मिले। वे लोग जो धूल वहाँ पर उड़ाकर आए थे, वह यहाँ उनके चेहरों पर दिखाई पड़ रही थी। सुनते ही दोनों बुड्ढों के रंग हवा हो गए। आगे पीछे के सरदार इकट्ठे हुए। ख्वाजा निजामउद्दीन ने कहा कि घोड़े उठाओ और चल कर नगर पर आक्रमण करो। कहीं साँस मत लो। यदि शत्रु निकलकर सामने आवे और लड़े तो वहीं लड़ मरो। या यदि वह हम लोगों के सौभाग्य से किला बन्द करके बैठा हो तो किले पर चारों ओर से घेरा डाल दो। एत-मादखाँ की सेना भी आती ही होगी। उस समय जैसा होगा, देखा जायगा। पर शहाब तो लौटकर घर की ओर जा रहा था। उसका जी उचाट था। लश्कर-वालों के बाल-बच्चे भी सब साथ थे। उसने भूल यह की थी कि जब अहमदाबाद की ओर लौटने लगा था, तब भी उसने उनके कच्चे साथ को कूकरी में नहीं छोड़ा था। खैर; मारा-मार सब लोग नगर के पास पहुँचे। लश्करवाले लोग उस्मानपुर में आकर डेरे डालने लगे और अपने बाल-बच्चों के रहने की व्यवस्था करने लगे। उस समय भी निजामउद्दीन आदि कुछ साहसी लोगों ने कहा था कि इसी समय बागें उठाओ और नगर में धँस जाओ। सहज काम को जान-बूझकर कठिन न करो। पर उन बुड्ढों ने नहीं माना।

शत्रु-पक्ष को इन लोगों के आने का समाचार मिल चुका था। वह खूब अच्छी तरह युद्ध का सारा प्रबन्ध करके नगर के बाहर निकला। नदी के किनारे सेना का किला बाँध कर वह अच्छी तरह वहीं जम गया। शहाब आदि के पक्ष के लोग अपने बाल-बच्चों और सामान आदि की व्यवस्था कर ही रहे थे कि युद्ध आरम्भ हो गया। शहाब अपने साथ आठ सौ सिपाहियों को लेकर एक ऊँचे स्थान पर जा जमे। उन्होंने सेना को आगे बढ़ाया और सेना ने भी अपने कर्त्तव्य का पूरा-पूरा पालन किया। पर सरदारों ने नमक-हरामी की। उनमें से जो लोग नमक-हलाल थे, वे वहीं हलाल हो गए। शहाब की भी नौबत आ गई। उनके साथी उन्हें छोड़ कर भागे। उनका घोड़ा गोली से छिदा। आस-पास केवल भाई-बन्द रह गए। बहुत से शत्रुओं को सामने देखकर जान निछावर करनेवाले एक सेवक ने बाग पकड़ कर खींची। उन्होंने भी इतने को ही बहुत समझा और वहाँ से भागे। उन्हीं के नौकरों में से एक नमक-हराम ने उनकी पीठ पर तलवार मारी। पर ईश्वर की कृपा से हाथ ओछा पड़ा। ऐसे भागे कि पटन नहरवाला में जाकर साँस लिया जो वहाँ से पचास कोस था। और इतना बड़ा रास्ता एक ही दिन में तै किया।

काठी, कोली आदि जातियों के तथा और भी अनेक जंगली लुटेरे शत्रुओं के साथ लगे हुए थे। वे सब टिड्डियों की तरह उमड़ पड़े और सारे लश्कर को काट कर उन्होंने बात की बात में सफाई कर दी। नगद, सामान, हाथी और घोड़े आदि इतने लिए कि उनका कोई हिसाब नहीं लगा सकता। अब सैनिकों के बाल-

बच्चों की जो दुर्दशा हुई होगी और उनपर जो बीती होगी, उसका अनुमान पाठक स्वयं ही कर सकते हैं।

विजयी मुजफ्फर विजय के घोड़े पर सवार होकर मूँछों पर ताव देते हुए नगर को लौटे। शहाब के नमक-हराम सेवक अपने मुँह की लाली बढ़ाते हुए अब उनके दरबार में जा उपस्थित हुए। उन्होंने जब देखा कि यहाँ सारा राजसी ठाठ प्रस्तुत है, तो दरबार कायम किया। सब को वैसी ही उपाधियाँ प्रदान की गई, जैसी बादशाहों के यहाँ से प्रदान की जाती हैं। जामा मसजिद में उनके नाम का खुतबा पढ़ा गया। जो पुराने सरदार नहूसत के कोनों में छिपे हुए बैठे थे, उन्हें बुला भेजा। सब सुनते ही दौड़ पड़े। तात्पर्य यह कि जंगलों के लुटेरे, दीन, दरिद्र, देश के पुराने सिपाही, बुखारा और तुर्किस्तान के रहनेवाले सैनिक आदि जो तैमूरी शाहजादों की खुरचन थे, आ आकर इकट्ठे होने लगे। दो सप्ताह के अन्दर ही अन्दर मुजफ्फर के आस-पास चौदह हजार आदमियों की सेना एकत्र हो गई। यद्यपि मुजफ्फर ने इस प्रकार अच्छी विजय प्राप्त कर ली थी, पर फिर भी उसे कुतुबउद्दीनखाँ का खटका लगा हुआ था; इसलिये उसने कुछ सरदारों को तो यहीं छोड़ा और आप सेना लेकर बड़ौदे की ओर चला, क्योंकि कुतुबउद्दीनखाँ उस समय वहीं था। इधर दरबार से एतमादखाँ की सेना भी आ पहुँची। शहाबउद्दीन आदि पटन नामक स्थान में पिटे-कुटे पड़े थे। पर अब हो ही क्या सकता था! वे लोग उसी स्थान को दृढ़ करके वहीं बैठ गए।

शहाबखाँ और एतमादखाँ दोनों ही बराबर कुतुबउद्दीनखाँ

को लिख रहे थे कि तुम उधर से आओ और हम लोग इधर से चलते हैं। मुजफ्फर को दबा लेना कोई बहुत बड़ी बात नहीं है। पर कुतुबउद्दीनखाँ पंज-हजारी सरदार और बहुत पुराना सेनापति था। ये दोनों बुड्ढे भी उसे अपने काम का एक ही समझते थे। वह दूर से बैठा बैठा टाल रहा था। जब दरबार से क्रोधपूर्ण आज्ञापत्र पहुँचा, तब कुतुब अपने स्थान से हिला। अब जब कि समय बीत चुका था, वह अपने सैनिकों को वेतन आदि देकर उन्हें प्रसन्न करने का प्रयत्न करने लगा। वह छावनी से बड़ौदे तक ही पहुँचा था कि मुजफ्फर ने उसे आ दबाया। दोनों पक्षों में लड़ाई हुई। वह अध-मरों की तरह हाथ-पैर मारकर बड़ौदे के किले के खँड़हर में दबक गया। सेना और सरदार जाकर मुजफ्फर के साथ मिल गए। अब धन-सम्पत्ति और वैभव का क्या पूछना है! ईश्वर की महिमा देखो। यह वही मुजफ्फर है जो तीस रुपए महीने पर आगरे में पड़ा हुआ था। वहाँ से एक नाक और दो कान लेकर भागा था। आज उसके पास तीस हजार सैनिकों का लश्कर है और अपने पिता के देश का मालिक बना हुआ बैठा है।

अब जरा उधर का हाल भी सुनो। मुजफ्फर तो इधर आ गया। उसके शेरखाँ फौलादी नामक सरदार ने कहा कि अब मुझे भी तो अपना लोहा दिखलाना चाहिए। वह सेना लेकर पटन की ओर चला। वहाँ वह बादशाही अमीरों को अपना करतब दिखलाना चाहता था। उसने स्वयं तो पटन पर चढ़ाई की और थोड़ी सी सेना कड़ी नामक स्थान की ओर भेज दी। ख्वाजा ने जी कड़ा कर के बादशाही सेना को बाहर निकाला।

जो सेना कड़ी पर चढ़ी आ रही थी, तुरन्त उसे जा मारा। अब शेरखाँ का सामना करने का अवसर आया। परन्तु बुड्ढे सरदारों पर ऐसी नामर्दी छाई थी कि उन्होंने घबराकर कहा कि इस समय यही उत्तम है कि पटन से हटकर जालौर में चल बैठें। ख्वाजा निजामउद्दीन यद्यपि नवयुवक सिपाही था, पर फिर भी उसने इन लोगों को लज्जित कर के रोका और स्वयं सेना लेकर शत्रु के सामने जा पहुँचा। सामना होते ही मुठभेड़ हो गई और गुथकर लड़ाई होने लगी। दो ही हजार तो सेना थी; पर थे सब पुराने-पुराने सिपाही। वह पाँच हजार सैनिकों के मुकाबले पर बढ़ कर म्याना नामक स्थान में पहुँचा। नवयुवक सिपाही ने बड़ा साका किया। बहुत अधिक मार-काट हुई और रक्त की नदियाँ बहीं। खेत काटकर डाल दिया। युद्ध में विजय प्राप्त की। शेरखाँ नोक-दुम गुजरात की ओर भागा। बादशाही सेना को बहुत अच्छी लूट हाथ आई। जरा आँसू पुँछ गए। सब लोग गठरियाँ बाँध बाँध कर दौड़े कि चल कर पटन में रख आवें। ख्वाजा बहुत समझाता रहा कि यह बहुत अच्छा अवसर है। गुजरात खाली पड़ा है। बागें उठाए हुए चले चलो। पर किसी ने उसकी बात नहीं सुनी। बेचारा बारह दिनों तक वहीं पड़ा रहा। इतने में समाचार आया कि मुजफ्फर ने बड़ौदा मार लिया।

अब वहाँ की दशा भी कुछ सुन लीजिए। बड़ौदे का जो किला कुतुबुद्दीन की बुद्धि से भी बढ़कर बोदा था, मुजफ्फर ने घेर लिया और उसपर तोपें मारना आरम्भ कर दिया। उस समय की उसकी पुरानी दीवारें मुजफ्फर के प्रण और कुतुब के साहस से भी

बढ़कर निराधार थीं, इसलिये गिरकर जमीन के बराबर हो गईं। परन्तु कुतुब की आयु का किला उससे भी बढ़कर गया-बीता था। उस मूर्ख बुड्ढे ने जैन उद्दीन नामक अपने एक विश्वसनीय सरदार को शत्रु के पास सन्धि की बात-चीत करने के लिये भेजा। यद्यपि दूत को कहीं कोई कष्ट नहीं पहुँचाया जाता, पर फिर भी मुजफ्फर ने उसे देखते ही हजारों बरस के पुराने मुरदों में मिला दिया। कुतुब का सितारा ऐसे चक्कर में आया हुआ था कि अब भी उसकी समझ में कुछ न आया। इसी सँदेसे भुगताने में यह निश्चय हुआ कि मैं मक्के चला जाऊँगा। मुझे बाल-बच्चों और धन-सम्पत्ति सहित सुरक्षित रूप से यहाँ से निकल जाने दो। इतना बड़ा सरदार, इस प्रकार बहुत ही दुर्दशा और कायरता से शत्रु के दरबार में उपस्थित हुआ और वहाँ उसने बहुत ही दीनता-पूर्वक झुक कर सलाम किया।

पर फिर भी वह अकबर के यहाँ का पंज-हजारी सरदार था। कई पीढ़ियों से साम्राज्य की सेवा करता आ रहा था। बहुत दिनों तक शाहजादों का शिक्षक रह चुका था। मुजफ्फर ने मिलने के समय उसका बहुत आदर-सम्मान किया। उठकर उसका स्वागत किया और मसनद-तकिए पर उसे स्थान दिया। बातों से उसके आँसू पोंछे; पर साथ ही हाथों से रक्त भी बहाया। और ऐसा बहाया कि उसका पल्ला मिट्टी के नीचे जाकर कारूँ के गड़े हुए खजानों में मिल गया। उसके साथ चौदह लाख रुपए थे। वे सब मुजफ्फर ने ले लिए। खजानची उसकी व्यवस्था करने के लिये गया। दस करोड़ से भी अधिक रुपए गड़े हुए थे। वह सब भी वे लोग निकाल लाए। नगद, सामग्री और धन-

सम्पत्ति का क्या ठिकाना है ! और सब से बढ़कर मजे की बात यह है कि उसके आस-पास बड़े बड़े चार-हजारी और पाँच-हजारी सेनापति और अमीर, जैसे कलीचखाँ और शरीफखाँ, उसका अपना भाई मालवे का जागीरदार, पुरन्दर के सुलतान का पुत्र खास नौरंगखाँ आदि पास ही जिलों में बैठे हुए थे। वे सब लोग दूर से बैठे हुए तमाशा ही देखते रह गए।

हम बहे गम में बह गए और दोस्त आश्ना।
सब देखते रहे लबे साहिल खड़े हुए॥

(अर्थात् हम तो दुःख के समुद्र में बह गए और हमारे मित्र आदि किनारे पर खड़े हुए देखते रहे।)

मुजफ्फर के साथ हजारों तुर्क, अफगान और गुजराती सैनिकों का लश्कर हो गया। और एक थे तो दस, बल्कि हजार हो गए। पर इलाके इलाके में भूँचाल पड़ गया। ख्वाजा निजाम-उद्दीन यह सुनकर पटन की ओर लौटे। दरबार में आगे-पीछे समाचार पहुँचे; और जो समाचार पहुँचे, वे सब ऐसे ही पहुँचे। सब लोग सुनकर चुप थे। बादशाह को बहुत अधिक दुःख हुआ। जिस देश को उसने स्वयं दो बार चढ़ाई करके जीता था, वह इस प्रकार की दुर्दशा से हाथ से निकल गया।

पर फिर भी अकबर बादशाह था और प्रतापी बादशाह था। उसने इन सब बातों की कुछ भी परवाह नहीं की। दरबारी अमीरों में से बहुत से बारहा के सैयदों, ईरानी वीरों, सूरमा राजपूतों और राजाओं तथा ठाकुरों को चुनकर इस चढ़ाई के लिये नियत किया; और उस विशाल लश्कर का सेनापति नव-युवक मिरजाखाँ को बनाया, जिसका प्रताप भी उन दिनों अपने

पूरे यौवन पर था। पुराने और अनुभवी सरदारों को सेनाएँ देकर उसके साथ किया। कलीचखाँ के पास आज्ञापत्र भेज दिया गया कि तुरन्त मालवा पहुँचो और वहाँ से अमीरों को लेकर युद्ध में सम्मिलित हो। दक्खिन के जिलों में जो सरदार थे, उनके नाम भी जोर-शोर से आज्ञाएँ पहुँचीं कि शीघ्र युद्ध-क्षेत्र में उपस्थित हो। मिरजाखाँ अपने साथियों को लेकर मारा-मार चला। पहाड़, जंगल, नदी, मैदान सबको लपेटता-सपेटता जालौर के रास्ते पटन को चला जा रहा था। परन्तु मार्ग में उसे जो समाचार मिलता था, वह दुःखी और चकित करनेवाला ही मिलता था, इसलिये वह बहुत सोच-समझ कर पैर उठाता था। कुतुबउद्दीनखाँ का भी सब समाचार उसने सुन लिया, पर उसकी कोई बात सेना पर नहीं प्रकट की।

हम समझते हैं कि उस समय मिरजाखाँ को इस बात का ध्यान तो अवश्य आया होगा कि यह वही पटन है, जहाँ से मेरे पिता ने एक ही डग में परलोक की यात्रा पूरी की थी। उस समय उसके अन्तःपुर की स्त्रियों की क्या दशा हुई होगी! मेरा उस समय क्या हाल हुआ होगा! और अहमदाबाद तक का मार्ग कितनी कठिनता से कटा होगा! यहाँ सब लोग ईद के चाँद की भाँति उसकी ओर देख रहे थे। कुछ सरदार स्वागत करने के लिये सिरोही तक चलकर आए थे। उन लोगों ने उस समय की सब बातें सुनाईं और बहुत बहुत बधाइयाँ दीं। वह केवल दिन भर वहाँ ठहरा और बिजली और हवा की तरह उड़कर पटन में जाकर डेरे डाल दिए। सब अमीर और सेनाएँ उसका स्वागत करने के लिये आईं। बधाइयाँ दी गईं और आनन्द-सूचक वाद्य

करने लगे। यद्यपि उनका और शहाबउद्दीन अहमदखाँ का पीढ़ियों से वैर और वैमनस्य चला आता था, पर फिर भी उस समय वे सब बातें भूल गए। पता लगा कि मुजफ्फर ने विजयी हो कर कुछ और ही दिमाग पैदा किया है। पीछे की ओर का उसने बहुत ही दृढ़ प्रबन्ध कर लिया है और आगे खेमा डालकर युद्ध करने के लिये प्रस्तुत है।

नवयुवक सेनापति ने सरदारों को एकत्र करके मन्त्रणा करने के लिये सभा की। कुछ लोगों ने यह परामर्श दिया कि अकबर के प्रताप पर भरोसा करके बागें उठाओ, तलवारें खींचो और नगर पर जा पड़ो। कुछ लोगों की यह सम्मति थी कि कलीचखाँ मालवे से लश्कर लेकर आ रहा है। उधर बादशाह का आज्ञापत्र भी आ चुका है कि जब तक वह न आवे, तब तक युद्ध न कर बैठना। इसलिये उसकी प्रतीक्षा करना उचित है। यह भी बात-चीत आई कि यह अवसर बहुत ही विकट है। अब तो वही समय आ गया है कि यदि बादशाह स्वयं ही चलकर चढ़ाई करने के लिये यहाँ आवें, तो वीरता की लज्जा रह सकती है। नहीं तो ईश्वर जाने क्या परिणाम हो। दौलतखाँ एक बुड्ढा सरदार था और मिरजाखाँ का सेनापति कहलाता था। उसने कहा कि इस अवसर पर बादशाह को यहाँ तक बुलाना बहुत ही अनुचित है। कलीचखाँ की प्रतीक्षा करना भी इस समय युक्ति-संगत नहीं है। वह पुराना सेनापति है। यदि उसके सामने विजय हुई तो तुम्हारे सब साथी अपने अपने अंश से वंचित रह जायँगे। यदि तुम लोग यह चाहते हो कि विजय का डंका तुम्हारे नाम पर बजे, तो भाग्य पर भरोसा रखकर लड़

मरो। साथ ही यह भी समझ लो कि तुम बैरमखाँ के लड़के हो। जब तक स्वयं तलवार नहीं मारोगे, तब तक खानखानाँ नहीं बनोगे। अकेले ही विजय प्राप्त करनी चाहिए। अप्रतिष्ठित होकर जीवित रहने की अपेक्षा प्रतिष्ठापूर्वक प्राण दे देना कहीं उत्तम है। पुराने पुराने सेनापति तुम्हारे साथ हैं। सेना भी प्रस्तुत है। सब सामग्री भी है ही। फिर और चाहिए ही क्या?

मिरजाखाँ भी अकबर के दरबार के एक चलते पुरजे आदमी थे। एक झूठ-मूठ की हवाई उड़ाई कि दरबार से आज्ञापत्र आ रहा है। अकबर के साम्राज्य के नियमों के अनुसार उस आज्ञापत्र के स्वागत की व्यवस्था की गई। वह आज्ञापत्र एक सार्वजनिक सभा में पढ़ा गया। उसका विषय यह था कि हमने अमुक तिथि को यहाँ से प्रस्थान किया है। स्वयं चढ़ कर आते हैं। जब तक हम न आवें, तब तक युद्ध आरम्भ न हो। आज्ञा-पत्र पढ़ने के उपरांत बधाइयों के बाजे बजने लगे। सारे लश्कर में बहुत आनन्द मनाया गया। दो दिन तक प्रतीक्षा की गई। पर दोनों ओर के वीर बढ़ कर अपने गुण और करतब दिखलाते थे। यद्यपि यह नीतियुक्त, झूठा और खाली जबानी जमा-खर्च था, पर फिर भी कम साहसवालों की कमर बँध गई और साहसी लोगों की कुछ और ही दशा हो गई। उधर शत्रुओं के जी छोटे हो गए।

मिरजाखाँ के डेरे अहमदाबाद से तीन कोस की दूरी पर सरगीच नामक स्थान पर पड़े हुए थे। मुजफ्फर शाह भीकन की मज़ार पर, अर्थात् वहाँ से दो कोस की दूरी पर था। मालवे की सेना के आने का समाचार सुन कर वह चाहता था कि उसके

आने से पहले ही लड़ मरे। उसने रात के समय छापा मारा, पर उसे सफलता नहीं हुई। मिरजाखाँ ने फिर मन्त्रणा के लिये सभा की। यही निश्चय हुआ कि जिस प्रकार हो, लड़ना चाहिए। इसलिये रात के समय ही चिट्ठियाँ बाँट दी गईं। सभी सरदार रात के पिछले पहर ही अपनी अपनी सेनाओं को लेकर तैयार हो गए। एतमादखाँ को पटन की रक्षा करने के लिये छोड़ दिया गया था। उस्मानपुर के दहाने पर युद्ध-क्षेत्र हुआ। उस समय उसकी सेना दस हजार थी; और मुजफ्फर के पास चालिस हजार सैनिक थे। दोनों लश्कर परे बाँध कर आमने-सामने हुए। मिरजाखाँ ने दाहिने, बाएँ, आगे, पीछे सभी ओर सैनिकों को बाँट कर नियुक्त कर दिया। वह बाल्यावस्था से ही अकबर की रकाब के साथ लगा फिरता था। ऐसा युद्ध-क्षेत्र उसके लिये कोई नया स्थान नहीं था। हाथियों की पंक्तियाँ सामने की ओर रखीं। ख्वाजा निजाम उद्दीन को दो सरदारों के साथ सेना देकर अलग कर दिया और कह दिया कि सरगीच को अपने दाहिने छोड़ कर आगे बढ़ जाओ; और जिस समय युद्ध में दोनों पक्ष आमने-सामने या बराबर हों, उस समय पीछे की ओर से आकर शत्रु पर आक्रमण करो।

अब युद्ध आरम्भ हुआ और मुजफ्फर ने आगे बढ़ कर पहला वार किया। इधर से पहले तो लड़ाई को टालते थे। पर जब शत्रु सिर पर आ पहुँचा, तब इन लोगों ने भी आगे पैर बढ़ाए। हरावल की सेना ने बड़े साहस से बागें उठाईं। पर बीच में बहुत से कड़े उतार-चढ़ाव पड़ते थे। आगे की सेना, जो हरावल के पीछे थी, इतनी शीघ्रता से आगे पहुँची कि उसका

जो क्रम निश्चित किया गया था, वह टूट गया और लश्कर में घबराहट फैल गई। हरावल के सरदार तलवारें पकड़ कर स्वयं आगे बढ़ गए थे। कई प्रसिद्ध और पुराने सैनिक मारे गए। सेना तितर-बितर हो गई। जिधर जिसका मुँह पड़ा, वह उधर ही जा पड़ा। जगह-जगह युद्ध होने लगे। नया सेनापति अपने साथ तीन सौ वीर सैनिक और एक सौ हाथियों की पंक्ति लिए हुए सामने खड़ा था और भाग्य के उलट-फेर का तमाशा देख रहा था। अपने मन में कहता था कि बैरमखाँ का बेटा! जायगा तू कहाँ! पर देखो, अब ईश्वर क्या करता है। ऐसे समय में भला आज्ञा क्या चल सकती थी! भला वह सेना को किधर से रोकता और किधर से बढ़ाता? केवल भाग्य पर भरोसा था। मुजफ्फर भी पाँच छः हजार सैनिकों का परा जमाए हुए सामने खड़ा था। मिरजाखाँ ने देखा कि शत्रु का पल्ला भारी होने के लक्षण दिखाई पड़ रहे हैं। उस पर जान निछावर करनेवाले एक सेवक ने दौड़ कर उसकी बाग पर हाथ रखा। वह चाहता था कि मिरजाखाँ को वहाँ से घसीट कर बाहर निकाल ले जाय। उसकी यह कायरता देख कर मिरजाखाँ से न रहा गया। उसने आपे से बाहर होकर घोड़ा उठाया और फीलवानों को भी ललकार कर करना के द्वारा आवाज दी। उसका घोड़ा उठाना था कि अकबर के प्रताप ने अपना जादू दिखलाना आरम्भ किया। करना का शब्द सुन कर सब लोगों के हृदय में आवेश उत्पन्न हुआ। सब लोग स्थान-स्थान पर शत्रु को पीछे ढकेल कर आप आगे बढ़े। भाग्य ने यह सहायता की कि इधर से तो इन्होंने आक्रमण किया और उधर से ख्वाजा

निजाम उद्दीन भी मुजफ्फर की सेना के पिछले भाग पर आ टूटे। चारों ओर हल्ला मच गया कि अकबर बादशाह स्वयं चढ़ाई करके आया है। किसी ने समझा कि कलीचखाँ मालवे की सेना लेकर आ पहुँचा है। मुजफ्फर ऐसा घबराया कि उसके होश-हवास जाते रहे। आगे-आगे वह भागा और पीछे-पीछे उसके साथी भागे। शत्रु की सेनाएँ तितर-बितर हो गईं। हजारों का खेत हुआ। भला उनकी गिनती कौन कर सकता था! सन्ध्या होने को ही थी। शत्रु का पीछा करना उचित नहीं समझा गया। वह मामूराबाद के मार्ग से महेन्द्री नदी के रेगिस्तानों में निकल गया। उसके तीस हजार सैनिकों की भीड़-भाड़ घड़ियों में विकल होकर तितर-बितर हो गई। उसने लूट का बहुत सा जो माल मुफ्त में पाया था, वह जिन हाथों से लिया था, उन्हीं हाथों से दे गया। मिरजाखाँ ने वहाँ से इस युद्ध का विस्तृत विवरण बादशाह की सेवा में लिख भेजा। बादशाह ने ईश्वर को अनेकानेक धन्यवाद दिए; क्योंकि एक तो उस समय ईश्वर ने ऐसे अच्छे अवसर पर विजय प्राप्त कराई थी; और दूसरे यह कि वह विजय भी अपने हाथों के पाले हुए नवयुवक और वह भी अपने खान बाबा के लड़के के हाथों प्राप्त हुई थी।

मिरजाखाँ ने युद्ध से पहले यह मन्नत मानी थी कि यदि इस युद्ध में मैं विजयी होऊँगा तो अपना सारा धन, सामग्री, सम्पत्ति, खेमे, ऊँट, घोड़े, हाथी आदि सब कुछ गरीब सैनिकों और लश्करवालों को बाँट दूँगा; क्योंकि इन्हीं की कृपा से ईश्वर ने मुझे यह सारी सम्पत्ति दी है। और उस अच्छी नीयतवाले ने अन्त में ऐसा ही किया भी।

उदारता का अन्त—एक सिपाही ऐसे अवसर पर आया जब कि मिरजाखाँ कागजों पर हस्ताक्षर कर रहा था। उस समय उसके पास कुछ भी बच नहीं रहा था। केवल कलमदान सामने था। वही उठाकर उसे दे दिया और कहा कि ले भाई, यही तेरे भाग्य में बदा था। ईश्वर जाने वह चाँदी का था या सोने का, सादा था या जड़ाऊ था। पर मुल्ला साहब इतने पर भी रुष्ट होते हैं और कहते हैं कि मिरजाखाँ ने अपने वचन का पालन करने के लिये अपने कुछ सेवकों को आज्ञा दी कि इस कलमदान का मूल्य नियत कर दो। हम उतना रुपया बाँट देंगे। दाम लगानेवाले बेईमान थे। उन्होंने उसके वास्तविक मूल्य का चौथा पाँचवाँ क्या बल्कि दसवाँ भाग भी मूल्य न लगाया। और उसमें से भी कुछ-कुछ तो आप ही हजम कर गए। फिर आगे चलकर कहते हैं कि दौलतखाँ लोधी, मुल्ला महमूदी आदि कुछ चपर-कनातियों ने उससे निवेदन किया कि यदि हम आपके नौकर हुए हैं, तो हमने कोई अपराध तो नहीं किया है, जो बादशाही नौकरों के नीचे इस प्रकार दबे रहें और वे हमसे ऊँचे रहें। तलवारें मारने में ये लोग हमसे कुछ आगे तो निकल ही नहीं जाते हैं। जिस प्रकार और लोग आपके सामने आकर अभिवादन आदि करते हैं, उसी प्रकार ये लोग भी क्यों न किया करें? ये वाहियात और मन को लुभानेवाली बातें मिरजाखाँ को अच्छी लगीं। पर फिर भी आखिर बैरमखाँ का लड़का था। खिलअत, घोड़े, सामग्री, पुरस्कार आदि बहुत कुछ उनको देने को तैयार किया। स्वयं तोशाखाने में जाकर बैठा और ख्वाजा निजामउद्दीन को (अब तो उनकी बुद्धिमत्ता और

चतुराई की धाक ही बँध गई थी) बुलवा कर उनसे परामर्श करने के लिये यह भेद कहा। किसी समय ख्वाजा की बहन बैरमखाँ को ब्याही हुई थी। उसने कहा कि मैं जानता हूँ कि यह सब तुम्हारे नौकरों की दुष्टता है। तुम्हारा ऐसा विचार नहीं है। पर जरा यह तो सोचो कि यदि हुजूर यह बात सुनेंगे, तो क्या कहेंगे। और यदि यह भी मान लिया जाय कि उन्होंने कुछ भी न कहा, तो भी शहाबुद्दीन अहमदखाँ पंज-हजारी मन्सबदार ठहरा। उमर में बुड्ढा और तुमसे कहीं बड़ा है। वह आकर तुम्हारे सामने अभिवादन करे, यह शोभा नहीं देता। एक ऐसा समय था जब एतमादखाँ अपने निजी बीस हजार लश्कर का स्वामी था। वह पुराना अमीर है। वह आकर तुम्हारे सामने अभिवादन करे, भला इसमें क्या शोभा है! पायन्दाखाँ मुगल पुराना तुर्क है। आश्चर्य नहीं कि वह अभिवादन करने से इन्कार भी कर जाय। और बाकी जो लोग हैं, वे तो खैर किसी गिनती में नहीं हैं। इस प्रकार समझाने-बुझाने से मिरजा समझ गए और उन्होंने उन लोगों से अभिवादन कराने का विचार छोड़ दिया।

संसार भी बहुत ही विलक्षण स्थान है। आखिर लड़का ही था। भाग्य ने हद से बढ़कर सहायता की। लाखों आदमी उसकी प्रशंसा करने लगे। चारों ओर से वाह-वाह होने लगी। और फिर बात भी वाह-वाही की थी। उसका दिमाग बहुत ऊँचे चढ़ गया।

सवेरे के समय अभी सूर्य ने अपना झंडा भी नहीं फहराया था कि खानखानाँ विजय का झंडा फहराता हुआ अहमदाबाद

नगर के अन्दर जा पहुँचा। यह वही नगर था जहाँ तीन वर्ष की अवस्था में उसका सारा घर लुट-पुटकर नष्ट हो गया था और तेरह वर्ष की अवस्था में जहाँ वह अकबर की चढ़ाई में उसके साथ आया था। उसने नगर में ढिंढोरा पिटवा दिया कि सब लोगों को अभय-दान दिया गया। प्रजा को उसने सान्त्वना और दिलासा दिया। बाजार खुलवाए और नगर तथा आस-पास के स्थानों का उपयुक्त प्रबन्ध किया। तीसरे दिन मालवे के कलीचखाँ आदि अमीर भी सेनाएँ लिए हुए आ पहुँचे। सब लोगों ने मिलकर परामर्श किया। नगर का भली भाँति प्रबन्ध करके ताजी आई हुई सेनाओं को साथ लेकर मुजफ्फरखाँ के पीछे चल पड़े। सब लोगों ने बहुत कुछ समझाया-बुझाया कि अब सेनापति का गुजरात में ही रहना उचित है। पर वह कुछ कार्य और सेवा करके दिखलाना चाहता था। नया खून जोश मार रहा था। इसलिये उन लोगों के चले जाने पर मिरजाखाँ स्वयं भी उनके पीछे-पीछे रवाना हुआ।

मुजफ्फर खम्भात में जा पहुँचा। वहाँ जाकर उसने लोगों को परचाना और अपनी ओर मिलाना आरम्भ किया। उसे अपने पुराने स्वामी का पुत्र समझकर लोग भी उसके चारों ओर सिमटने लगे। व्यापारियों ने भी धन से सहायता की। दो हजार के लगभग सेना एकत्र हो गई। मिरजाखाँ भी बिजली की तरह पीछे-पीछे दस कोस की दूरी पर था। जब मुजफ्फरखाँ को उसके आने का समाचार मिला, तब वह वहाँ से निकल कर बड़ौदे में आ पहुँचा। मिरजाखाँ ने कलीचखाँ आदि कुछ सरदारों को सेना देकर आगे बढ़ाया। ये लोग पुराने सिपाही थे। रास्ते की

उपद्रवियों सामने देखकर इन लोगों ने आगे बढ़ना उचित न समझा। वह वहाँ से भी निकला। बादशाही सेना उसके पीछे-पीछे थी। अमीर लोग यदि आस-पास कहीं उपद्रवियों को देखते थे तो दाहिने-बाएँ होकर उनकी भी खबर लेते चलते थे। जब ये लोग नाडौत नामक स्थान पर आए, तब मुजफ्फर वहाँ से उठकर पहाड़ में घुस गया। वह चाहता था कि यहाँ जमकर एक मैदान और करना चाहिए और अन्तिम बार अपने भाग्य की परीक्षा कर देखनी चाहिए। उस समय उसकी सेना की संख्या तीस हजार और खानखानाँ की सेना की संख्या आठ-नौ हजार थी।

यह विजय-पत्र भी रुस्तम और अस्फन्दयार के विजय-पत्रों से कम नहीं है। मिरजाखाँ ने लश्कर का विभाग करके सेना के पैर जमाए। हरावल और दाहिने बाएँ पार्श्वों को बढ़ाया। पहले ही ख्वाजा निजामउद्दीन को आगे भेज दिया था, क्योंकि यह पहाड़ की लड़ाई थी। उससे कह दिया कि आगे चलकर देखो कि रास्ते का क्या हाल है; और शत्रु की सेना का क्या हिसाब और क्या रंग-ढंग है। जैसी परिस्थिति हो, उसी के अनुसार युद्ध आरम्भ किया जाय। ये पहाड़ की तराई में जा पहुँचे। वहाँ पहुँचते ही उसके पैदल सैनिकों से सामना हो गया। पर ख्वाजा निजामउद्दीन ने उन लोगों को ऐसा रेला कि सामने जो बड़ा पहाड़ था, उसी में वे लोग घुस गए। ये भी उन्हें दबाते हुए चले गए। वहाँ पहुँचकर देखा कि शत्रु का लश्कर एक लम्बी पंक्ति में मार्ग रोके हुए खड़ा है। सब स्थान युद्ध की सामग्री से पटे पड़े थे। पर फिर भी ये जाते ही उनसे भिड़ गए और ऐसा धूआँ-धार युद्ध हुआ कि दृष्टि काम नहीं करती थी। ख्वाजा ने करामात

यह की कि सवारों को पैदल करके आगे बढ़ाया और झट पास की पहाड़ी पर अधिकार कर लिया। साथ ही कलीचखाँ के पास आदमी भेजे। वह भी बाएँ हाथ से चला आ रहा था। उसने भी आते ही शत्रु से टक्कर खाई। पर शत्रु ने जोर देकर उसे पीछे हटा दिया और उसे दबाता हुआ आगे चला। इस धकापेल में ख्वाजा के सामने का मार्ग खुल गया। जिस पैदल सेना को अभी उसने बगलवाली पहाड़ी पर चढ़ाया था, वह और आगे बढ़कर पहाड़ पर चढ़ गई। शत्रु के जो सैनिक कलीचखाँ को दबाते हुए चले जा रहे थे, वे इन लोगों को देखकर पीछे की ओर लौट पड़े। यहाँ दोनों पक्षों में गुथकर लड़ाई होने लगी। बहुत अधिक हत्या और रक्त-पात हुआ। कलीचखाँ बस्ती में जा पड़े थे। उन्होंने अपनी रक्षा के लिये वह स्थान बहुत उपयुक्त समझा और वहीं ठहर कर वे समय की प्रतीक्षा करने लगे।

तीव्र-दृष्टि सेनापति बुद्धि की दूरबीन लगाए देख रहा था। जब जहाँ जैसा अवसर देखता था, तब वहाँ वैसी ही सहायता पहुँचाता था। उसने तुरन्त ही हाथियों-वाला तोपखाना भेजा और कह दिया कि जिस पहाड़ी पर हमारी सेना ने अधिकार किया है, उस पर चढ़ जाओ। साथ ही और सेना भी पहुँची। उसने पहुँच कर शत्रु के बाएँ पार्श्व पर आक्रमण किया। अब कई स्थानों पर लड़ाई होने लगी। ऐसा घमासान युद्ध मचा जिसने पहली लड़ाई को भी मात कर दिया। हथ-नालों के गोले ऐसे अच्छे स्थान से चले कि शत्रु की सेना के ठीक मध्य भाग में जाकर गिरने लगे। यह वही स्थान था जहाँ मुजफ्फर खड़ा हुआ था। उसका उत्साह भंग हो गया। उसने अपने लिये पराजय के

कलंक को ही बहुत कुछ समझा और ना-मुजफ्फर (अ-विजयी या पराजित) होकर भाग गया। उसकी सेना की बहुत अधिक हानि हुई। वह भी अनगिनत माल असबाब छोड़ कर भागी। मिरज़ाखाँ ने अमीरों को जिधर-जिधर आवश्यक समझा, भेज दिया और आप आकर अहमदाबाद में देश और प्रजा की व्यवस्था करने लगा।

जब दरबार में मिरज़ाखाँ का निवेदनपत्र पढ़ा गया, तब अकबर बहुत ही प्रसन्न हुआ। उसने आज्ञापत्र भेज कर सबका उत्साह बढ़ाया। मिरज़ाखाँ को खानखानाँ की उपाधि, खिलअत, घोड़ा, जड़ाऊ खंजर, तमन, तूग (झंडा) और साथ ही पंज-हज़ारी मन्सब प्रदान किया जो अमीरों की उन्नति की चरम सीमा है। और लोगों को भी दस, बीस और अठारह, तीस के अनुपात से उचित समझकर मन्सब बढ़ाए। यह घटना और दैवी विजय सन् ९९१ हि० में घटित हुई थी।

मुझे बहुत से पत्रों और खरीतों आदि का एक बहुत पुराना संग्रह मिला है। उस विजय के अवसर पर खानखानाँ ने अपने पुत्र के नाम एक पत्र लिखा था। वह पत्र परिशिष्ट में दिया गया है। वह पत्र बहुत ध्यानपूर्वक पढ़ने के योग्य है। उससे युद्ध सम्बन्धी बहुत सी वास्तविक घटनाओं का पता चलता है। इस युद्ध में उसके साथ जो विरोधी साथी गए थे, उनकी निष्ठा या द्रोह का उससे बहुत अच्छा पता चलता है। उसके शब्दों से यह टपकता है कि असहाय दशा में उसका हृदय पानी-पानी हो रहा था। क्षण-क्षण पर आशा और निराशा दोनों मिलकर उसके हृदय पर जो चित्र अंकित करती थीं, और फिर मिटाती

थीं, वे सब उसमें दर्पण के समान देखने में आते हैं। यह रंग ऐसी कलम से फेरा गया है कि यदि पत्र किसी प्रकार बादशाह के हाथ में भी जा पड़े तो उसके हृदय पर भी बहुत सी अभीष्ट बातें अंकित कर दे। और उसने लड़के को यह भी अवश्य लिखा होगा कि यह पत्र स्वयं लेकर हुजूर की सेवा में चले जाना। इस पत्र से यह भी पता चलता है कि उसकी लेखन-शक्ति भी बहुत अद्भुत थी और लिखने में उसकी कलम बहुत अच्छी तरह चलती थी। वह अपना अभिप्राय बहुत ही प्रभावशाली रूप में प्रकट करता था! प्रताप की सफलता और पद की वृद्धि हो रही थी। उस समय मिरजाखाँ की अवस्था बीस वर्ष या इससे कुछ ही ऊँचे-नीचे होगी। इसी अवस्था में ईश्वर ने उसे वह वैभव प्रदान किया जो उसके पिता को भी बिलकुल अन्तिम अवस्था में जाकर प्राप्त हुआ था।

यदि सच पूछा जाय तो अधिकार, शासन, वैभव और अमीरी का सारा सुख भी युवावस्था में ही है; क्योंकि यह अवस्था भी एक बहुत बड़ी सम्पत्ति या वैभव है। वे लोग बहुत ही भाग्यवान् और प्रतापशाली हैं जिन्हें सभी सम्पत्तियाँ ईश्वर एक साथ ही देता है। अमीरी और उसके साथ होनेवाली सब बातें, अच्छी सवारी और अच्छे मकान युवा अवस्था में ही पूरी पूरी शोभा देते हैं। यदि यौवन काल हो तो अच्छा भोजन भी आनन्द देता है और अंग लगता है। यदि बेचारे बुड्ढे के लिये अच्छा भोजन हो भी तो उसे उससे कोई आनन्द नहीं मिलता। यदि बुड्ढा अच्छे अच्छे वस्त्र पहनता है और हथियार सजकर घोड़े पर चढ़ता है तो उसकी कमर

झुकी हुई होती है और कन्धे ढलके हुए होते हैं। लोग देखकर हँस देते हैं; बल्कि अपने आपको देखकर स्वयं लज्जा आती है।

शेर शाह को उन्नति के पड़ाव पार करते करते इतना अधिक समय लग गया कि जब उसके सिर पर राजमुकुट रखने का समय आया, तब तक उसका बुढ़ापा भी आ गया था। जिस समय वह बादशाह बना था, उस समय उसका सिर सफेद हो गया था, दाढ़ी बगले की तरह हो गई थी, मुँह पर झुर्रियाँ पड़ गई थीं और आँखों में चश्मा लगाने की आवश्यकता आ पड़ी थी। वह जब राजोचित आभूषण पहनता था, तब उसके सामने दर्पण रखा रहता था। उसमें अपना प्रतिबिम्ब देखकर वह कहा करता था कि ईद तो हुई, पर सन्ध्या होते होते हुई।

ईश्वर दिल्ली के अपराध क्षमा करे। हर एक बादशाह को यही शौक रहा है कि मैं इस नगर में अपना बल-वैभव लोगों को दिखलाऊँ। जब शेर शाह बादशाह हुआ, तब उसने भी दिल्ली पहुँच कर जशन किया। सन्ध्या के समय वह अपने कुछ मुसाहबों को साथ लेकर घोड़े पर सवार होकर बाहर घूमने के लिये बाजार में निकला। वह चाहता था कि मैं सब लोगों को देखूँ और सब लोग मुझे देखें। भले घर की दो वृद्धा स्त्रियाँ थीं जो अब बहुत गरीब हो गई थीं। वे दिन भर चरखा काता करती थीं और सन्ध्या समय बाजार में जाकर सूत बेच आया करती थीं। उस समय भी वे दोनों बुरका ओढ़कर सूत बेचने के लिये बाजार में निकली थीं। बादशाह की सवारी निकलने का समाचार सुन-कर वे भी एक किनारे खड़ी हो गईं। वे भी नए बादशाह को देखना चाहती थीं। शेर शाह घोड़े पर सवार, बाग ढीली छोड़े

थीं, धीरे धीरे चले जा रहे थे। एक ने दूसरी से कहा—बूआ, ऐ तुमने देखा ? दूसरी बोली—हाँ बूआ, देखा। पहली बोली—दुलहिन को दुलहा तो मिला, पर बुड्ढा। शेर शाह भी उस समय उन दोनों के पास पहुँच गया था। उसने भी सुन लिया। ... छाती उभारी और बाग खींच कर घोड़े को गुदगुदाया। ईश्वर जाने वह घोड़ा अरबी था या काठियावाड़ी। वह उछलने-कूदने लगा। दूसरी बुढ़िया बोली—ऐ बूआ, यह तो बुड्ढा भी है और मसूखरा भी।

संयोग—उन दिनों बादशाह को अनेक प्रकार के चिन्तित करनेवाले समाचार मिला करते थे। वे हर दम इसी चिन्ता में रहते थे। एक दिन मीर फतहउल्लाह शीराजी को बुलवा कर उनसे प्रश्न किया कि इस युद्ध का क्या परिणाम होगा ? उन्होंने नक्षत्र-यन्त्र निकाल कर देखा कि इस समय का स्वामी कौन सा नक्षत्र है। सब नक्षत्रों की स्थिति और आकाश-पिंडों की गति देख कर बतला दिया कि इस समय दो स्थानों पर युद्ध हो रहा है और दोनों स्थानों में हुजूर की ही विजय होगी। संयोग है कि ऐसा ही हुआ भी।

जिस समय मिरजाखाँ के अच्छे-अच्छे कार्य वहाँ उसे खानखानाँ बनाने के साधन प्रस्तुत कर रहे थे, उस समय अकबर के दरबार की जो अवस्था हो रही थी, उस अवस्था का चित्र किसी इतिहास-लेखक ने अंकित नहीं किया है। हाँ, अब्बुल-फजल ने खानखानाँ को बधाई देने के लिये जो पत्र लिखा था, उसमें उस समय की अवस्था का अवश्य कुछ वर्णन है। यह एक बहुत प्रसिद्ध पत्र है जो अपने विषय की उच्चता और भाषा

की कठिनता और उत्तमता आदि के लिये बड़े-बड़े विद्वानों और पंडितों में बहुत अधिक प्रसिद्ध है। उस पत्र से यह पता चलता है कि जब कई दिनों तक गुजरात से कोई समाचार न आया, तब लोग तरह-तरह की हवाइयाँ उड़ाने लगे थे। उसके और उसके पिता के शत्रु अपने छिपने के स्थान से बाहर निकल खड़े हुए थे। वे प्रसन्न होते थे और मित्रों से छेड़-छाड़ करके गुजरात का हाल पूछते थे। वे अकबर पर भी व्यंग्य करते थे। कहते थे कि एक तो दक्खिन का देश, और दूसरे वह भी बिगड़ा हुआ देश। जब ऐसे विकट अवसर पर दो वृद्ध सेनापति मात खा चुके थे, तब एक ऐसे नवयुवक को वहाँ क्यों भेजा गया, जिसे कुछ भी अनुभव नहीं है? भला वह सेनापति है? हाँ, सभा का शृंगार अवश्य है। उसका युद्ध और संग्राम से क्या सम्बन्ध! वैरमखाँ और उसके वंश के शुभ-चिन्तक भी चुप थे और अकबर भी चुप था। इसी लिये वह इलाहाबाद के किले की नींव रख कर जल्दी-जल्दी इस विचार से आगरे लौट आया कि मैं स्वयं ही चढ़ कर वहाँ चलूँगा और युद्ध को सँभालूँगा। वह कोड़ा घाटमपुर तक ही पहुँचा था कि उसे विजय का शुभ समाचार मिल गया। वह बहुत ही प्रसन्न हुआ और उसने ईश्वर को अनेकानेक धन्यवाद दिए। दोरुखे दोगलों ने तुरन्त अपनी बात-चीत का रुख और ढंग बदल दिया। झुक-झुक कर कहने लगे कि यह हुजूर की ही गुणों को परखनेवाली आँख थी जिसने उसका गुण तुरन्त ताड़ लिया। इतने पुराने-पुराने जान निछावर करनेवाले सेवक उपस्थित थे। पर हुजूर ने उसी को भेजा।

उसी समय आज्ञा हो गई कि नकारखाने में बधाई की नौबत बजे। उक्त पत्र से यह भी पता चलता है कि उन दिनों बनजारों के चौधरियों और महाजनों के द्वारा बहुत शीघ्र समाचार पहुँचा करते थे। पहले कृष्ण चौधरी ने आकर समाचार दिया। फिर लश्कर के अमीरों के भी निवेदन-पत्र पहुँचने लगे। अकबर ने मिरजाखाँ की बहुत अधिक प्रशंसा की और कहा कि इसके पिता की खानखानाँ-वाली उपाधि इसे दे दो। बादशाह की प्रसन्नता का अनुमान एक इसी बात से कर लो कि उस पत्र में शेख अब्बुल फजल ने लिखा है कि उस समय नकारखाने में बधाई की नौबत बजने लगी। मित्र और शत्रु दोनों समान रूप से प्रसन्न होकर मिरजाखाँ की प्रशंसा कर रहे थे। और सच बात तो यह है कि यदि मिरजाखाँ को उपाधि या मन्सब कुछ भी न मिलता, तो भी उस समय उसने वास्तव में ऐसा काम कर दिखलाया था कि सभी लोग, यहाँ तक कि शत्रु भी, उसकी प्रशंसा करने के लिये बाध्य हो गए थे। ऐसी ऊँची उपाधि, जिसकी कामना पंज-हजारी अमीर भी हृदय से करते थे, उसे इतनी जल्दी मिल गई थी कि सहसा किसी को उसकी कल्पना भी नहीं हो सकती थी। अब यदि उसे पंज-हजारी मन्सब भी मिल गया तो कौन सी बड़ी बात हुई।

इस पत्र से यह भी पता चलता है कि दो विजयों के उपरान्त मिरजाखाँ ने अब्बुल फजल और उनके साथ ही हकीम हम्माम को भी पत्र भेजा था। उस पत्र में सम्भवतः उसने अपने हृदय की विकलता प्रकट की थी और लिखा था कि मेरे साथ यहाँ जो अमीर आए हैं, वे युद्ध-क्षेत्र में मेरा साथ देने से

जी चुराते हैं। और अब्बुल फजल के पत्र के अन्त में उन्हें रायें देकर लिखा था कि हुजूर से निवेदन करो कि वे मुझे वापस बुला लें। इसके उत्तर में शेख ने लिखा था कि मैंने बहुत विचार करके देखा, पर ऐसा करना मुझे किसी प्रकार उचित नहीं जान पड़ा। फिर मित्रों से भी परामर्श हुआ। उन सब लोगों की भी यही सम्मति हुई कि मिरजाखाँ को वापस बुलाने का प्रयत्न करने में कोई हानि नहीं है। बादशाह की सेवा में निवेदन कर दो। आशा है तो लाभ की ही आशा है। खैर; किसी प्रकार बादशाह की सेवा में यह निवेदन उपस्थित किया गया; क्योंकि इसके लिये मिरजाखाँ का बहुत अधिक आग्रह था। अकबर ने बहुत ही चकित होकर कहा कि हैं! ऐसे समय में यहाँ आना कैसा! हकीम ने अपनी वाचालता और चिकनी-चुपड़ी बातों की माजून तैयार करके बहुत कुछ कहा-सुना। पर फिर भी शेख अब्बुल फजल ने लिखा है कि जहाँ तक मैं समझता हूँ, जिस प्रकार इन बातों से हुजूर का आश्चर्य दूर नहीं हुआ, उसी प्रकार इनसे कोई हानि भी नहीं हुई।

खानखानाँ ने इसके उपरान्त जो निवेदन-पत्र लिखा था, उसमें बहुत सी बातों के साथ टोडरमल के लिये भी निवेदन किया था; और यह भी प्रार्थना की थी कि हुजूर स्वयं इस देश पर अपने प्रताप की छाया डालें। अकबर ने भी विचार किया था कि अगले महीने नौरोज है। जशन करने के उपरान्त मैं यहाँ से प्रस्थान करूँगा। साथ ही राजकोष भेजने और निवेदन-पत्रों की व्यवस्था करने की भी आज्ञा दे दी और उस आज्ञा का पालन भी हो गया। पर बादशाह स्वयं नहीं गए।

उक्त पत्र में अब्बुलफजल ने लिखा है कि तुम्हारे पत्र से बहुत विकलता और घबराहट पाई जाती है। इस विषय पर उन्होंने बहुत से मित्र-भावपूर्ण और ऐसे वाक्य लिखे हैं, जैसे बड़े लोग छोटों को लिखा करते हैं। शेख ने टोडरमल के बुलाने को भी अच्छा नहीं समझा है। और शेख का ऐसा समझना ठीक भी था। लेकिन नवयुवक सेनापति ने देखा कि मुझ पर एक बहुत बड़े युद्ध का पहाड़ और उत्तरदायित्व का आस्मान टूट पड़ा है। देश की ओर देखा तो वहाँ एक सिरे से दूसरे सिरे तक आग लगी हुई है। साथियों को देखा तो वे सब के सब बहुत पुराने महात्मा हैं, जिन्हें बादशाह ने उसकी अधीनता में कर दिया है। अवसर ऐसा आ पड़ा है कि वे लोग आँख सामने नहीं कर सकते। बहुत ही विवश होकर मन्त्रणा-सभा में आते हैं, लेकिन फिर भी गुम-सुम बैठे रहते हैं। किसी विषय पर सम्मति पूछो तो बात-बात पर अलग हो जाते हैं और कहते हैं कि हम तो आपके अधीन हैं। आप जो कुछ आज्ञा दें, सिर-आँखों से उसका पालन करने के लिये प्रस्तुत हैं। अपने साथियों के साथ एकान्त में बैठकर ईश्वर जाने वे लोग आपस में क्या-क्या कहा करते थे। नवयुवक को वहाँ के भी सब समाचार मिलते रहते थे। ऐसी अवस्था में अब्बुलफजल सरीखे दृढ़ व्यक्ति के सिवा और कौन ऐसा था जो न घबराता। जिन लोगों को मनुष्य अपना हार्दिक और परम मित्र समझता है, उन्हींसे वह अपने हृदय की गूढ़ बातें कहा करता है; और जो अवस्था होती है, वह सब स्पष्ट रूप से उन्हीं को लिखता है! इसमें संदेह नहीं कि इस नवयुवक के मन में उस समय जो जो बातें उठी होंगी, वे सब

उसने अब्बुलफजल को स्पष्ट रूप से लिख दी होंगी। और यही कारण राजा टोडरमल को बुलाने का हुआ होगा। क्योंकि राजा टोडरमल चाहे खानखानाँ के सच्चे मित्र रहे हों या न रहे हों, लेकिन फिर भी वे बहुत पुराने कार्य-कुशल और अनुभवी कर्मचारी थे और शुद्ध हृदय से साम्राज्य के शुभचिन्तक थे। ऐसा नहीं था कि किसी दूसरे राजकर्मचारी के साथ किसी प्रकार की शत्रुता होने के कारण ही बादशाह का कोई काम खराब कर देते। और सब से बढ़कर बात यह थी कि अकबर को उन पर पूरा-पूरा विश्वास था।

मिरजाखाँ ने बादशाह को वहाँ तक बुलाने के लिये भी प्रार्थना की थी। इसमें सन्देह नहीं कि वह नवयुवक यह अवश्य चाहता होगा कि जिस बादशाह ने मुझे पाला-पोसा है, जिसने मुझे शिक्षा-दीक्षा दी है, उसकी आँखों के सामने मैं कुछ काम कर दिखलाऊँ। वह भी समझ ले कि मैं क्या करता हूँ और ये पुराने पापी क्या करते हैं। और सम्भव है कि उसका यह भी विचार रहा हो कि मेरे जो साथी और सेवक बादशाह के नमक का ध्यान रखकर अपनी जान निछावर कर रहे हैं, उन्हें यथेष्ट पुरस्कार और पारितोषिक आदि भी दिलवाऊँ।

यहाँ हम संक्षेप में यह भी बतला देना चाहते हैं कि उस समय शेख अब्बुलफजल और खानखानाँ में किस प्रकार का सम्बन्ध और व्यवहार था। पाठक यह कल्पना करें कि एक ही दरबार में समान अवस्था के दो सेवक हैं। खानखानाँ एक नवयुवक, सुशील, अच्छे लोगों की संगति में रहनेवाला, मिलनसार, सब बातें समझनेवाला और अमीर का लड़का है। चाहे दरबार हो चाहे विद्या विषयक सभा हो, चाहे सवारी-शिकारी

हो, हर एक जगह, खुले दरबार में भी और एकान्त में भी, और यहाँ तक कि महलों में भी, पहुँचता है। यदि मनोविनोद के खेल-तमाशे हों, तो वहाँ भी वह एक बहुत अनुकूल मुसाहब के रूप में रहता है। अब्बुलफजल एक बहुत बड़ा विद्वान्, बहुत अच्छा लेखक, अच्छे स्वभाववाला और सदा अच्छे लोगों की संगति में रहनेवाला है। वह भी दरबार में, एकान्त में और दूसरी अनेक प्रकार की बैठकों में उपस्थित रहता है। उसकी पूर्ण योग्यता, बुद्धिमत्ता और भाषण तथा लेखन के कौशल ने खानखानाँ को अपना परम अनुरक्त कर रक्खा है। और अब्बुल-फजल इस विचार से उसके साथ मेल-मिलाप रखना आवश्यक और उचित समझता है कि उसका स्वभाव बहुत अच्छा है, उसकी संगत में रहने से बहुत आनन्द आता है। साथ ही वह यह भी देखता है कि यह मेरे लेखों और गुणों का बहुत आदर करता है। इसमें उसकी एक नीति यह भी रहती है कि यह नवयुवक हर दम बादशाह की सेवा में उपस्थित रहता है। और सबसे बड़ी बात यह है कि वह जानता है कि जिस विषय में मैं उन्नति कर सकता हूँ, वह इसकी उन्नति के मार्ग से बिल-कुल स्वतन्त्र और अलग है। इस नवयुवक अमीर से उसे किसी प्रकार की हानि पहुँचने की कोई आशंका नहीं है। और इस बात में भी कोई आश्चर्य नहीं है कि जिस समय शेख के पुराने-पुराने शत्रु दरबार पर बादलों की तरह छाए होंगे, उस समय यह नवयुवक दरबार में शेख की हवा बाँधता होगा और एकान्त में बादशाह के हृदय पर उसकी ओर से शुभ विचारों के चित्र अंकित करता होगा।

अब्बुलफजल, फैजी, खानखानाँ, हकीम अब्बुलफतह, हकीम हुमाम, मीर फतहउल्लाह शीराजी आदि अवश्य भिन्न-भिन्न समयों में और अवसरों पर एक दूसरे के रहने के स्थान पर एकत्र हुआ करते होंगे। फैजी और अब्बुलफजल का एक ही धर्म था; और जो धर्म था, वह सब पर विदित ही है। बाकी सब लोग हृदय से तो शीया थे और नाम के लिये सुन्नत सम्प्रदाय के थे, पर वास्तव में ऐसे थे कि मानों सभी धर्म और सम्प्रदाय उन्हीं के हैं। इसलिये ये सब लोग आपस में एक दूसरे के मित्र और सहायक बने रहते होंगे। हाँ जिन लोगों का धर्म एकांगी रहता होगा, वे इनसे अवश्य खटक रखते होंगे। और यह भी एक आवश्यक बात है कि नवयुवकों का नवयुवकों के साथ बहुत मेल-जोल रहा करता है; और बुड्ढों का बुड्ढों के साथ मेल-मिलाप रहता है। नवयुवकों में जो हृदय की प्रफुल्लता और आनन्दपूर्ण वृत्ति स्वाभाविक और वास्तविक रूप से होती है, वह सब बुड्ढे बेचारे कहाँ से लावें ! यदि वे अपनी परिहास-वृत्ति दिखलावेंगे तो यही कहा जायगा कि बुड्ढे भी हैं और मसखरे भी हैं।

हे ईश्वर, मैं कहाँ था और किधर आ पड़ा ! परन्तु बातों के मसाले के बिना ऐतिहासिक घटनाओं का पूरा-पूरा आनन्द भी नहीं आता।

सन् ९९२ हि० में मुजफ्फर ने तीसरी बार सिर उठाया। खानखानाँ ने अमीरों को सेनाएँ देकर कई ओर भेजा और स्वयं सेना लेकर अलग पहुँचा। मुजफ्फर ने देखा कि इस समय मेरी ऐसी अवस्था नहीं है कि मैं इन लोगों का सामना कर सकूँ;

इसलिये वह वहाँ से भागा। वह उस देश के राजाओं और आस-पास के जमींदारों आदि के पास अपने दूत और प्रतिनिधि दौड़ाता था औप जगह जगह भागा फिरता था। लूट-मार कर के किसी प्रकार अपना निर्वाह करता था। उसने आस-पास के प्रायः इलाके नष्ट-भ्रष्ट कर दिए। भला इस प्रकार कहीं साम्राज्य स्थापित होते हैं!

एक अवसर पर खानखानाँ के पास जाम ने यह समाचार भेजा कि मुजफ्फर अमुक स्थान पर ठहरा हुआ है। यदि तत्पर सिपाही और चालाक घोड़े हों तो वह अभी पकड़ा जा सकता है। खानखानाँ स्वयं सवार होकर दौड़ा, पर वह हाथ नहीं आया। पीछे से पता लगा कि जाम दोनों ओर मिला हुआ था और दोनों को एक दूसरे के भेद बतलाता था। इन लड़ाई-झगड़ों से इतना लाभ अवश्य हुआ कि पहले जो लोग मुजफ्फर का साथ दे रहे थे, वे अब अपनी खुशामदों की सिफारिश ले लेकर इनकी ओर प्रवृत्त होने लगे। जूनागढ़ के शासक अमीनखाँ गोरी ने अपने लड़के को बहुत से बहुमूल्य उपहार आदि देकर खानखानाँ की सेवा में भेजा।

मुजफ्फर ने देखा कि वीर सेनापति अपने सभी अमीरों को साथ लिए हुए उधर है। उसने अपनी सब आवश्यक सामग्री जाम के पास रख दी और अपने लड़के को भी उसी के पास छिपा दिया। स्वयं घोड़े उठा कर अहमदाबाद की ओर बढ़ा। नेती नामक थाने पर खानखानाँ के विश्वसनीय और निष्ठ सेवक उपस्थित थे। वहाँ दोनों पक्षों में अच्छी मुठ-भेड़ हुई। मुजफ्फर छाती पर धक्का खाकर पीछे की ओर लौटा। जब खानखानाँ को

इस षड्यन्त्र का पता चला, तब वे बहुत क्रुद्ध हुए और बोले कि मैं जाम (यह उस राजा की एक उपाधि भी है; और इसका दूसरा अर्थ "प्याला" भी होता है) को तोड़कर ठीकरा कर दूँगा। चट-पट सेना लेकर पहुँचा और अचानक नवा गाँव नामक स्थान से चार कोस की दूरी पर पहुँच कर वहाँ झंडा गाड़ दिया। नवा गाँव में जाम की राजधानी थी। जाम चक्कर में आए। उन्होंने बहुत ही नम्रता और दीनतापूर्वक एक निवेदन-पत्र लिखा। शरज़ा नामक हाथी और बहुत से अद्‌भुत तथा बहुमूल्य उपहारों के साथ अपने पुत्र को खानखानाँ की सेवा में भेजा। सन्धि कर लेना, शान्ति बनाए रखना और लोगों को तसल्ली देना तो मानों अकबर के शासन और साम्राज्य का नियम ही था। और खानखानाँ भी अकबर के पूरे और पक्के शिष्य थे; इसलिये उन्होंने उस समय वहाँ से लौट आना ही उचित समझा।

अकबर ने हकीम ऐन उल् मुल्क आदि बुद्धिमान् और योग्य अमीरों को दक्षिण की सीमा पर जागीरें देकर लगा रखा था। उनके अच्छे अच्छे कार्यों का एक शुभ फल यह भी हुआ था कि बुरहानपुर का हाकिम राजी अलीखाँ अकबर के दरबार की ओर प्रवृत्त हो गया था। इस विचार से कि मेल-मिलाप और एकता का सम्बन्ध और भी दृढ़ हो जाय, अब्बुल फजल की बहन का विवाह राजी अलीखाँ के भाई खुदावन्द जहाँ के साथ कर दिया गया था। राजी अली खाँ एक बहुत पुराना और अनुभवी आदमी था। वह नाम के लिये बुरहानपुर और खान्देश का हाकिम था; पर वास्तव में सारे खान्देश और दक्षिण में उसका प्रभाव विद्युत् के समान फैला हुआ था। जो लोग

साम्राज्य के कार्यों के बहुत अच्छे ज्ञाता थे, वे राजी अलीखाँ को दक्षिण देश की कुंजी कहा करते थे।

सन् ९९३ हि० में खानखानाँ अहमदाबाद में बैठे हुए अकबर का सिक्का जमा रहे थे। उस अवसर पर दक्षिण और खान्देश के हाकिम आपस में बिगड़ खड़े हुए। राजी अलीखाँ ने अपना दूत भेजा और निवेदन की दूरबीन से दिखलाया कि दक्षिण देश का मार्ग खुला हुआ है। इधर यह इसी कामना की पूर्त्ति के लिये बहुतेरी मन्नतें माने हुए बैठे थे। इन्होंने अमीरों को एकत्र करके परामर्श करने के लिये मन्त्रणा-सभा की। खानखानाँ के पास आज्ञा पहुँची। वे भी अहमदाबाद से चलकर फतहपुर जा पहुँचे। यही निश्चय हुआ कि उक्त देश को जीतकर अपने अधिकार में कर लेना ही इस समय उचित है। खानखानाँ फिर अहमदाबाद के लिये विदा हो गए और खान आजम दक्षिण की चढ़ाई के सेनापति नियुक्त होकर उस ओर चल पड़े।

जब मुजफ्फर ने देखा कि खानखानाँ यहाँ नहीं हैं और मैदान खाली है, तब उसने फिर एक बार अहमदाबाद की ओर बढ़ने का विचार किया। जाम ने उसकी बुद्धि भ्रष्ट कर दी और उसे यह समझाया कि पहले जूनागढ़ ले लो; फिर अहमदाबाद से समझ लेना। वह इसी सरूर में मस्त होकर आपे से बाहर हो गया और फिर सँभलकर बैठा। बादशाही अमीरों को भी यह समाचार मिला। वे लोग सुनते ही दौड़े। उन्हें देखते ही वह उलटे पैरों भागा। इसी बीच में खानखानाँ भी आ पहुँचे। वह तो निकल ही गया था। आस-पास जो इलाके बचे हुए थे, उनका इन्होंने अच्छी तरह प्रबन्ध कर लिया।

खान आजम बहुत से बादशाही अमीरों को साथ लेकर उस ओर गए और लड़ाइयाँ छिड़ गईं। गुजरात का अहमदाबाद मार्ग में ही पड़ता था और दक्षिण की सीमा पर था। इस युद्ध में भी अकबर ने खानखानाँ को सम्मिलित किया था। अब्बुल-फजल के पत्रों में उस समय का लिखा हुआ खानखानाँ के नाम का एक पत्र है। यद्यपि उसमें नाम मात्र के लिये बीरबल के मरने का हाल लिखा है, पर वास्तव में वह इसी विषय से सम्बन्ध रखता है। उसमें लिखा है कि तुम्हारा निवेदन-पत्र मिला। देश के सम्बन्ध की जो बातें तुमने लिखी हैं, उन्हें पढ़कर सन्तोष हुआ। दक्षिण पर विजय प्राप्त करने के सम्बन्ध में तुमने जो बातें और उपाय लिखे हैं, वे सब अच्छे जान पड़े। तुम्हारी उच्च कोटि की बुद्धिमत्ता और पूरी वीरता को देखते हुए आशा है कि शीघ्र ही वे सब बातें देखने में आवेंगी जो तुमने लिखी हैं; और वह देश बहुत सहज में जीत लिया जायगा। परन्तु इतिहासों से पता चलता है कि उन्होंने सच्चे हृदय से खान आजम की सहायता नहीं की; और यदि सच पूछो तो खान आजम भी ऐसे आदमी नहीं थे कि कोई सच्चे हृदय से उनकी सहायता कर सकता।

अकबर की दो ही आँखें नहीं थीं, हजार आँखें थीं, जिनमें से एक आँख अपने पूर्वजों के देश पर भी थी। इसके थोड़े ही दिनों बाद उधर तो वह सौतेला भाई हकीम मिरजा मर गया, जिसके हाथ में हुमायूँ के समय से काबुल का शासन था; और साथ ही इधर यह भी सुना कि मावरा उल् नहर के हाकिम अब्दुल्लाखाँ उजबक ने जैहून नदी पार करके बदख्शाँ पर भी अधिकार कर लिया है और मिरजा सुलेमान को भी वहाँ से

निकाल दिया है। इसलिये उसने बदख्शाँ पर लश्कर भेजने का विचार किया।

यह वही अवसर है जब कि खान आजम दक्षिण के युद्ध को नष्ट-भ्रष्ट करके और स्वयं दुर्दशा भोग कर इनके पास पहुँचे थे। खानखानाँ ने बहुत अच्छी तरह उनकी दावत करके उन्हें विदा किया; और स्वयं सुसज्जित सेना लेकर वहाँ से चल पड़े। जब बड़ौदे से होते हुए भड़ौच पहुँचे, तब खान आजम के पत्र आए कि अब तो वर्षा ऋतु आ गई है। इस वर्ष लड़ाई बन्द रखी जाय। अगले वर्ष हम और तुम दोनों साथ मिलकर चलेंगे। खानखानाँ अहमदाबाद को लौट आए। और यही कारण है कि मीर फतह उल्लाह शीराजी भी वहाँ उपस्थित हैं। इस घटना को पाँच महीने बीत चुके थे।

पर इनको समाचार पहुँचानेवाले लोग भी बड़े अद्भुत थे। उन्हें भी समाचार मिल ही गया। उस साहसी नवयुवक के हृदय में आवेश उत्पन्न हुआ होगा। सोचा होगा कि जिन पहाड़ियों पर मेरे पूज्य पिता ने स्वर्गीय हुमायूँ की सेवा में अनेक बार प्राण निछावर किए थे, जहाँ उन्होंने रात को रात और दिन को दिन नहीं समझा था, वहीं चलकर मैं भी तलवारें मारूँ। दक्षिण से निवेदन-पत्र भेजा कि हुजूर ने बदख्शाँ पर चढ़ाई करने का पक्का विचार कर लिया है। मुझे भी आपकी सेवा में उपस्थित होने की कामना विकल कर रही है। मेरा भी जी चाहता है कि मैं भी इस यात्रा में हुजूर की रकाब पकड़ कर साथ साथ चलूँ।

सन् ९९५ हि० में ये और मीर फतहउल्लाह शीराजी बुलवाए गए। उन्होंने ऊँटों और घोड़ों की डाक बैठाई और बहुत जल्दी-

जल्दी चलकर आए। बादशाह ने खान्देश की सब बातें सुनीं। दक्षिण की विजयों के सम्बन्ध में परामर्श हुए। काबुल और बदख्शाँ के युद्ध के सम्बन्ध में भी बात-चीत हुई। उस समय बदख्शाँ की चढ़ाई स्थगित कर दी गई।

मुजफ्फर ने भी अभी तक हिम्मत नहीं हारी थी। कभी खम्भात, कभी नादौत, कभी सूरत, कभी पूरबी, कभी अथनेर और कभी कच्छ आदि जिलों में कहीं न कहीं सिर निकालता था। जब एक जगह से हारता था, तब फिर इधर-उधर से जंगली लुटेरों आदि को एकत्र करके किसी दूसरी जगह आ पहुँचता था। कहीं स्वयं खानखानाँ और कहीं उसके अधीनस्थ अमीर उसे इधर-उधर ढकेलते फिरते थे। ये सब लोग देश की व्यवस्था और प्रबन्ध में लगे हुए थे। उनमें कलीचखाँ पुराना अमीर था; और बन्नू नामक स्थान पर ख्वाजा निजामउद्दीन ने ऐसी वीरता दिखलाई थी कि देखनेवालों को उनसे बड़ी-बड़ी आशाएँ हो गई थीं।

सन् ९९७ हि० में खान आजम को अहमदाबाद गुजरात प्रदान किया गया और खानखानाँ विजयी अमीरों के साथ बुलाए गए। पिता के पदों में से वकील मुतलक या पूर्ण प्रतिनिधि का पद, बरसों हुए, घर से निकल चुका था। टोडरमल के मरने पर सन् ९९८ हि० में वह पद फिर इनके अधिकार में आया। अहमदाबाद गुजरात के बदले में इन्हें जौनपुर प्रदान किया गया।

खानखानाँ सदा राजनीतिक विषयों में तो लगे ही रहते थे, पर साथ ही विद्या और साहित्य से भी खाली नहीं रहते थे।

इसी सन् में उन्होंने बादशाह की आज्ञा से वाकआत बाबरी का अनुवाद करके बादशाह की सेवा में उपस्थित किया। बादशाह ने उसे बहुत पसन्द और स्वीकृत किया।

सन् ९९९ हि० (१५९१ ई०) में बादशाह ने मुलतान और भक्कर को खानखानाँ की जागीर कर दिया और बादशाही अमीर तथा सेनाएँ आदि देकर किसी-किसी के लिखने के अनुसार कन्धार की चढ़ाई पर और किसी-किसी के लिखने के अनुसार ठट्ठा की चढ़ाई पर भेजा। अकबरनामे के लेख में भी इसकी कुछ गन्ध मिलती है। इससे मेरे मन में इस सम्बन्ध में अनुसन्धान करने का विचार उत्पन्न हुआ। इधर उधर देखा, पर कहीं पता न चला। अन्त में मेरी बाल्यावस्था के मित्रों ने मेरी सहायता की। मेरे ये मित्र अब्बुलफजल के वे पत्र थे जो उसने खानखानाँ के नाम लिखे थे और जो मैंने बाल्यावस्था में पाठशाला में बैठ कर कंठस्थ किए थे। उन्होंने यह भेद खोला। कन्धार को उस समय ईरान तो अपनी नियमानुमोदित सम्पत्ति ही समझता था, क्योंकि हुमायूँ उसके सम्बन्ध में वचन दे आए थे। अब्दुल्लाखाँ कहते थे कि हम कन्धार के साथ ही ईरान को भी घोल कर पी जायँ। अकबर ने उस समय देखा कि सफवी (सफी के वंश के) शाहजादे लोग, जो ईरान के साम्राज्य की ओर से वहाँ के हाकिम हैं, ईरान के शाह से कुछ असन्तुष्ट और दुःखी हैं और आपस में भी लड़ रहे हैं; और प्रजा इस ओर अनुरक्त है। दोनों बादशाह अपनी-अपनी लड़ाइयों में लगे हुए हैं। परामर्श तो बहुत दिनों से हो ही रहे थे। अब यह विचार निश्चित हुआ कि बैरमखाँ ने बहुत दिनों तक वहाँ शासन किया

है। खानखानाँ मुलतान के मार्ग से सेना लेकर वहाँ जायँ। इन्होंने भी कई बातें देखीं और सोचीं। एक तो यह कि इस समय वहाँ की जो परिस्थितियाँ और अवस्थाएँ देखने में आती हैं, उस समय वे इनसे कहीं अधिक भीषण और पेचीली थीं। दूसरे भारतवर्ष के लोग उन देशों की यात्रा करने से बहुत डरते हैं, जहाँ बरफ पड़ता है; और यहाँ की सेना में अधिकतर भारतीय ही होते हैं। तीसरा कारण यह भी था कि वहाँ की चढ़ाइयों में रुपए बहुत अधिक खर्च होते हैं और खानखानाँ के हाथ रुपयों के शत्रु थे। उनके पास चाहे कितना ही अधिक धन क्यों न आवे, कभी ठहरता ही न था। इसलिये कुछ तो अपनी इच्छा से और कुछ अपने साथियों के परामर्श से बादशाह से यह निवेदन किया कि पहले ठट्ठा का प्रदेश मेरी जागीर में कर दिया जाय। इसके उपरान्त मैं सेना लेकर कन्धार पर जाऊँगा। इनकी यह सम्मति भी युक्ति-पूर्ण थी। वह दूरदर्शी और सब बातों को समझनेवाला आदमी था। हजारों अनुभवी और जानकार अफगान, खुरासानी, ईरानी और तूरानी उसके दस्तरख्वान पर भोजन करते थे। वह जानता था कि गुजरात के जंगलों में जाकर नगाड़े बजाते फिरना और बात है, और कन्धार शहद की मक्खियों का छत्ता है। दो शेरों में मुँह से शिकार छीनना और उनके सामने बैठ कर उसे खाना लड़कों का खेल नहीं है।

जान पड़ता है कि बादशाह की इच्छा यही थी कि पहले सीधे कन्धार पर पहुँचो। इन्होंने और इनके साथियों ने अकबर का विचार इस ओर फेरा कि मार्ग में ठट्ठा पड़ता है। पहले

उस पर पूरा अधिकार करके रास्ता साफ कर लेना चाहिए। अब्बुलफजल की भी यही सम्मति थी कि ठट्ठे का विचार नहीं करना चाहिए। इसी लिये वे एक पत्र में लिखते हैं कि तुम्हारे वियोग में मुझे ये-ये दुःख हैं; और उनमें से एक दुःख इस बात का भी है कि तुमने कन्धार पर विजय प्राप्त करने का विचार छोड़कर ठट्ठे की ओर रुख किया है।

इन पत्रों से यह भी पता लगता है कि सन् ९९९ हि० के अन्त में सेना ने प्रस्थान किया था। पर अन्दर-अन्दर ईश्वर जाने कब से इसके लिये तैयारियाँ हो रही थीं। क्योंकि सन् ९९८ हि० के पत्र में शेख ने खानखानाँ को लिखा था कि ईश्वर को हजार हजार धन्यवाद है कि विजय की हवाएँ चलने लगी हैं। आशा है कि शीघ्र ही यह प्रदेश जीत लिया जाय। देखना, कन्धकार जाने का विचार और ठट्ठे की विजय किसी और समय पर न टालना, क्योंकि समय और अवसर निकला जा रहा है। बड़ी बात यही है कि यदि चाहो तो हुजूर से उन लोगों को माँग लो जो इस समय उर्दू (लश्कर) में व्यर्थ और फालतू हैं, और यह सेवा ग्रहण करके ठट्ठे को जागीर में स्वीकृत कर लो। मुझे हजार वर्षों का अनुभवी समझ कर यदि यह बात मान लोगे, तो सम्भव है कि यह काम हो जायगा। यह पत्र उस समय का है, जब खानखानाँ को जौनपुर का इलाका मिला हुआ था और कन्धार के लिये अन्दर ही अन्दर बातें हो रही थीं। साम्राज्य के विषय में ईश्वर जाने आज्ञाओं और हिसाब-किताब आदि की क्या-क्या उलझनें होंगी। लिखते हैं कि प्रियवर, मेरी कटु बातों से भी सदा प्रसन्न रहना और मन में

कभी किसी प्रकार का दुःख न आने देना। यदि बादशाह के आज्ञानुसार लिखे हुए आज्ञा-पत्रों में (पर वे आज्ञा-पत्र भी दिखावटी बातों के सिवा और कुछ नहीं हैं) मैं कुछ कठोर या चित्त को दुःखी करनेवाले शब्द लिखूँ, तो अपने मन रूपी उपवन में ठीक बसन्त के समय पतझड़ के दिन न आने देना और मन में किसी प्रकार का दुर्भाव न उत्पन्न होने देना। परगना जब्त करने के या बाकी राजस्व के विषय की ओर जो कुछ उसके बदले में जौनपुर से लिया है, उन सब के विषय की बातों को व्यर्थ बहुत बढ़ाना नहीं चाहिए। यह ढंग और ही लोगों का है; और तुम और ही रास्ते के लोग हो। (अर्थात् तुम्हारा और बादशाह का सम्बन्ध कुछ और ही प्रकार का है।) ईश्वर को धन्यवाद है कि तुम्हारी लिखी हुई सब की सब बातें बादशाह के कानों तक नहीं पहुँचीं। फिर भी उनका अभिप्राय उपयुक्त अवसर पर और उचित रूप में सुना दिया गया। जिस समय बिलकुल एकान्त में रहो, उस समय ईश्वर के दरबार में दिन-रात अपनी अवस्था निवेदन करना और उससे दया की प्रार्थना करना आवश्यक समझो। बहुत अधिक प्रसन्नता को हराम समझो। जो लोग भग्न-हृदय और दुःखी हों, उनके साथ सहानुभूति दिखलाओ और उन्हें सान्त्वना देते रहो। देखो कि कैसा समय और कैसा अवसर है; आदि आदि। शायद खानखानाँ ने अपने किसी पत्र में एक स्थान पर लिखा है कि अमुक-अमुक पुस्तक जलसे में पढ़ी जाती है। तुम्हारी इस सम्बन्ध में क्या सम्मति है? इसके उत्तर में शेख लिखते हैं कि शाहनामा और तैमूरनामा आदि पुस्तकें तो इसलिये लिखी गई थीं कि

लोग इस ढंग पर बात-चीत किया करें। यदि हृदय को शुद्ध करने का अभिप्राय हो तो इसके लिये इखलाके नासिरी, जलाली हदीक:, महलकात व संजियात, कीमियाए सआदत आदि आदि पुस्तकें हैं।

उक्त पत्र में यह भी लिखते है कि ईश्वर को धन्यवाद है कि पूज्य भाई साहब, हकीम हम्माम के आदमी के हाथ जो पत्र भेजा था, वह मिल गया। पहले तो उसके पहुँचने से, फिर देखने से और फिर समझने से हृदय फूल के समान खिल गया। विशेषत: यह जान कर चित्त और भी प्रसन्न हुआ कि तुर्कमान लोग कन्धार से स्वागत करने के लिये आए हुए हैं। तुम्हारा ईरान की ओर जाने का जो दृढ़ निश्चय है, उससे भी मुझे बहुत अधिक प्रसन्नता हुई; आदि आदि। मेरे प्यारे, इस चढ़ाई में, जो इस समय तुम्हारे सामने उपस्थित है, प्रतिष्ठा और सु-नाम धन देकर मोल लिया जाता है। धन तो प्रसिद्धि का पिछ-लग्गू है और प्रताप की तरह बिना कहे-सुने आपसे आप दरवाजे की कुंडी हो जाता है। यह भी ठीक उसी प्रकार आपसे आप होता है, जिस प्रकार किसान के खेत में घास-पात आदि आपसे आप उत्पन्न होते हैं।

एक और पत्र की भी भूमिका उठाई है कि यात्रा का विचार तथा बादशाह से बिदा होना कन्धार और ठट्ठा की विजय की भाँति शुभ हो।

एक और पत्र में लिखते हैं कि बादशाह ने तुम्हारे सम्बन्ध में जो आज्ञाएँ दी थीं, वे सब एक आज्ञापत्र में लिखकर तुम्हारे नाम भेज दी गई हैं। तुमने लिखा था कि ईरान और तूरान में

हुजूर की ओर से खरीते भेजे जायँ। मैं निःसंकोच होकर कहता हूँ कि इनके विषय ठीक वही हैं, जो मैंने सोचे थे। केवल शब्दों और लेख-शैली का ही अन्तर होगा।

एक और पत्र में लिखा है कि मैंने दृढ़ निश्चय कर लिया है कि जब तक मैं तुमसे यह न सुन लूँगा कि तुमने कन्धार पर विजय प्राप्त कर ली है, जो ईरान की विजय की भूमिका है, तब तक न तो मैं अपने हृदय की उस उत्कंठा का कोई वर्णन करूँगा जो तुमसे मिलने के लिये मेरे मन में हो रही है और न तुम्हारे वियोग की कोई शिकायत ही लिखूँगा। अब मैं सारा साहस वही काम पूरा करने में लगाता हूँ जो संसार के सर्वश्रेष्ठ और शुभचिन्तक (अकबर) को अभीष्ट है; और सब मित्रों की भी यही अभिलाषा है। केवल कुछ शब्द लिखता हूँ। आशा है कि बुद्धिमत्ता यह बात तुम्हारे कानों और हृदय तक पहुँचा देगी। तुम धन के इच्छुक, व्यापारी या समय बितानेवाले पुराने सिपाही नहीं हो जो मैं यह समझ लूँ कि तुम ठट्ठा के युद्ध को कन्धार के युद्ध से अच्छा समझोगे। इसलिये मैं इस सम्बन्ध में कुछ अधिक नहीं कहना चाहता। मुझे डर तो तुम्हारे उन अदूरदर्शी साथियों का है जो अपनी प्रतिष्ठा बेचकर रुपए खरीदना चाहते हैं। ऐसा न हो कि वे लोग मेरे परम प्रिय के (तुम्हारे) आवेशपूर्ण हृदय को उस ओर प्रवृत्त कर दें। विश्वसनीय समाचारों से तुम्हें कन्धार और कन्धारियों का नया हाल मालूम हुआ होगा। मैं क्या लिखूँ! कहने का अभिप्राय यही है कि कन्धार कोई ऐसा देश नहीं है जिसे जब चाहें, तब सहज में ले सकते हों। यह बात ठट्ठा के ही सम्बन्ध में है। कन्धार की दशा इसके

बिलकुल विपरीत है। बीच में जो जमींदार बलोच और अफगान पड़ते हैं, उनको दिलासे की जबान और दान के हाथ से अपना करके बादशाह के विजयी लश्कर में मिला लो और इस अवकाश के समय को बहुत उपयुक्त समझो। ईश्वर पर दृढ़ विश्वास और भरोसा रख कर फुरती और चालाकी से कन्धार की ओर प्रस्थान करो। सहायता के लिये आनेवाली सेना या लोगों की प्रतीक्षा मत करो। पर हाँ, फिर भी बहुत से लोग आ ही मिलेंगे। परन्तु उसका मार्ग यही है कि लोगों को धन दान करने में कमी न करो; क्योंकि सम्मान और प्रतिष्ठा इसी में है। बुद्धिमत्ता और सहनशीलता को अपने दाहिने और बाएँ का मुसाहब रखो। मजलिस में सदा जफरनामा, शाहनामा, चंगेजनामा आदि ग्रन्थों की ही चर्चा होनी चाहिए। इख्लाक नासिरी, मकतूबात शेख शर्फ मुनीरी और हदीकः आदि पुस्तकों की सही नहीं। यह सब तो त्यागियों के देश की बात-चीत है; आदि आदि। फिर लिखते हैं कि इसमें सन्देह नहीं कि ठट्ठा के हाकिम मिरजा जानी ने हुमायूँ की दुर्दशा के समय में उनके साथ बहुत ही अ-निष्ठा का और अनुचित व्यवहार किया था और अकबर के मन में यह बात बहुत खटकती थी। पर फिर भी अकबर की और उसके साथ ही अब्बुलफजल तथा दरबार के दूसरे अमीरों की भी सम्मति यही थी कि इस समय ईरान और तूरान के शाह लोग अपने-अपने काम में लगे हुए हैं। कन्धार के लिये फिर ऐसा उपयुक्त अवसर नहीं मिलेगा। ठट्ठा को तो जब चाहें, तब ले सकते हैं।

इन्होंने फिर कहा कि कन्धार का केवल नाम ही मीठा है।

वह भूखा देश है। वहाँ लाभ कुछ भी नहीं; पर हाँ, खर्च बहुत हैं। इतने खर्च हैं कि जिनका कोई हिसाब ही नहीं। और इस समय मेरे पास कुछ भी नहीं है। मैं भूखा हूँ। मेरे सिपाही भूखे हैं। यदि मैं वहाँ खाली जेब लेकर जाऊँगा, तो करूँगा क्या? हाँ, जब मुलतान से भक्खर और ठट्ठा तक सारे सिन्ध देश में अकबर के नाम का नगाड़ा बजेगा और समुद्र का किनारा अकबर के अधिकार में आ जायगा, तब कन्धार भी आपसे आप हाथ में आ जायगा।

खैर; जैसे-तैसे इन्होंने कन्धार की ओर प्रस्थान किया। परन्तु गजनी और बंगशवाला पास का मार्ग छोड़ कर मुलतान और भक्खर के मार्ग से चले। मुलतान उनकी तहसील या जागीर थी। वहाँ पहुँच कर कुछ रुपया तहसील किया। कुछ सेना भी एकत्र की। कुछ आगे की और व्यवस्थाएँ करने में विलम्ब लगा। अन्त में यही निश्चय हुआ कि पहले ठट्ठा का ही निर्णय कर लो। ठट्ठा के हाकिम मिरजा जानी का इतना अपराध अवश्य था कि जिस समय हुमायूँ दुरवस्था में था, उस समय उसने उसके साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया था। पर हाँ, अकबर के दरबार में वह बराबर भेंट और उपहार आदि भेजा करता था। परन्तु वह स्वयं कभी दरबार में उपस्थित नहीं हुआ था; इसलिये उस पर विश्वास नहीं था। इसलिये लश्कर का झंडा उसी ओर की हवा में लहराया। फैजी ने इसकी तारीख कही थी—"कस्दे तता" अर्थात् ठट्ठा की ओर चलने का विचार। मुलतान से निकलते ही बलोचों के सरदारों ने सेवा में उपस्थित होकर पुराने वचन और प्रण आदि फिर से नए किए।

मिरज़ा जानी के दूत भी सेवा में उपस्थित हुए। उन्होंने कहा कि हुज़ूर का लश्कर कन्धार पर जा रहा है; इसलिये उचित है कि मैं भी इस चढ़ाई में हुज़ूर के साथ चलूँ। परन्तु देश में उपद्रवियों ने सिर उठाया हुआ है। आपकी सेवा के लिये सेना भेजता हूँ। उन्होंने राजदूत को अलग उतारा और सेना की गति और भी बढ़ाई। इतने मे समाचार मिला कि सीवान के किले में आग लग गई है; और बहुत दिनों से वहाँ जो अनाज आदि एकत्र कर के रखा हुआ था, वह सब जल कर राख हो गया है। इसे शुभ शकुन समझ कर और भी जल्दी जल्दी पैर आगे बढाए। सेना ने नदी के मार्ग से सीवान के किले के नीचे से निकल कर लक्की नामक स्थान पर अपना अधिकार कर लिया। किसी की नकसीर तक न फूटो और सिन्ध की कुंजी मिल गई। सिन्ध देश के लिये लक्की नामक स्थान भी वैसा ही है, जैसा बंगाल के लिये गढी नामक स्थान और काश्मीर के लिये बारामूला। सेनापति ने सीवान के किले को चारों ओर से घेर लिया। उस समय वहाँ का हाकिम किले के अन्दर ही बैठा हुआ था। बनानेवालों ने वह किला एक पहाड़ी के ऊपर बनाया था। उसके चारों ओर चालिस गज की खाई थी और सात गज का बहुत दृढ़ परकोटा था। यह सब मिला कर मानों लोहे की दीवार थी। आठ कोस लम्बा और छः कोस चौड़ा स्थान था। नदी की तीन शाखाएँ वहाँ आकर मिलती हैं। प्रजा कुछ तो टापू में और कुछ नावों में रहती थी। एक सरदार कुछ नावें लेकर अचानक उन पर जा पड़ा। बहुत बड़ी लूट हाथ आई। प्रजा ने अधीनता स्वीकृत कर ली।

यह समाचार सुनते ही मिरजा जानी सेना लेकर आया। नसीरपुर के घाट पर उसने डेरे डाल दिए। उसके एक ओर बहुत बड़ी नदी थी। बाकी सब ओर नहरें और नाले आदि थे और उनमें की दलदलें आदि मानों उनके लिये प्राकृतिक रूप से रक्षा का काम करती थीं। वह किला बना कर बीच में उतरा। वह रेतीला स्थान है। वहाँ किला बना लेना कुछ भी कठिन नहीं है। तोपखाने और लड़ाई की नावों से उसने वह किला और भी मजबूत कर लिया। खानखानाँ भी उठ खड़ा हुआ। अकबर ने जैसलमेर और अमरकोट के मार्ग से जो और सेना भेजी थी, वह भी आ पहुँची। सेनापति ने एक सरदार को अपने स्थान पर छोड़ा कि जिसमें वह किले-वालों को रोके रहे और रसद के आने-जाने का मार्ग खुला रहे। शत्रु ने छः कोस पर जाकर छावनी डाली और वहाँ वह अपने चारों ओर दीवार और खाइयाँ बना कर बहुत निश्चिन्त होकर बैठ गया।

शत्रु की ओर से खुसरो चरकस नाम का उसका दास सेनापति था। वह लड़ाई की नावें तैयार करके चला। उसकी कुल नावें दो सौ थीं, जिनमें से सौ नावें बहुत बड़ी और लड़ाई की थीं। खबर उड़ी कि फिरंगियों ने हुरमुज नामक बन्दरगाह से उसकी सहायता के लिये सेना भेजी है। ये लोग भी इधर से बढ़े। शत्रु अपनी नावें चढ़ाव पर ला रहा था; परन्तु बहाव की अपेक्षा भी तेज आ रहा था। सन्ध्या होने को थी; इसलिये युद्ध दूसरे दिन के लिए स्थगित कर दिया गया। फिर खबर उड़ी कि मिरजा जानी भी स्थल के मार्ग से आ रहा है।

उसी समय कई सरदार सेना लेकर सवार हुए और अँधेरी रात में हवा की तरह नदी पार करके दूसरे किनारे पर जा पहुँचे। सबेरा होते ही यहाँ तोपें चलने लगीं। परन्तु यह युद्ध भी बहुत ही अद्भुत तथा विलक्षण था। शत्रु ने ऊपर चढ़ आना चाहा। परन्तु एक तो पानी था और दूसरे सामने से पानी का तोड़ भी था, इसलिये वह आगे न बढ़ सका। जो वीर सैनिक रात के समय नदी पार उतरे थे, वे तोपों के शब्द सुनते ही बाढ़ की तरह नदी की ओर दौड़ पड़े। वे लोग किनारों पर आ गए और पानी पर आग बरसाने लगे। खानखानाँ के पास लड़ाई की कुल पचीस नावें थीं। उन्हीं को उसने नदी की ओर छोड़ दिया। बहाव पर जाना था। वे लहरों की तरह चलीं और बात की बात में तीर के पल्ले पर जा पहुँचीं। आग की बरसात ने गोलियों का एक छींटा मारा। पल के पल में बरछी और जमधर की नौबत आ गई। उस समय वीरों की यह दशा थी कि खौलते हुए पानी की तरह उबले पड़ते थे। कूद-कूद कर शत्रुओं की नावों में जा पड़े। नावें मुरगाबियों की तरह तैरती फिरती थीं। एक अमीर अपनी नाव को दौड़ा कर खुसरो-खाँ पर जा पहुँचा और उसने वहाँ उसे घायल किया। उसने उसे प्रायः पकड़ ही लिया था कि एक तोप फट गई और नाव डूब गई। शत्रु पक्ष का परवाना नामक एक प्रसिद्ध सरदार आग की जगह पानी में मारा गया। शत्रु के पास सेना अधिक थी और सामग्री भी यथेष्ट थी। पर फिर भी वह हार गया। सैनिकों और युद्ध की सामग्री से भरी हुई चार नावें पकड़ी गईं और कैद हुईं। उन्हींमें कैतूर हरमूज नामक सरदार भी था।

हरमूज का हाकिम अपना एक विश्वसनीय आदमी ठट्ठा में रखा करता था। वह अमीन कहलाता था और उधर के सब व्यापारियों के कार-वार देखता और उनकी रक्षा आदि की व्यवस्था करता था। जानी वेग उसे भी अपने साथ लेता आया था और उसने अपने बहुत से आदमियों को फिरंगी सेना की वर्दी भी पहना दी थी।

यदि ये लोग उसी समय घोड़ा उठाए हुए जानी वेग पर जा पड़ते तो उसी समय लड़ाई का अन्त हो जाता। परन्तु साहसहीन लोगों के परामर्श ने रोक लिया जिससे शत्रु डूबता-डूबता सँभल गया।

बादशाही सेना बहुत थी। अमीर लोग स्थल में अपनी सेना लिए फिरते थे और स्थान-स्थान पर युद्ध करते थे। इस प्रकार बहुत से स्थान उनके हाथ में आ गए। प्रजा ने अधीनता स्वीकृत कर ली। अमरकोट का राजा भी अधीनता स्वीकृत करके सहायता करने के लिये उद्यत हो गया। इस कारण उधर का मार्ग भी साफ हो गया। एक स्थान की प्रजा ने कूओं में विष डाल दिया था। वह देश रेगिस्तानी था और वहाँ पानी यों ही बहुत कम मिलता था। अब तो पानी की कठिनता और भी बढ़ गई। जो बादशाही सेना उस मार्ग से गई थी, वह एक विलक्षण विपत्ति में फँस गई। सब की दृष्टि उसी ईश्वर की ओर थी। ऐसे समय में फिर अकबर के प्रताप ने सहायता की। बिना ऋतु के ही बादल आया और पानी बरस गया। तालाब आदि भर गए। ईश्वर ने अपने सेवकों के प्राण बचा लिए।

मिरजा जानी घबरा गया। परन्तु उसके पास सेना भी बहुत

थी और युद्ध की सामग्री भी यथेष्ट थी; इसलिये फिर भी वह बहुत कुछ निश्चिन्त था। उसके सब स्थान भी सुदृढ़ और सुरक्षित थे; इसलिये उसका साहस बहुत कुछ बना हुआ था। उसे वर्षा का भी भरोसा था। उसने समझ रखा था कि नहरें और नाले आदि नदी से भी अधिक चढ़ जायँगे और बादशाही लश्कर आपही घबरा कर उठ जायगा। और यदि न उठेगा तो हम लोगों से घिर जायगा। इधर बादशाही सेना को अनाज की कमी ने भी बहुत तंग किया। सेनापति कभी छावनी के स्थान बदलता था, कभी लश्कर को इधर-उधर बाँटता था। साथ ही उसने दरबार में भी एक निवेदन-पत्र भेजा। अकबर का विचार तो युद्धों की नदी की मछली के समान था। उसने तुरन्त अमरकोट के मार्ग से बहुत सी नावों पर अनाज, युद्ध-सामग्री, तोपें, बन्दूकें, तलवारें और एक लाख रुपया नगद भेज दिया।

वहाँ बीच में चूँ बेचूँ नाम का एक प्रदेश पड़ता है। खानखानाँ स्वयं वहीं छावनी डाल कर बैठ गया और अमीरों को उसने भिन्न भिन्न स्थानों पर भेज दिया। साथ ही नदी के मार्ग से एक लश्कर सीवान के किले पर चढ़ाई करने के लिये भी भेजा। मिरजा जानी समझता था कि बादशाही लश्कर जल-युद्ध में दुर्बल है; इसलिये वह स्वयं सेना लेकर उस पर चला। उसका विचार था कि मार्ग में ही उस पर हाथ मारे। सेनापति भी निश्चिन्त नहीं बैठा था। दौलतखाँ,* ख्वाजा मुकीम और टोडर मल के

---

* यह दौलत खाँ लोधी खानखानाँ का सेनापति था। सन् १००८ हि० में अहमदनगर की विजय के उपरान्त उदर के शूल के कारण इसकी मृत्यु हो गई।

लड़के धारा आदि को सेनाएँ देकर अपने पहले भेजे हुए लश्कर की सहायता के लिये रवाना किया। उधर पहली सेना घबरा ही रही थी कि ये लोग दो ही दिन में चालिस कोस का रास्ता लपेट कर वहाँ जा पहुँचे। यही एक ऐसा युद्ध था जिसमें स्वयं मिरजा जानी से बादशाही लश्कर का मुकाबला हुआ था। अमीरों ने मन्त्रणा के लिये सभा की। पहले यह सम्मति हुई कि खानखानाँ से और अधिक सेना मँगवाई जाय। पर शत्रु की सेना का अनुमान करने के उपरान्त अधिक सम्मति इसी पक्ष में हुई कि यहाँ लड़ मरना ही अच्छा है। ये लोग शत्रु से छः कोस की दूरी पर पड़े हुए थे। इन्होंने चार कोस और आगे बढ कर उसका स्वागत किया और बड़े धैर्य तथा बुद्धिमत्ता के साथ युद्ध ठाना। विजय का सुसम्भचार हवा पर आया। पहले तो वह हवा उधर से इधर को चल रही थी (अर्थात् शत्रु पक्ष के विजय की आशा हो रही थी); पर युद्ध आरंभ होते ही उसका रुख बदल गया। अमीरों ने सेनाओं के चार परे बनाकर किला बाँधा और तब युद्ध आरम्भ किया। शत्रु पक्ष का हरावल और दाहिना पार्श्व बहुत जोरों के साथ लड़ा। जो बादशाही अमीर उनके सामने पड़े, उन्होंने भी उनका अच्छा मुकाबला किया। कई प्रसिद्ध सरदार घायल हुए। पर फिर भी उन लोगों ने अपने सामने की सेना को कहीं से उठाकर कहीं फेंक दिया। बाईं ओर की सेना ने भी अपने सामने की सेना को लपेटकर उलट दिया। शत्रु की सेना के हरावल में खुसरो चरकस था। उसने हरावल को दबाकर ऐसा रेला कि बाएँ पार्श्व को भी उलट-पुलट दिया। बादशाही हरावल में शमशेर अरब था। वह खूब डटा और घायल होकर गिरा।

उसके साथी उसे मैदान से निकाल ले गए। हवा भी सहायता करने के लिए आ पहुँची। ऐसी धूल उड़ी और आँधी चली जो शत्रुओं को आँख भी नहीं खोलने देती थी। दाहिना पार्श्व कहीं जा पड़ा और बायाँ पार्श्व कहीं जा पड़ा।

दौलतखाँ ने बादशाही सेना के मध्य भागों से निकलकर खूब हाथ मारे। उसका साथी बहादुरखाँ चकित होकर खड़ा था और ईश्वर की महिमा देख रहा था। उस समय दोनों ओर की सेनाएँ अव्यवस्थित हो गई थीं। बहादुरखाँ सोचता था कि देखिए, क्या होता है। इसी रेल-धकेल में दो तीन सरदार उसके पास भी आ पहुँचे। साथ ही समाचार मिला कि मिरजा जानी पाँच सौ सवारों को साथ लिए हुए अलग खड़ा है। इन लोगों ने ईश्वर पर भरोसा करके बागें उठाईं। अकबर का प्रताप देखो कि उस समय इन लोगों के साथ केवल एक सौ आदमी थे; पर इतने ही आदमियों के आक्रमण से मिरजा जानी के पैर उखड़ गए। वह एक मैदान भी न लड़ा। नोक दुम भाग गया। उस समय शत्रु पक्ष के एक हाथी ने अकबर की सेना की बहुत सहायता की। वह मस्ती में आकर हथियाई करने लगा और स्वयं अपनी ही सेना को उसने नष्ट कर डाला।

टोडरमल का लड़का धारा राय इस युद्ध में बहुत बढ़ बढ़कर लड़ा था। वह हरावल में था। पर दुःख है कि उसके माथे पर भाले का घाव लगा और वह घोड़े पर से नीचे गिर पड़ा। पर फिर भी उसके भाग्य बहुत अच्छे थे कि उसने कीर्त्तिपूर्वक इस संसार से प्रस्थान किया। परन्तु उसके अभागे पिता की दुरवस्था पर दुःख करना चाहिए जिसने वृद्धावस्था में अपने नवयुवक पुत्र

का शोक देखा। युद्ध-क्षेत्र में विजय का प्रकाश हो गया था। इतने में अमीरों को समाचार मिला कि शत्रु की सेना बादशाही लश्कर के डेरों को लूट रही है। ये लोग पहले से इसलिये गए थे कि लड़ाई के समय पीछा मारेंगे। स्वयं पीछे पहुँचे। सुनते ही सरदारों ने घोड़े उड़ाए और बाज की तरह शिकार पर गए। भगोड़ों ने अपने प्राण लेकर भागना ही बहुत समझा। जो माल उन्होंने लिया था, वह सब फेंककर भाग गए। उनके तीन सौ आदमी और खानखानाँ के एक सौ आदमी मारे गए। मिरजा जानी कई जगह उलटकर ठहरा, परन्तु ईश्वरीय प्रताप के साथ भला कौन लड़ सकता है! इस युद्ध का तो किसी को ध्यान या अनुमान भी नहीं था। छावनी कहीं थी, युद्ध-क्षेत्र कहीं था, स्वयं सेनापति कहीं था। सबको ईश्वरीय कृपा और सहायता का विश्वास हो गया। पाँच हजार सैनिकों को बारह सौ सैनिकों ने भगा दिया।

यहाँ तो यह युद्ध हुआ; उधर जिस किले के सम्बन्ध में मिरजा जानी ने यह समझ रखा था कि कठिन अवसर आने पर यहाँ मुझे शरण मिलेगी, खानखानाँ उसी किले पर जा पहुँचा और बहुत ही वीरतापूर्वक उसपर आक्रमण करके उसे ढा दिया। मिरजा जानी युद्ध-क्षेत्र से भागकर वहीं गया था। वह सोचता था कि चलकर घर में बैठूँगा और वहीं कुछ उपाय सोचूँगा। पर मार्ग में ही उसने सुना कि वह किला तो अब मैदान हो गया। वहाँ अब खानखानाँ के खेमे पड़े हुए हैं। वह बहुत ही चकित हुआ। बहुत कुछ सोच-विचार के उपरान्त उसने सिन्ध नदी के किनारे एक ऐसे स्थान पर जाकर साँस लिया जो हाला कंडी से

चार कोस और सीवान से चालिस कोस पर था। वहीं वह एक किला बनाकर बैठ गया। वहाँ उसने बहुत गहरी खाई खोदी थी। खानखानाँ भी उसके पीछे पीछे वहाँ जा पहुँचा और जाकर उसे भी घेर लिया।

युद्ध दिन और रात हो रहा था। तोपें और बन्दूकें उत्तर-प्रत्युत्तर करती थीं। देश में मरी फैली हुई थी; और संयोग यह था कि जो मरता था, वह सिन्धी ही मरता था। एकान्त-वास करनेवाले साधुओं और त्यागियों ने स्वप्न देखे कि जब तक अकबर का सिक्का न चलेगा और खुतबा न पढ़ा जायगा, तब तक इस मरी का अन्त नहीं होगा। यह मरी कृतघ्नता का दंड है। आगे से विद्रोह या उपद्रव न करने की दृढ़ प्रतिज्ञा करो; यह मरी दूर हो। ये स्वप्न बहुत जल्दी प्रसिद्ध हो गए। बादशाह के सैनिक और सेवक भी अधिक प्रबल होकर अपने काम में तत्पर हो गए। वह रेगिस्तानी देश तो है ही। वे लोग मिट्टी के ढूह बनाते थे और उन्हींकी ओट में मोरचे बढ़ाते जाते थे। धीरे-धीरे वे लोग किले के पास जा पहुँचे। घेरा इतना तंग हो गया कि किलेवाले तंग होकर अपने मुँह से सन्धि की कहानियाँ सुनाने लगे। उधर बादशाही लश्कर भी रसद के बिना तंग हो रहा था; इसलिये उसने भी सन्धि करना स्वीकृत कर लिया। यह निश्चय हुआ कि मिरजा जानी सीविस्तान का इलाका सीवान के किले के सहित और लड़ाई की बीस नावें भेंट करे और मिरजा ऐरज अर्थात् सेनापति के लड़के को अपनी कन्या दे; और वर्षा ऋतु में बादशाह के दरबार में उपस्थित हो। खानखानाँ ने सैनिक मोरचे उठा लिए और युद्ध-क्षेत्र में ही विवाह के लिये शामियाने

बन गए। मिरजा ने बरसात भर लोगों के वहाँ रहने के लिये किला खाली कर दिया।

खानखानाँ के दरबार में जो कवि लोग कविताओं और चुटकुलों के उपवन खिलाया करते थे, उनमें से एक मुल्ला शकेबी नाम के कवि भी थे। उन्होंने इस युद्ध के विवरण की एक मसनवी तैयार की थी, जो वास्तव में कविता की दृष्टि से बहुत ही उच्च कोटि की थी। उसके इस शेर पर खानखानाँ ने बहुत अधिक प्रसन्न होकर उसी समय उसे एक हजार अशर्फी दी थी—

ھمائے کہ برعرش کردے خرام - گرفتی و آزاد کردی زدام

अर्थात्—जो हुमा पत्ती आकाश में प्रसन्नतापूर्वक विहार कर रहा था, उसे पकड़ा और फिर जाल में से छोड़ दिया।

मजा यह है कि जिस समय खानखानाँ के दरबार में यह मसनवी सुनाई गई थी, उस समय मिरजा जानी भी वहाँ उपस्थित थे। उन्होंने भी प्रसन्न होकर उसे हजार ही अशर्फी दी और कहा कि ईश्वर की कृपा है कि इसने मुझे हुमा पक्षी बनाया। यदि यह मुझे गीदड़ भी कह डालता, तो भला मैं इसकी जबान पकड़ सकता था!

बादशाह ने इस युद्ध के लिये एक बार एक लाख रुपए, एक बार पचास हजार रुपए और फिर एक बार एक लाख रुपए और एक लाख मन अनाज और फिर सौ बड़ी तोपें और तोपची नदी के मार्ग से भेजे थे। और अमीर भी अपनी-अपनी सेनाएँ लेकर पहुँचे थे। सन् १००१ हि० के नौरोजवाले जशन में खानखानाँ अपने साथ मिरजा जानी को लेकर लाहौर में बादशाह

की सेवा में उपस्थित हुए। बादशाह की सेवा में उनके उपस्थित होने के लिये एक अलग दरबार किया गया। बादशाह मसनद पर बैठे थे। मिरजा जानी ने नियमानुसार बहुत झुककर बादशाह को सलाम किया। उसे तीन हजारी मन्सब और ठट्ठा प्रदेश जागीर में प्रदान किया गया। इसके सिवा उस पर और ऐसे अनेक अनुग्रह किए गए जिनकी उसे कभी आशा भी नहीं थी। हमारे इतिहास-लेखकों को कभी इस बात का ध्यान नहीं हुआ कि मनुष्य के कार्यों को देखकर उसके भीतरी विचारों का पता लगाते। मैं पहले किसी स्थान पर लिख चुका हूँ और अब फिर लिखता हूँ कि अकबर को अपनी जल-शक्ति बढ़ाने का बहुत ध्यान रहता था। इसी लिये इस अवसर पर उसका और सारा इलाका तो उसी को दे दिया गया, पर बन्दरगाहों पर बादशाह का ही अधिकार बना रहा। मेरे इस कथन के समर्थन में अकबर का वह खरीता उपस्थित है जो अब्दुल्ला उजबक के नाम लिखा गया था और जो अब्बुलफजल के पहले खंड में दिया हुआ है।

सन् १००३ हि० में खानखानाँ को फिर दक्षिण देश की ओर यात्रा करनी पड़ी। पर इस यात्रा में उसे कुछ दुःख भी उठाना पड़ा और उसके लिये यह कुछ अशुभ भी हुई। इस लड़ाई की जड़ यह थी कि अकबर को अभी तक दक्षिण देश और खान आजम की विफलता की बात भूली नहीं थी। उधर के हाकिमों के पास जो पत्र और दूत आदि भेजे गए थे, उनसे भी कोई सफलता नहीं हुई थी। फैजी भी बुरहान-उल्मुल्क के दरबार से सफल होकर नहीं लौटा था; और फिर अहमदनगर के शासक बुरहानउल्मुल्क का देहान्त भी हो

गया था। वह देश बहुत दिनों से अव्यवस्थित दशा में था और वहाँ प्रायः उथल-पुथल मची रहती थी। अब पता चला कि तेरह चौदह वर्ष का लड़का सिंहासन पर बैठा है और उसके जीवन का तख्ता भी मृत्यु के तट पर लगना चाहता है।

अकबर ने मुराद को (रूम की चोट पर) सुल्तान मुराद बना कर बहुत बड़े लश्कर के साथ दक्खिन पर चढ़ाई करने के लिये भेजा और स्वयं आकर पंजाब में ठहरा, जिसमें उत्तरी सीमा का प्रबन्ध दृढ़ रहे। मुराद ने गुजरात में पहुँच कर छावनी डाली और चढ़ाई का सब प्रबन्ध करना आरम्भ किया। उसी समय अकबर के प्रताप ने अपना प्रभुत्व दिखलाना आरम्भ किया। आदिल शाह के दरबार के अमीर लोग निजाम के देश का प्रबन्ध करने के लिये सेनाएँ लेकर आए। इब्राहीम लश्कर लेकर उनका मुकाबला करने के लिये गया। अहमदनगर से चालीस कोस की दूरी पर दोनों सेनाओं का सामना हुआ और इब्राहीम ने गले पर तीर खाकर युद्ध-क्षेत्र में प्राण दिए। ईश्वर भी धन्य है। अभी कल की बात है कि उसने भाई को अन्धा करके होश की आँखों में सुरमा दिया था; और आज स्वयं उसने इस संसार से आँखें बन्द कर लीं। देश में अस्थायी रूप से अनेक छोटे बड़े राजा होने लगे। अराजकता फैल गई और एक विलक्षण हलचल मच गई। मियाँ मंझू ने मुराद के पास निवेदन-पत्र भेजा, जिसमें लिखा था कि अब देश का कोई स्वामी नहीं रह गया है। समस्त राज्य नष्ट-भ्रष्ट हो रहा है। आप पधारें तो आपके ये सेवक सब प्रकार से आप की सेवा करने के लिये उपस्थित हैं।

जब अकबर ने यह समाचार सुना, तब उसने खानखानाँ के पास प्रस्थान करने के लिये आज्ञा भेजी। उधर शाहजादे को लिखा कि तुम सब प्रकार से तैयार तो रहो, पर अभी आक्रमण मत करो। जिस समय खानखानाँ पहुँचे, उसी समय घोड़े उठाओ और अहमदनगर पर जा पड़ो। जिस समय शाहजादे को पहले-पहल उपाधियाँ और अधिकार आदि मिले थे, उस समय की अवस्था देखकर लोग यही समझते थे कि यह शाहजादा बहुत होनहार, तेज और साहसी है। यह खूब अच्छी तरह से बादशाही करेगा। परन्तु वह तेजी अन्त में केवल अदूरदर्शिता, स्वेच्छाचारिता और तुच्छ-हृदयता के रूप में प्रकट हुई। सादिक मुहम्मदखाँ आदि उसके कुछ ऐसे सरदार थे जो उसे बहुत कुछ अपने मन के अनुसार चलाते थे। वे लोग समझते थे कि जिस समय खानखानाँ यहाँ आ जायगा, उस समय हम लोग तो दूर रहे, उसके प्रकाश के सामने स्वयं शाहजादे का दीपक भी मद्धिम हो जायगा। सम्भव है कि पहले तो उन्होंने भी शाहजादे को यह समझाया-बुझाया हो कि इसके आने से हुजूर के अधिकारों में अन्तर आ गया; और अब जो विजय होगी, वह इसी के नाम से होगी। खानखानाँ के जासूस भी भूतों और प्रेतों की तरह चारों ओर फैले रहते थे और जगह-जगह की खबरें पहुँचाया करते थे। मार्ग में ही उसे समाचार मिला कि बुरहान उल् मुल्क मर गया और आदिल शाह ने अहमदनगर पर चढ़ाई की है। साथ ही यह भी समाचार सुना कि अहमदनगर के अमीरों ने निवेदन-पत्र भेज कर शाहजादा मुराद को बुलाया है और वह अहमदाबाद से प्रस्थान

करना चाहता है। इसने बहुत प्रसन्नतापूर्वक प्रस्थान किया। परन्तु भाग्य उसकी यह प्रसन्नता नहीं देखना चाहता था। पहली बात तो यह है कि खानखानाँ का जाना किसी साधारण सिपाही या सरदार का जाना नहीं था। उसे सैनिक आदि तैयार करने में अवश्य विलम्ब लगा होगा। दूसरे उसने मालवे के मार्ग से यात्रा की थी। तीसरे बहेला भी उसके मार्ग में पड़ा जो उसकी जागीर में था। इच्छा न रहने पर भी उसे कुछ समय तक वहाँ ठहरना पड़ा होगा। मार्ग में राजाओं और शासकों आदि से मिलना-जुलना भी पड़ता ही होगा। और यह स्पष्ट ही है कि उनके साथ मिलने-जुलने में कुछ न कुछ लाभ ही होता होगा। सब से बड़ी बात यह हुई कि जब वह बुरहानपुर के पास पहुँचा, तब खान्देश के शासक राजी अली खाँ से भेंट हो गई। खानखानाँ ने अपनी नीतिमत्ता, सुन्दर वार्त्तालाप और प्रेमपूर्ण व्यवहार के जादू से उसे अपने साथ चलने के लिये उद्यत कर लिया। पर ऐसे जादुओं का प्रभाव उत्पन्न होने में कुछ न कुछ समय की आवश्यकता होती है। इतने में शाहजादे का आज्ञापत्र पहुँचा कि यहाँ लड़ाई का काम बिगड़ रहा है; इसलिये शीघ्र सेवा में उपस्थित हो। साथ ही हरकारों ने यह भी समाचार पहुँचाया कि शाहजादे ने लश्कर को आगे बढ़ाया है। इन्होंने लिखा कि राजी अलीखाँ भी मेरे साथ आने के लिये तैयार है। यदि यह सेवक जल्दी चला आया, तो इस नीति में कुछ विघ्न पड़ जायगा। अर्थात् सम्भव है कि मेरे चले आने के बाद वह पीछे से न आवे; या इसी प्रकार की और कोई बात हो। शाहजादे के मन में खानाखानाँ की ओर से बुरे भाव तो उत्पन्न ही होते जाते थे।

वह दुर्भाव बहुत बढ़ गया। खानखानाँ को भी उसके दरबार पा समाचार बराबर पहुँचा करते थे। उसके निवेदन-पत्र ने वहाँ ना रंग पैदा किया था, उसका हाल जब खानखानाँ को मालूम हुआ, तब उसने अपना लश्कर, फीलखाना, तोपखाना आदि आदि और बहुत से अमीरों को तो पीछे छोड़ दिया और आप राजीअलीखाँ को साथ लेकर जल्दी-जल्दी आगे बढ़ा। यह सुन कर शाहजादे ने बीस हजार लश्कर रिकाब में लिया और आगे बढ़ गया। फिर भी यह मारामार चल कर अहमदनगर से तीस कोस इधर ही उससे जा मिला। लगानेवालों ने ऐसी नहीं लगाई थी जो बुझ भी सके। पहले दिन तो इन्हें सलाम करने का भी सौभाग्य प्राप्त न हो सका। खानखानाँ बहुत ही चकित हुआ कि हजारों युक्तियाँ और उपाय कर के तो मैं ऐसे व्यक्ति को अपने साथ लाया, जिसका केवल साथ ही विजय और प्रताप की सेना है। और ऐसी उत्तम सेवा का मुझे यह पुरस्कार मिल रहा है! फिर जब दूसरे दिन खानखानाँ को शाहजादे की सेवा में उपस्थित होने का सौभाग्य भी प्राप्त हुआ, तो शाहजादा उस समय त्यौरी चढ़ाए हुए और मुँह बनाए हुए था। आखिर ये भी खानखानाँ थे। बिदा होकर अपने खेमों में आए; पर बहुत ही दुःखी थे। और साथ ही चिन्ता इस बात की थी कि बुद्धिमत्ता और युक्ति का यह पुतला जो मेरे साथ आया है, वह मेरी यह दशा देख कर अपने मन में क्या कहता होगा। और जो जो कुछ मैंने इसे समझाया था, उसे यह क्या समझता होगा। जो लश्कर और अमीर आदि पीछे रह गए थे, वे भी आए। उस समय उचित तो यह था कि उनके आने की शान दिखलाते और उन्हें सेवाएँ

सौंपते। उनके उत्साह बढ़ाए जाते। पर यहाँ तो उत्साह बढ़ाने के बदले उनका उत्साह और भी भंग किया जा रहा था और मन दुःखी किया जाता था।

यह भी आखिर खानखानाँ था। उठकर अपने लश्कर में चला आया। उस समय सब लोगों की आँखें खुलीं। अमीरों को दौड़ाया। पत्र लिखे। अन्त में जिस प्रकार हुआ, सफाई हो गई। पर इस से यह नियम ज्ञात हो गया कि जो व्यक्ति योग्य और बुद्धिमान् हो, जिसके पास सब प्रकार के साधन और सामग्री आदि हो और जो सब कुछ कर सकता हो, वह भी दूसरे के अधीन हो कर कुछ नहीं कर सकता। बल्कि काम भी खराब हो जाता है और स्वयं वह आदमी भी खराब हो जाता है।

जिन लोगों ने खानखानाँ तक की यह दुर्दशा कराई थी, वे भला और अमीरों को क्या समझते थे! वे और लोगों की इसी प्रकार अप्रतिष्ठा कराया करते थे। इसी लिये लश्कर में साधारणतः सभी लोग अप्रसन्न हो रहे थे। राजीअलीखाँ को भी खानखानाँ का मेहमान और साथी समझ कर दरबार में एकाध चमका दे दिया। तात्पर्य यह कि इस प्रकार चढ़ाई और युद्ध का काम बिगड़ना आरम्भ हुआ।

अब जरा उधर की सुनो। बुरहान-उल् मुल्क की सगी बहन, हुसैननिजाम शाह की कन्या और अली आदिल शाह की पत्नी चाँद बीबी बहुत उच्च वंश की और परम सदाचारिणी तो थी ही, पर साथ ही वह अपनी बुद्धि, युक्ति, उदारता, वीरता और गुणग्राहकता आदि के रत्नों से जड़ी हुई जड़ाऊ पुतली थी। इसलिये वह "नादिरत उल् जमानी" (संसार में अपने समय की अनुपम)

कहलाती थी और वही देश की उत्तराधिकारिणी रह गई थी। जब उसने देखा कि देश हाथ से जाना चाहता है और वंश का नाम मिटना चाहता है, तब वह अपने चेहरे पर की नकाब के साथ साहस की कमर बाँधकर खड़ी हो गई। उसने अपने सब अमीरों को बुलाकर उन्हें बहुत कुछ धैर्य और दिलासा दिया और समझाया-बुझाया। अकबर के लश्कर को नदी की तरह लहराते देखकर उन अमीरों ने भी अपना और अपने देश का परिणाम सोचा। उन लोगों ने शाहजादे के पास और उसके खानखानाँ के पास जो निवेदन-पत्र आदि भेजे थे, उसके लिये वे अपने मन में बहुत पछताए। सबने मिलकर परामर्श किया। अन्त में यह निश्चय हुआ कि चाँद बीबी अहमदनगर के किले में राज्य की उत्तराधिकारिणी बनकर बैठे और हम लोग अपने नमक का हक अदा करें और जहाँ तक हो सके, सब लोग मिलकर अहमदनगर को बचावें।

बादशाहों का सा मिजाज रखनेवाली चाँद बेगम ने युद्ध की सब सामग्री और अनाज के ढेर एकत्र करने आरम्भ किए। वह दरबार के अमीरों और आस-पास के जमींदारों को उत्साहित तथा प्रसन्न करने लगी। बहुत अच्छी मोरचेबन्दी करके उसने अहमदनगर को पूरी तरह से दृढ़ बना लिया। इब्राहीम शाह के लड़के बहादुर शाह को नाम मात्र के लिये देश का उत्तराधिकारी बनाकर सिंहासन पर बैठाया। एक सरदार को बीजापुर भेजकर इब्राहीम आदिल शाह के साथ सन्धि कर ली और अपने बहुत से साथियों तथा लश्कर को लेकर अपने स्थान पर स्थित हो गई। बहुत ही दृढ़ता और व्यवस्थापूर्वक उसने बादशाही सेना का

सामना किया। उसकी वीरता देखकर मर्दों के होश जाते रहे। छोटे बड़े सभी लोगों में चाँद बीबी सुलताना की बहुत अधिक प्रसिद्धि हो गई।

यहाँ ये सब प्रबन्ध हो चुके थे। इधर से शाहज़ादा मुराद बहुत से बड़े-बड़े अमीरों आदि को साथ लिए हुए पहुँचा और बहुत भारी सेना लिए हुए अहमदनगर के उत्तर ओर से इस प्रकार गिरा, जिस प्रकार पर्वत पर से बड़ी भारी नदी का प्रवाह चलता है। यह सेना नमाजगाह के मैदान में ठहरी और साहसी वीरों की एक टुकड़ी चबूतरे के मैदान की ओर बढ़ी। चाँद बीबी ने किले से दक्खिनी वीरों को निकाला। उन्होंने तीरों और बन्दूकों के मुँह और जबान से अच्छे उत्तर-प्रत्युत्तर दिए और किले के मोरचों से गोले भी मारे; इसलिये बादशाही सेना आगे न बढ़ सकी। सन्ध्या भी होने को थी। वहीं पर हश्त बिहिश्त (आठ स्वर्ग) नाम का एक बहुत सुन्दर बाग था, जिसे बुरहान निजाम शाह ने बनवा कर हरा-भरा किया था। शाहज़ादा मुराद और सब अमीर उसी बाग में उतर पड़े। दूसरे दिन वे लोग नगर की रक्षा और नागरिकों को प्रसन्न करने का प्रयत्न करने लगे। गली-कूचों में अभय-दान की मुनादी करा दी गई; और कुछ ऐसा काम किया कि घर-घर सब लोग प्रसन्न तथा सन्तुष्ट होकर अनुकूल हो गए। व्यापारियों और महाजनों आदि का भी पूरा-पूरा सन्तोष हो गया। दूसरे दिन शाहज़ादा मुराद, मिरज़ा शाहरुख, खानखानाँ, शाहबाजखाँ कम्बो, मुहम्मद सादिकखाँ, सैयद मुर्त्तजा सब्जवार, बुरहानपुर के हाकिम राजी अलीखाँ, मानसिंह के चाचा राजा जगन्नाथ

आदि सब अमीर एकत्र हुए। सब लोगों ने मन्त्रणा और परामर्श करके घेरा डालने का प्रबन्ध किया और सब लोगों को अलग-अलग मोरचे बाँट दिए गए।

किले पर अधिकार करने और नगर को अपने अधिकार में बनाए रखने का कार्य बहुत ही उत्तमतापूर्वक चल रहा था कि इसी बीच में शाहबाजखाँ को वीरता का आवेश आया। उसने शाहजादे और सेनापति को खबर भी नहीं की और बहुत से सैनिकों को साथ लेकर गश्त करने के बहाने से निकल पड़ा। उसने अपने लश्कर को संकेत कर दिया था कि धनवान् या निर्धन जो कोई सामने आवे, उसे लूट लो। बात की बात में क्या घर और क्या बाजार, सारा अहमदनगर और बुरहानाबाद लुट कर सत्तानाश हो गया। शहबाजखाँ अपने धर्म और सम्प्रदाय का भी कट्टर अनुयायी था। वहाँ एक स्थान था जिसका नाम बारह इमाम का लंगर था। उसके आस-पास सब शीया लोग बसे हुए थे। उसने उन सबका माल-असबाब लूट लिया और उनकी हत्या करा दी। इस प्रकार उसने वहाँ करबला के जंगल का चित्र उपस्थित कर दिया। शाहजादा और खानखानाँ सुन कर चकित हो गए। उसे बुला कर बहुत कुछ बुरा-भला कहा। उसके जिन साथियों ने लूट-मार की थी, उन सबको अनेक प्रकार के कठोर दंड दिए गए; यहाँ तक कि बहुतों को प्राण-दंड भी दिया गया। परन्तु अब हो ही क्या सकता था! जो कुछ होना था, वह तो पहले ही हो चुका था। लुटे हुए लोगों के पास कपड़ा तक नहीं था। वे रात के परदे में देश छोड़ कर निकल गए।

इस अवसर पर एक ओर तो मियाँ मंझू अहमद शाह को बादशाह बनाए हुए आदिल शाह के सिर पर बैठे हुए थे। दूसरी ओर इखलास हब्शी अपने साथ मोती शाह गुमनाम (अप्रसिद्ध) को लिए हुए दौलताबाद के किले में पड़े थे। और तीसरी ओर आहंगखाँ हब्शी सत्तर बरस के बुड्ढे प्रथम बुरहान शाह अली के सिर पर छतर छगाए हुए खड़े थे। सब से पहले इखलासखाँ ने साहस किया। वह दस हजार सैनिक एकत्र करके दौलताबाद की ओर से अहमदनगर की ओर चला। जब अकबर बादशाह के लश्कर में यह समाचार पहुँचा, तब सेनापति ने पाँच छः हजार साहसी वीर चुने और दौलतखाँ लोधी को, जिनके सैनिकों का स्थान सरहिन्द था, उन सबका सेनापति बनाकर आगे भेजा। गंगा नदी के किनारे पर दोनों पक्षों का सामना हुआ। बहुत अधिक मार-काट और रक्त-पात आदि के उपरान्त इखलासखाँ भागे। बादशाही लश्कर ने लूट-पाट करके अपनी कामना पूरी की। वहीं से पटन की ओर घोड़े उठाए। वह नगर बहुत अच्छी तरह बसा हुआ और रौनक पर था। पर फिर भी ऐसा लुटा कि किसी के पास पानी पीने के लिये कटोरा तक न बचा। इन सब बातों ने दक्खिन के लोगों को अकबर के लश्कर की ओर से बहुत दुःखी और असन्तुष्ट कर दिया। जो हवा अनुकूल हुई थी, वह बिगड़ गई।

यद्यपि मियाँ मंझू के पास धन-बल भी बहुत था और जन-बल भी, पर उसमें जो चालाकी थी, उसका तो वर्णन ही नहीं हो सकता। इसलिए चाँद सुलतान बेगम ने आहंगखाँ हब्शी को लिखा कि तुम जितने दक्खिनी साहसी वीरों की सेना एकत्र कर

सको, उतनी सेना एकत्र करके किले की रक्षा करने के लिये आकर हाजिर हो। वह सात हजार सवार लेकर अहमदनगर की ओर चला। उसने शाह अली और उसके लड़के मुर्त्तजा को भी अपने साथ ले लिया था। वह छः कोस पर आकर ठहरा और समाचार लाने तथा घेरे का रंग-ढंग जानने के लिये उसने अपने गुप्त दूत भेजे। वह यह जानना चाहता था कि कौन सा अंग या पार्श्व अधिक और कौन सा कम बलवान् है। दूतों ने देख-भालकर समाचार पहुँचाया कि किले के पूरब की ओर बिलकुल खाली है। अभी तक किसी का ध्यान उस ओर नहीं गया है। अब आहंगखाँ तैयार हो गया।

इधर की एक दैवी बात यह देखी कि उसी दिन शाहजादे ने गश्त करते समय वह स्थान खाली देखा था और खानखानाँ को आज्ञा दी थी कि इधर की व्यवस्था तुम स्वयं करो। खान-खानाँ भी उसी समय हश्त बिहिश्त से उठ कर यहाँ आ उतरा और जो मकान आदि मिले, उन सब पर उसने अधिकार कर लिया। आहंगखाँ ने तीन हजार चुने हुए सवार और एक हजार पैदल तोपची साथ लिए और अँधेरी रात में काली चादर ओढ़कर किले की ओर चल पड़ा। दोनों में से किसी को एक दूसरे के वहाँ होने की खबर नहीं थी। जब खबर हुई, तब उसी समय हुई, जब छुरी-कटारी के सिवा बाल भर का भी अन्तर न रह गया। खानखानाँ तुरन्त दो सौ वीरों को साथ लेकर इबादत-खाने (प्रार्थना-मन्दिर) के कोठे पर चढ़ गया और वहाँ से उसने तीर और गोलियाँ चलाना आरम्भ कर दिया। इनका प्रधान योद्धा दौलत खाँ लोधी सुनते ही चार सौ सवारों को

लेकर दौड़ा। वे सब उसी की जाति के और सदा उसके साथ रहनेवाले अफगान थे। वे लोग जान तोड़ कर अड़ गए। दौलत खाँ का लड़का पीर खाँ भी छः सौ वीरों को लेकर सहायता करने के लिये पहुँचा। अँधेरे में ही मार-काट होने लगी। आहंग खाँ ने देखा कि ऐसी अवस्था में यदि हम लड़ेंगे, तो मरने के सिवा और कोई लाभ नहीं होगा। उसे पता लग गया था कि खान-खानाँ की सारी सेना इस समय मेरा सामना कर रही है। खेमे और स्वप्नागार की ओर का सारा स्थान खाली है। उसने चार सौ दक्खिनी वीरों और शाह अली के लड़के को साथ लेकर घोड़े मारे और भागा-भाग किले में घुस ही गया। शाह अली सत्तर बरस का बुड्ढा था। उसे साहस न पड़ा। उसने अपने प्राण बचाने को ही बहुत समझा। वह बाकी सेना लेकर जिस मार्ग से आया था, उसी मार्ग से भागा। पर दौलतखाँ ने उसका भी पीछा न छोड़ा। मारा-मार, दौड़ा-दौड़ उसके नौ सौ आदमियों को काटकर तब पीछे लौटा।

बादशाही लश्कर चारों ओर फैला हुआ था। मोरचे अमीरों में बँट गए थे। सब लोग जोर मारते थे, पर कुछ कर नहीं कर सकते थे। शाहाहजादे की सरकार में अदूरदर्शी और उपद्रव तथा उत्पात मचानेवाले लोग एकत्र हो गए थे। वे मैदान में तो धावा नहीं मारते थे, हाँ दरबार में खड़े हो कर आपस में एक दूसरे पर खूब पेंच मारते थे। शाहजादे की युक्तियों में इतना बल नहीं था जो इन लोगों के उपद्रवों को दबा सकता और स्वयं ऐसा काम करता जो उचित होता। यह बात शत्रु से लेकर उसकी प्रजा तक सभी लोग जान गए थे।

लोगों ने यह निश्चित किया कि किला खाली करके यहाँ से निकल चलना चाहिए। पर धन्य था चाँद बीबी का पुरुषोचित साहस। शेरों का सा हृदय रखनेवाली उस स्त्री ने इतने ही अवकाश को बहुत समझा। उसने अपने सिर पर बुरका डाला, कमर से तलवार लगाई और दूसरी तलवार सौंतकर हाथ में लिए हुए बिजली की तरह बुर्ज पर आई। तख्ते, कड़ियाँ, बाँस, टोकरे आदि भरे हुए तैयार थे। बड़े-बड़े थैले और सारी आवश्यक सामग्री लिए हुए वह इसी अवसर की प्रतीक्षा में बैठी हुई थी। वह गिरी हुई दीवार पर स्वयं आकर खड़ी हो गई। मीठी जबान, धन का बल, कुछ लालच देकर और कुछ डरा धमका कर, तात्पर्य यह कि युक्ति से ऐसा काम किया कि स्त्रियाँ और पुरुष सभी मिलकर काम में लिपट गए और बात की बात में उन लोगों ने किले की वह दीवार फिर से खड़ी कर ली और उस पर छोटी-छोटी तोपें चढ़ा दीं। जब बादशाही लश्कर रेला देकर आगे बढ़ता था, तब उधर से ओलों की तरह गोले बरसते थे। अकबर की सेना लहर की तरह टकरा कर पीछे की ओर हट जाती थी। हजारों आदमी काम आए, पर फिर भी कुछ काम नहीं निकला। सन्ध्या समय सब लोग विफल-मनोरथ होकर अपने डेरों पर लौट आए।

जब रात ने अपनी काली चादर तानी, तब शाहजादा मुराद अपने लश्कर और मुसाहबों को लिए हुए अकृतकार्य होकर अपने डेरों में लौट आए। चाँद बीबी चमककर निकली। बहुत से राज, कारीगर और हजारों मजदूरे तथा बेलदार आदि तैयार थे। वह स्वयं घोड़े पर सवार थी। मशालें जल रही थीं। चूने गच के

साथ चुनाई आरम्भ कर दी। मुट्ठियाँ भर भरकर रुपए और अशर्फियाँ देती जाती थीं। राज-मजदूरों की भी यह दशा थी कि पत्थर और ईंटें तो दूर रहीं, वल्ला, लक्कड़, बल्कि मुरदों की लाशें तक, मतलब यह कि जो कुछ हाथ में आया, सभी लेकर बराबर दीवार में चुनते जाते थे। जब सवेरा होने पर बादशाही लश्कर उठा और उसने मोरचों पर दृष्टि दौड़ाई, तब देखा कि तीन गज चौड़ी और पचास गज ऊँची किले की दीवार रातों रात ज्यों की त्यों, बल्कि पहले से भी बढ़कर दृढ़ तैयार हो गई थी। इसके सिवा इस साहसवाली स्त्री ने और जो जो उपाय तथा युक्तियाँ की थीं, यदि मैं उनका विस्तृत विवरण लिखूँ, तो अकबरी दरबार में चाँदनी खिल जाय। कहते हैं कि अन्त में जब अन्न समाप्त हो गया, रसद बन्द हो गई और कहीं से सहायता न पहुँची, तब उसने बादशाही लश्कर पर चाँदी और सोने के गोले ढाल ढालकर मारने आरम्भ किए।

इसी बीच में खानखानाँ को समाचार मिला कि आदिल शाह का नायब सुहेलखाँ हब्शी सत्तर हजार सैनिकों की विशाल सेना लेकर आ रहा है। साथ ही यह भी पता चला कि रसद और बनजारों का रास्ता भी बन्द हो गया है। आस-पास के मैदानों में लकड़ी तो क्या बल्कि घास का तिनका तक न रहा। चारो ओर के जमींदार अकबरी सेना के विरुद्ध हो गए। लश्कर के जानवर भूखों मरने लगे। उधर से चाँद बीबी ने सन्धि का सँदेसा भेजा और कहलाया कि मैं बुरहान उल् मुल्क के पोते को श्रीमान् की सेवा में उपस्थित करती हूँ। अहमदनगर इसकी जागीर कर दी जाय। बरार देश की कुँजियाँ, अच्छे अच्छे

हाथी, बहुमूल्य रत्न और बादशाहों के योग्य अद्भुत पदार्थ सेवा में उपहार स्वरूप भेजती हूँ। आप किले पर से घेरा उठा लें। इधर के जो कर्मचारी वास्तविक अवस्था जानते थे, उन्होंने निवेदन किया कि अब किले में रसद आदि नहीं रह गई है और शत्रु ने हिम्मत हार दी है। अब काम बहुत सहज हो गया है और सन्धि करने की कोई आवश्यकता नहीं है। परन्तु लालच का मुँह काला हो कि कुछ रिश्वतों ने पेच मारा और कुछ मूर्खों ने आँखों में धूल डाली। ये लोग सन्धि करने के लिये उद्यत हो गए। बाहर से यह समाचार मिला था कि बीजापुर से आदिल शाही लश्कर इकट्ठा होकर चाँद बीबी की सहायता करने के लिये आ रहा है; इसलिये विवश होकर सब लोग सन्धि करके बिदा हुए और किले पर से घेरा उठ गया।

जब शाहजादे ने आदिल शाह की सेना के आगमन का समाचार सुना, तब वह तुरन्त उसका सामना करने के लिये चला। परन्तु कुछ ही पड़ाव चलने पर उसने सुना कि आदिल-शाही सेना नहीं आ रही है। उसके आने का समाचार लोगों ने यों ही झूठ-मूठ उड़ा दिया था। उधर से शाहजादा बरार की ओर लौटा। परन्तु अयोग्य सरदारों ने ऐसे बुरे ढंग से किले पर से घेरा उठाया था कि शत्रु उनके पीछे-पीछे नगाड़े बजाता चला आया; और जहाँ-जहाँ उसे अवसर मिलता, वहाँ-वहाँ वह बराबर इन्हें लूटता रहता। लश्कर की बहुत बुरी अवस्था थी। युद्ध की सामग्री और रसद आदि का अभाव सीमा से बहुत बढ़ गया था। अमीरों में आपस में फूट पड़ी हुई थी; इसलिए शत्रु के आक्रमणों को कोई रोक नहीं सका। सेनापति बहुत

अनुभवी और प्रबन्ध-कुशल था। यदि वह चाहता तो सभी बिगड़ी हुई बातें बहुत ही थोड़े समय में बिलकुल ठीक कर लेता। परन्तु दुष्टों ने शाहज़ादे के कान में यह भर दिया था कि खान-खानाँ चाहता है कि विजय मेरे ही नाम से हो। परन्तु हम सब सेवक हुजूर पर प्राण निछावर करनेवाले हैं और हम लोग यही चाहते हैं कि इसमें हुजूर का ही यश बढ़े। मूर्ख शाहजादे की समझ में यह बात नहीं आई कि इन अयोग्यों से कुछ भी न हो सकेगा। खानखानाँ बिलकुल चुप था। उसे जो कुछ आज्ञा मिलती थी, वही करता था। साथ ही वह इन लोगों की बुद्धि और युक्ति के तमाशे भी देखता रहता था। कभी हँसता था और कभी मन ही मन कुढ़ता था; पर फिर भी जहाँ तक हो सकता था, लड़ाई को सँभाले जाता था। वह चाहता था कि किसी प्रकार स्वामी का काम न बिगड़े। दक्षिण देश की कुंजी (राजी अलीखाँ) इसी की कमर में थी। वह विलक्षण जोड़-तोड़ की बातें निकालता था। उसने राजी अलीखाँ की कन्या का शाहज़ादा मुराद के साथ विवाह कराके अकबर को उसका समधी बना दिया। अब वह आप ही लश्कर में सम्मिलित हो गया था। कई हजार सेना उसके साथ थी। भला दामाद को छोड़ कर ससुर कहाँ जा सकता था!

इसी बीच में बरार पर अधिकार हो गया। बादशाही लश्कर वहाँ पहुँचकर ठहर गया। शाहज़ादे ने शाहपुर नामक एक नया नगर बसाकर उसे अपनी राजधानी बनाया और वहाँ के इलाके अपने अमीरों में बाँट दिए। ऊँट और घोड़े चारो ओर भेज दिए। पर सबसे बड़ी कठिनता यह थी कि वह अपने सामने किसी को कुछ

समझता ही नहीं था। लाख समझाने पर भी अपनी बात के आगे किसी की बात नहीं सुनता था। जो लोग उसके पिता के साम्राज्य के स्तम्भ थे और जो उसके लिये जान निछावर करते थे, उन्हें वह व्यर्थ अप्रसन्न करता रहता था। इसी लिये शहबाजखाँ कम्बो इतना अधिक दुःखी और तंग हुआ कि बिना आज्ञा लिए ही उठकर अपने इलाके को चला गया। वह कहता था कि इस समय जो परिस्थिति है, उसे देखते हुए सन्धि करना किसी प्रकार उचित नहीं है। मैं धावा करने को तैयार हूँ। पर अहमदनगर की लूट मेरी सेना के लिये माफ कर दी जाय। परन्तु शाहजादे ने नहीं माना।

इन सब बातों के होते हुए भी शाहजादे ने आस-पास के देशों पर हाथ फैलाए। उसने पातरी आदि इलाके ले भी लिए। अहमदनगर के अमीरों के झगड़ों का निपटारा कराने के लिये आदिल शाह की ओर से सुहेलखाँ आया था। वह लौटा हुआ चला जा रहा था। जब उसने ये सब समाचार सुने, तो बहुत नाराज हुआ। इसके सिवा चाँद सुलताना ने भी आदिल शाह को, जो सम्बन्ध में उसका छोटा देवर होता था, लिखा था। उसपर दक्षिण के प्रायः सभी शासकों ने एक मत होकर लश्कर इकट्ठे किए और सब लोग एक साथ मिलकर और साठ हजार सैनिकों को अपने साथ लेकर बादशाही सेना पर चढ़ाई करने के लिये आए।

खानखानाँ का प्रताप बहुत दिनों से पड़ा सुख की नींद सो रहा था। इस समय उसने अँगड़ाई लेकर करवट ली। शत्रु पक्ष की यह अवस्था देखकर उसने शाहजादे और सादिक मुहम्मद खाँ को शाहपुर में छोड़ा और स्वयं शाहरुख मिरजा तथा

राजी अली खाँ को साथ लेकर बीस हजार सैनिकों सहित आगे बढ़ा। इस युद्ध में खानखानाँ ने ऐसी श्रेष्ठ विजय पाई थी जो पूर्वी आकाश पर सूर्य की किरणों से लिखी जाने के योग्य है। उसने गंगा के किनारे सोनपत नामक स्थान के पास डेरा डाला; और कुछ दिनों तक वहीं ठहर कर उस देश की सब बातों का पता लगाया। वहाँ के लोगों के साथ उसने जान-पहचान भी पैदा कर ली। एक दिन उसने अपनी सेनाएँ सुसज्जित करके अश्ती नामक स्थान पर उन्हें विभक्त किया। नदी में पानी बहुत ही कम था; इसलिये वह बिना नावों आदि के यों ही पैदल चलकर पार उतर गया। बाथरी से बारह कोस की दूरी पर मादेर नामक स्थान पर युद्धक्षेत्र नियत हुआ।

यह घटना १७ जमादी उस्सानी सन् १००५ हि० (सन् १५९७ ई०) की है। आदिल शाह का सेनापति सुहेल खाँ अपनी समस्त सेनाओं को लेकर युद्ध-क्षेत्र में आया। उसके दाहिने पार्श्व में निजाम शाही अमीर थे और बाएँ पार्श्व में कुतुब शाही अमीर थे। वह बड़े अभिमान के साथ सेनाएँ लेकर झंडा उड़ाता हुआ आया। वह स्वयं सेना के मध्य भाग में स्थित हुआ था। लश्कर की संख्या हजारों से भी बढ़ी थी। वह सारा टिड्डी दल बड़े घमंड और धूमधाम के साथ साहस के पैर रखता हुआ आगे बढ़ा। चगताई सेनापति भी बहुत आन-बान के साथ आगे आया। चारों ओर परे जमाकर किला बाँधा। उस किले में राजी अली खाँ और राजा रामचन्द्र राजपूत दाहिनी ओर थे और वह स्वयं अपने साथ मिरजा शाह रुख और मिरजा अली बेग अकबरशाही को लिए हुए सेना के मध्य भाग में खड़ा था।

कोई पहर दिन चढ़ा था कि तोप की-आवाज में लड़ाई का सँदेसा पहुँचा। इस युद्ध में सुहेलखाँ को अपने तोपखाने पर बहुत अधिक घमंड था। और वास्तविक बात भी यही है कि भारत में सबसे पहले तोपखाना दक्षिण देश में ही आया था। वह देश कई बन्दरगाहों के साथ मिला हुआ था। तोपखाने की जो सामग्री वहाँ थी, वह और कहीं नहीं थी। उसका तोपखाना जैसा अच्छा था, वैसा ही बहुलायत के साथ भी था। पहले ही हरावल ने हरावल के साथ टक्कर खाई। राजीअलीखाँ और राजा रामचन्द्र ने शत्रुओं को तोपें खाली करने का अवकाश ही नहीं दिया और चट पट उसपर जा पड़े। फिर भी दोनों पक्षों की हरावल की सेनाएँ कई बार विजयी और परास्त होकर आगे बढ़ीं और पीछे हटीं। पर फिर भी उक्त दोनों वीरों ने शत्रु के हरावल को उठाकर फेंक ही दिया। दक्खिनी लोग पीछे तो हटे, पर बहुत ही युक्तिपूर्वक हटे। वे बादशाही लश्कर को खींचकर एक बीहड़ स्थान में ले गए; और फिर वहाँ से जो लौटे, तो दाहिनी ओर से आए और इधर उधर निकलकर चारों ओर फैल गए। लड़ाई की नदी मैदान में लहरें मार रही थी और सेनाएँ टकराकर भँवर की तरह चक्कर मारती फिरती थीं। सरदार लोग आक्रमण करते थे, पर उस नदी का कहीं कूल नहीं दिखाई देता था।

दिन ढल गया, पर लड़ाई उसी प्रकार होती रही। अचानक एक दैवी घटना हो गई। चाहे इसे ईश्वरीय सहायता कहो और चाहे खानखानाँ की अच्छी नीयत का फल कहो, पर युक्ति और उपाय का इसके साथ कुछ भी सम्बन्ध नहीं था। अली बेग भी

शत्रु के तोपख़ाने का बड़ा अफसर था। वह स्वयं ही उधर से अपना पार्श्व बचाकर निकला और घोड़ा मार कर खानखानाँ के पास आ खड़ा हुआ। उसने आते ही कहा कि आप लोग यह क्या कर रहे हैं। शत्रु ने अपना सारा तोपखाना ठीक आपके सामने ही चुना हुआ है; और वह अब तोपखाने को महताब दिखलाना ही चाहता है। आप शीघ्र दाहिनी ओर को हट जायँ। उसके रंग-ढंग से खानखानाँ ने समझ लिया कि यह आदमी झूठा नहीं है। उसने स्थान और ढंग के सम्बन्ध में सब बातें उससे पूछीं और फिर बड़ी व्यवस्था के साथ सेना को एक पार्श्व में खिसकाया। साथ ही दो सवार राजी अलीखाँ के पास भी भेजे और उससे कहलाया कि यहाँ की यह अवस्था है; अतः तुम भी अपना स्थान बदलो। पर ईश्वर की महिमा देखो कि उसकी समझ उलटी पड़ी। वह तुरन्त अपने स्थान से हटा और जहाँ से खानखानाँ हटा था, वहीं आ खड़ा हुआ। मृत्यु का गोला मानों ठीक इसी समय की प्रतीक्षा कर रहा था। उसका इधर आना था कि मृत्यु ने अपनी तोप में महताब दिखलाई। संसार अन्धकार-पूर्ण हो गया। बहुत देर तक तो कुछ दिखाई ही नहीं दिया। शत्रु ने यह समझ रखा था कि विपक्षी दल का सेनापति हमारे ठीक सामने ही है। इसलिये तोपखाने को आग देते ही उसने आक्रमण कर दिया, यहाँ राजी अलीखाँ अपनी सेना को साथ लिए हुए खड़ा था। खूब घमासान का रण पड़ा। दुःख है कि दक्षिण देश की वह कुंजी उसी युद्ध-क्षेत्र की धूल में खोई गई। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि उसने और राजा रामचन्द्र ने बहुत ही वीरता तथा दृढ़तापूर्वक

युद्ध-क्षेत्र में डट कर अपने प्राण दिए थे। उसके साथ तीस हजार और वीर भी खेत रहे।

अब दिन दो घड़ी से अधिक बाकी नहीं था। सुहेलखाँ ने देखा कि सामने का मैदान खाली है। उसने सोचा कि मैंने खानखानाँ को उड़ा दिया और उसकी सेना को भगा दिया। वह आक्रमण करके आगे बढ़ा। सन्ध्या होने को ही थी। जहाँ सबेरे बादशाही लश्कर मैदान जमा कर खड़ा हुआ था, वहीं वह इस समय आ पड़ा।

उधर खानखानाँ को यह भी पता नहीं था कि राजी अलीखाँ की क्या दशा है। जब उसने देखा कि आग का बादल सामने से हटा, तब घोड़ों की बागें लीं और अपने सामने की सेना पर जा पड़ा। उसने अपने शत्रु को बिलकुल नष्ट कर दिया। सुहेल खाँ की सेना ने सजे हुए खेमे खाली पाए। पंक्ति की पंक्ति लदे हुए ऊँट, खच्चर, बैल और टट्टू आदि तैयार खड़े थे। उनमें खानखानाँ के निजी और कारखानों के सन्दूक थे, जो हरी और लाल बानातों से मढ़े हुए थे। दक्खिनी सेना के सैनिक उसी के आस-पास के प्रदेशों के रहनेवाले थे। उन लोगों ने जितना सामान बाँधा जा सका, उतना सब बाँध लिया। छावनी को वहीं छोड़ दिया और इन लदे हुए पशुओं को अपने सामने डालकर बहुत ही निश्चिन्त भाव से अपने-अपने घर की राह ली। स्वयं अपनी सेना के अनिष्ठ सेवकों ने भी मुरव्वत के सिर पर धूल डाली। ये लोग घर के भेदी थे। खजानों और बहुमूल्य कारखानों पर गिर पड़े और सबने लालच के थैले खूब जी खोलकर भर लिए।

यद्यपि सुहेल खाँ की सेना मारी भी गई थी और भागी भी

थी, पर फिर भी उसका हृदय शेरों का सा था। वह समझता था कि मैंने सेनापति को तो उड़ा ही दिया है। जब सन्ध्या हुई तो उसने सोचा कि इस समय बिखरे हुए लश्कर को समेटना कठिन है। पास ही एक गोली के टप्पे पर एक नाला बहता था। वहीं वह रुक गया। उसके साथ बहुत थोड़ी सी सेना थी। उसी को लेकर वहाँ उतर पड़ा। उसने सोचा था कि जिस प्रकार हो, यहीं रात बितानी चाहिए। खानखानाँ ने भी अपने सामने से शत्रु को भगा दिया था। वह वहाँ जा पहुँचा, जहाँ सुहेल खाँ का तोपखाना पड़ा हुआ था। अँधेरे में वह भी वहीं ठहर गया। उसकी सेना भी भाग गई थी। और उसमें के कुछ सैनिक तो ऐसे भागे थे कि उन्होंने शाहपुर तक कहीं रास्ते में दम ही नहीं लिया था। बहुत से लुटेरे वहीं जंगल में नदी के किनारे खोहों और करारों में छिपे हुए बैठे थे। वे सोचते थे कि हम लोग प्रातःकाल होने पर शत्रु की दृष्टि बचाकर निकल जायँगे। खानखानाँ ने उस समय वहाँ से हटना उचित नहीं समझा। तोपों के तख्ते और तोपखाने के छकड़े आगे रखकर मोरचे बना लिए और ईश्वर पर भरोसा करके वहीं ठहर गया। केवल वही स्वामिनिष्ठ सेवक, जो अपनी बात पर प्राणों को निछावर किया करते थे, उसके चारों ओर थे। कोई सवार था, कोई घोड़े की बाग पकड़े जमीन पर बैठा हुआ था। खानखानाँ की दृष्टि आकाश की ओर थी। वह सोचता था कि देखो, सवेरा होने पर मनोरथ सिद्ध होता है या नहीं, या मेरे प्राण ही जाते हैं। और तमाशा यह कि शत्रु भी पास में ही खड़ा है। एक को दूसरे की खबर नहीं।

अब अकबर के प्रताप का विलक्षण और अद्भुत कार्य

देखो। सुहेल खाँ के शुभचिन्तक सेवकों में कोई तो दीपक जलाकर और कोई मशाल जलाकर उसके पास लाया। खानखानाँ और उसके साथियों को उनका प्रकाश दिखलाई दिया। उन्होंने वहाँ जाकर पता लगाने और हाल लाने के लिये आदमी भेजे। वहाँ देखते हैं तो सुहेल खाँ चमक रहे हैं। दक्खिनी तोपखाने की कई तोपें और जम्बूरक भरे हुए खड़े थे। झट इन लोगों ने उन्हें सीधा करके निशाना बाँधा और दाग दिया। गोले भी जाकर ठीक स्थान पर पड़े। पता लगा कि शत्रु के दल में हलचल मच गई; क्योंकि वह घबराकर अपने स्थान से हटा था। सुहेल खाँ बहुत ही चकित हुआ कि ये दैवी गोले किधर से आए! उसने आदमी भेजकर अपने आस-पास के साथियों को बुलवाया। उधर खानखानाँ ने विजय के नगाड़े पर चोट देकर आज्ञा दी कि करनाई (प्रसन्नता-सूचक विजय के राग) बजाओ। रात का समय था। जंगल में आवाज गूँजकर फैली। जो बादशाही सिपाही इधर उधर छितरे बिखरे पड़े थे, उन्होंने अपने लश्कर की करनाई का शब्द पहचाना और उसी विजय के शब्द पर सब लोग चले आए। जब वे लोग आ पहुँचे, तब फिर बधाइयों की करनाई फूँकी गई। जब कोई सरदार सेना लेकर पहुँचता था, तब लोग अल्ला अल्ला का तुमुल घोष करते थे। रात भर में ग्यारह बार करना बजी। सुहेलखाँ भी अपने आदमी दौड़ा रहा था और सैनिकों को एकत्र कर रहा था। लेकिन उसके सैनिकों की यह दशा थी कि ज्यों ज्यों वे अकबरी करना का शब्द सुनते थे, त्यों त्यों उनके होश उड़े जाते थे। सुहेलखाँ के नकीब भी बोलते और बुलाते फिरते थे। पर सैनिकों के दिल हारे जाते थे। वे गड्ढों

और कोनों में छिपते फिरते थे या वृक्षों पर चढ़े जाते थे। उन्हें यही चिन्ता हो रही थी कि कहाँ जायँ और किस प्रकार अपने प्राण बचावें। सवेरा होते ही खानखानाँ के सिपाही नदी पर पानी लाने के लिये गए थे। वे लोग समाचार लाए कि सुहेलखाँ बारह हजार सैनिकों को साथ लिए हुए जमा खड़ा है। उस समय इधर चार हजार से अधिक सैनिक नहीं थे। पर फिर भी अकबरी प्रताप के सेनापति ने कहा कि इस अँधेरे को ही अपने लिये सबसे अच्छा अवसर समझो। इसी के परदे में बात बन जायगी। हमारे पास थोड़ी ही सेना है। यदि दिन ने यह भेद खोल दिया तो बहुत कठिनता होगी। धुँधला सा समय था। सवेरा होना ही चाहता था। इतने में सुहेलखाँ चमका और उसने युद्ध की वायु में गति दी। तोपें सीधी कीं और हाथियों को सामने लाकर रेला। इधर से अकबरी सेनापति ने धावे की आज्ञा दी। सेना दिन भर और रात भर की भूखी-प्यासी थी। सरदारों की बुद्धि चकित हो रही थी। दौलतखाँ इनका हरावल था। वह घोड़ा मारकर आया और बोला कि ऐसी अवस्था में इतनी अधिक संख्यावाले शत्रु पर चढ़ कर जाना प्राण ही गँवाना है। पर मैं इतने पर भी हाजिर हूँ। इस समय छः सौ सवार मेरे साथ हैं। मैं शत्रु की कमर में घुस जाऊँगा। खानखानाँ ने कहा कि तुम व्यर्थ दिल्ली का नाम बदनाम करते हो। उसने कहा—हाय दिल्ली! खानखानाँ को भी तो दिल्ली बहुत प्यारी थी। वह प्रायः कहा करता था कि यदि मैं मरूँगा तो दिल्ली में ही मरूँगा। पर यदि इस समय शत्रु को परास्त कर लिया तो सौ दिल्लियाँ हम आप खड़ी कर लेंगे। और यदि मर गए तो

ईश्वर के हाथ हैं। दौलतखाँ ने घोड़ा बढ़ाना चाहा। सैयद कासिम बारहा भी अपने सैयद भाइयों को लिए हुए वहीं खड़े थे। उन्होंने कहा कि भाई, हम तुम तो हिन्दुस्तानी हैं। मरने के सिवा दूसरी बात नहीं जानते। हाँ यह पता लगा लो कि नवाब का क्या विचार है। दौलतखाँ फिर लौट पड़े और खानखानाँ से बोले कि सामने शत्रु का यह समूह है और दैवी विजय है। पर फिर भी यह तो बतला दीजिए कि यदि हार गए, तो आपको कहाँ ढूँढकर मिलेंगे। खानखाकाँ ने उत्तर दिया—सब लाशों के नीचे। यह सुनते ही लोधी पठान ने सब बारहा सैयदों के साथ बागें लीं। मैदान से कटकर पहले घूँघट खाया और एक बार चक्कर देकर शत्रु की कमर पर गिरा। शत्रुओं में हलचल मच गई। यह ठीक वही समय था, जब कि खानखानाँ सामने से आक्रमण करके पहुँचा था और बहुत गुथकर लड़ाई हो रही थी। सुहेलखाँ का लश्कर भी आठ पहर का थका हुआ और भूख-प्यास का मारा हुआ था। ऐसा भागा जिसकी कभी आशा ही नहीं थी। फिर भी बहुत मार-काट और रक्त-पात हुआ। सुहेलखाँ को कई घाव लगे और वह गिर पड़ा। उसके पुराने और निष्ठ सेवक पतिंगों की तरह उसपर आ गिरे। उन लोगों ने उसे उठा कर घोड़े पर बैठाया और दोनों ओर से उसकी दोनों बाँहें पकड़ कर उसे युद्ध-क्षेत्र से बाहर निकाल ले गए। थोड़ी ही देर में मैदान साफ हो गया। खानखानाँ के लश्कर में बे-लाग विजय के नगाड़े बजने लगे। वीरों ने युद्ध-क्षेत्र को देखा तो वह बिलकुल साफ पड़ा हुआ था। उसमें कहीं शत्रु के एक आदमी का भी पता नहीं था।

लोगों ने प्रसिद्ध कर दिया कि राजी अलीखाँ युद्ध-क्षेत्र से भाग कर अलग हो गया। कुछ लोगों ने तो यह भी हवाई उड़ाई थी कि वह शत्रु-पक्ष में जाकर मिल गया। पर जब ढूँढ़ा गया, तब पता चला कि वह बुड्ढा शेर कीर्त्ति के क्षेत्र में कीर्त्ति-शाली होकर सोया हुआ है। उसके आस-पास उसके पैंतिस प्रसिद्ध सरदार और पाँच सौ निष्ठ दास कटे हुए पड़े हैं। उसकी लाश बहुत धूम-धाम से उठा कर लाए। उलटी सीधी बातें कहने-वालों के मुँह काले हो गए। खानखानाँ को इस विजय से बहुत अधिक आनन्द हुआ; पर इस दुर्घटना ने सारा मजा किरकिरा कर दिया। उस समय उसके पास नगद और सामान आदि सब मिलाकर ७५ लाख रुपये का माल था। इस विजय के धन्यवाद के रूप में उसने वह सब नगद और माल अपने सिपाहियों में बाँट दिया। केवल आवश्यक सामग्री के दो ऊँट अपने पास रख लिए, क्योंकि उस सामग्री के बिना उसका काम ही नहीं चल सकता था।

यह युद्ध खानखानाँ के प्रताप का ऐसा कीर्त्तिपत्र था, जिसके दमामे से सारा भारतवर्ष गूँज उठा। बादशाह के पास निवेदन-पत्र पहुँचा। वे अभी अब्दुल्ला उजबक के मरने का समाचार सुन कर पंजाब से लौटे थे। वे भी यह सुसमाचार सुन कर बहुत अधिक प्रसन्न हुए। वहीं से खानखानाँ के लिए एक बहुमूल्य खिलअत और बहुत अधिक प्रशंसा से भरा हुआ आज्ञापत्र भेजा। जहाँ-जहाँ शत्रु लोग थे, वे सब सुन कर सन्नाटे में आ गए और उनके मुँह बन्द हो गए। ये विजय-पताका फहराते हुए और आनन्द के बाजे बजाते हुए शाहपुर में आकर शाहजादे की

सेवा में उपस्थित हुए और उसे मुजरा किया; और तलवार खोल कर अपने खेमे में बैठ गए। शाहजादे के सादिक मुहम्मद आदि मुसाहब और मुख्तार लोग अब भी विरोध और द्वेष की दीया सलाई सुलगाते जाते थे। इधर खानखानाँ बादशाह के पास निवेदनपत्र भेज रहा था और उधर शाहजादा भेज रहा था। शाहजादे ने अपने पिता को यहाँ तक लिखा कि आप अब्बुल-फजल और सैयद यूसुफखाँ मशहदी को यहाँ भेज दें और खानखानाँ को अपने पास बुला लें। खानखानाँ भी उसी के लाडले थे। उन्होंने भी लिखा कि हुजूर शाहजादे को बुला लें। यह सेवक अकेला ही विजय का सारा भार अपने ऊपर लेता है। यह बात बादशाह को भली नहीं लगी। शेख ने अकबरनामे में इसके अभिप्राय का बहुत अच्छा इत्र निकाला है। वह लिखते हैं कि हुजूर को मालूम हुआ कि शाहजादा उखड़े या टूटे हुए दिल को जोड़ना सहज काम समझता है। लोगों को जिस प्रकार रखना चाहिए, उस प्रकार वह नहीं रखता। और जब खानखानाँ ने देखा कि मेरी बात नहीं चलती, तब वह अपनी जागीर की ओर चला गया। राजा शालिवाहन को आज्ञा हुई कि तुम जाकर शाहजादे को ले आओ। हम उसे उचित उपदेश और शिक्षा देकर और काम करने का ठीक मार्ग बतला कर यहाँ से फिर भेजें और रूपसीह खवास को खानखानाँ के पास भेजा और उससे कहा कि तुम जिस स्थान पर खानखानाँ से मिलो, वहीं से उसे वापस लौटने के लिये कहो। साथ ही यह भी कह दो कि जब तक शाहजादा दरबार से बिदा होकर वहाँ न पहुँचे, तब तक तुम वहाँ चल कर सेना और देश की व्यवस्था करो।

यद्यपि शाहजादा अधिक मद्य-पान करने और उसके परिणाम-स्वरूप होनेवाली दुरवस्थाओं के कारण दरबार में आने के योग्य नहीं था, तथापि उसने बादशाह के दरबार में जाने का विचार किया। उसका मिजाज पहचाननेवाले लोगों ने अपनी शुभ-चिन्तना दिखलाते हुए कहा कि इस समय हुजूर का इस देश से हटना ठीक नहीं है। शाहजादे की समझ में भी यह बात आ गई और वह रुक गया। उधर खानखानाँ ने कहा कि जब तक शाहजादा वहाँ उपस्थित है, तब तक मैं वहाँ नहीं जाऊँगा। बादशाह को ये बातें अच्छी नहीं लगीं और उसे मन में दुःख हुआ। इस प्रकार सन् १००६ हि० (सन् १५९८ ई०) में खानखानाँ अपने इलाके पर चले गए और वहाँ से दरबार में आए। कई दिनों तक बादशाह उनसे अप्रसन्न रहा और अपने दरबार में आने नहीं दिया। वे भी दो पीढ़ियों से बादशाह का मिजाज पहचानते थे और उन्हें बातें करना भी खूब आता था। जब उन्हें बादशाह की सेवा में अपने सम्बन्ध की बातें निवेदन करने का अवसर मिला, तब उन्होंने विस्तार-पूर्वक बतलाया कि शाहजादा कैसे बुरे लोगों की संगति में रहता है, कितना मद्यपान करता है, सब कामों की ओर से कितना लापरवाह रहता है, और लोगों के साथ उसके मुसाहब कैसा अनुचित और दुष्टतापूर्ण व्यवहार करते हैं, आदि आदि। इस प्रकार बादशाह के मन में जमी हुई मैल उन्होंने धो डाली और थोड़े ही दिनों में जैसे पहले थे, वैसे ही फिर हो गए। शेख अब्बुलफजल और सैयद यूसुफ मशहदी दोनों दक्खिन की ओर भेज दिए गए। शाहजादे का मद्यपान सीमा से बहुत बढ़ चुका

था। वह शेख के पहुँचने तक भी न ठहर सका। ये लोग अभी रास्ते में ही थे कि वह परलोक सिधारा। दुःख है उस दीवानी जवानी पर, जिसके कारण उसने मद्यपान के फेर में पड़ कर अपने प्राण गँवाए। तीस वर्ष की अवस्था में सन् १००७ हि० (सन् १५९९ ई०) में शाहजादा मुराद बिना अपनी कोई मुराद पूरी किए हुए इस संसार से चला गया।

सन् १००६ हि० में शाह अब्बास ने यह दशा देख कर खुरासान पर चढाई की और विजय पाई। उन्हीं दिनों में उसने बहुत से बहुमूल्य उपहारों के साथ अपना राजदूत अकबर के दरबार में भेजा।

इसी वर्ष खानखानाँ के नव-युवक पुत्र हैदर कुली का देहान्त हो गया। खानखानाँ उसे बहुत चाहता था और प्यार से हैदरी कहा करता था। उसे भी शराब की आग ने ही कबाब बनाया था। नशे में मस्त पड़ा था। इतने में आग लग गई। वह मस्ती का मारा उठ भी न सका और वहीं जलकर मर गया।

इसी वर्ष बादशाह लाहौर से आगरे जा रहे थे। सब अमीर साथ थे। खान आजम की बहन और खानखानाँ की बेगम माह बानो बहुत दिनों से बीमार थी। अम्बाले में उसकी तबीयत इतनी अधिक खराब हो गई कि उसे वहीं छोड़ना उचित जान पड़ा। बादशाह ने उधर प्रस्थान किया और बेगम ने इस संसार से प्रस्थान किया। वह अकबर बादशाह की कोकी और मिरजा अजीज कोका की बहन थी और खानखानाँ की बेगम थी। उसकी सोगवारी की रसम अदा करने के लिये दरबार से दो अमीर आए थे।

केवल अकबर ही नहीं, बल्कि चगताई वंश के सभी बादशाह अपने पैतृक देश समरकन्द और बुखारा पर प्राण देते थे। सन् १००५ हि० में अब्दुल्ला उजबक के मरने से सारे तुर्किस्तान में हलचल मच रही थी। नित्य नए बादशाह बनते थे और नित्य मारे जाते थे। दक्खिन में जो लड़ाइयाँ फैली हुई थीं, उन्हें शेख और सैयद की युक्ति और तलवार समेट नहीं सकती थी। अकबर ने अपने अमीरों को एकत्र करके परामर्श किया कि पहले दक्षिण का निर्णय कर लेना चाहिए; अथवा वहाँ का युद्ध स्थगित कर देना चाहिए और तब तुर्किस्तान की ओर चलना चाहिए। अकबर को इस बात का भी बहुत दुःख था कि दक्खिन में मेरे नवयुवक पुत्र के प्राण गए, पर फिर भी उस देश पर विजय प्राप्त नहीं हुई। यह निश्चय हुआ कि पहले घर की ओर से निश्चिन्त हो लेना चाहिए। इसी लिये सन् १००७ हि० में शाहजादा दानियाल को बहुत बड़ा लश्कर और प्रचुर युद्ध-सामग्री देकर उधर भेजा और खानखानाँ को उसके साथ कर दिया। मुराद की दुरवस्था आदि का स्मरण दिलाकर उसे बहुत उपदेश भी दिया था। इस बार का प्रस्थान बहुत ही व्यवस्था-पूर्वक हुआ था। खानखानाँ की जाना बेगम नामक कन्या के साथ शाहजादा दानियाल का विवाह कर दिया गया था। नित्य अमीर लोग एकत्र होते थे और एकान्त में बात-चीत हुआ करती थी। सेनापति को सभी ऊँच-नीच की बातें समझा दी गई थीं। जब उसने प्रस्थान किया, तब पहले पड़ाव पर बादशाह स्वयं उसकी छावनी में गए। उसने भी ऐसे-ऐसे पदार्थ उपहार स्वरूप सेवा में उपस्थित किए जो अजायब-खानों में ही रखने के योग्य थे। यों

तो बहुतेरे घोड़े थे, पर उनमें से एक घोड़ा ऐसा था जो शेर के साथ कुश्ती लड़ता था। वह सामने से हाथी का मुक़ाबला करता था और हटकर पिछले पैरों से वार करता था। पिछले दोनों पैरों पर खड़ा होकर अगले दोनों पैर हाथी के मस्तक पर रख देता था। लोग तमाशे देखते थे और चकित होते थे।

अब खानखानाँ ने शाहज़ादे को साथ लेकर दक्षिण देश में प्रवेश किया। हम तो समझते थे कि बहुत दिनों के बिछड़े हुए मित्र विदेश में आपस में मिलकर बहुत प्रसन्न होंगे; पर यहाँ बिलकुल उलटी ही बात देखने में आई। हृदय के दर्पण काले हो गए और प्रेम के लहू सफेद हो गए। वे लोग पूरे शतरंजबाज थे। छल और कपट की चालें चलते थे। पर खानखानाँ शाहज़ादे की आड़ में चलता था, इसलिये उसकी बात खूब चलती थी। अभी युद्ध-क्षेत्र तक पहुँचने भी नहीं पाए थे कि एक निशाना मारा। शेख अकबरनामे में लिखते हैं और ऐसा जान पड़ता है कि कलम से विवशता का दर्द स्पष्ट प्रकट हो रहा है। लिखा है—"मैंने अहमदनगर में सब कामों का पूरा-पूरा प्रबन्ध कर लिया था। पर इतने में शाहज़ादे का आज्ञापत्र पहुँचा कि जब तक हम न आ जायँ, तब तक पैर आगे मत बढ़ाओ। इस आज्ञा का पालन करने के सिवा और क्या हो सकता है!"

खानखानाँ की व्यक्तिगत योग्यता निर्विवाद है। उस पर कोई कुछ भी आपत्ति नहीं कर सकता। इन्होंने अपने काम और नाम के लिये अलग प्रबन्ध किए। उधर तो शेख को रोक दिया कि जब तक हम न आवें, तब तक अहमदनगर पर आक्रमण न करना। हम आते हैं, तब आक्रमण

होगा। उधर मार्ग में आसीर पर ही आप अटक रहे, और यह सोचा कि पहले रास्ता साफ करके तब अहमद-नगर को लेंगे। यह भी शेख पर चोट थी; क्योंकि आसीर में शेख का समधियाना था। शेख ने भी एक बहुत ही विलक्षण मन्सूबा मारा। ऊपर-ऊपर अकबर को लिखा कि शाहज़ादा लड़कपन कर रहा है। आसीर का मामला तो बिलकुल साफ ही है। उसे जिस समय हुजूर चाहेंगे, उसी समय ले लेंगे; और जिस प्रकार हुजूर चाहेंगे, उसी प्रकार वहाँ का निपटारा हो जायगा। पर अहमदनगर का काम बिगड़ा जा रहा है। अकबर बादशाह युक्ति का बादशाह था। उसने शाहजादे को लिखा कि शीघ्र ही अहमदनगर की ओर प्रस्थान करो। वहाँ का अवसर हाथ से निकला जाता है; और स्वयं पहुँच कर उस पर घेरा डाल दिया और अब्बुल फजल को वहाँ से अपने पास बुला लिया।

खानखानाँ ने अहमदनगर पर घेरा डाला। नित्य मोरचे चढ़ाते थे, दमदमे बनाते और सुरंग खुदवाते थे। उधर दक्खिनी वीर किले के अन्दर बैठे हुए उसकी रक्षा कर रहे थे और साथ ही बाहर भी चारों ओर फैले हुए थे। बनजारों पर गिरते थे और बहीर तथा लश्कर पर झपट्टे मारते थे। चाँद बीबी युद्ध की सामग्री एकत्र करने, लश्कर के अमीरों को प्रसन्न करने और बुरजों तथा परकोटों की दृढ़ता रखने में बाल भर भी कमी नहीं करती थी। फिर भी कहाँ अकबर का प्रताप और बादशाही साज-सामान और कहाँ अहमदनगर का छोटा सा सूबा! इसके सिवा किले में रहनेवाले कुछ सरदारों की नीयत भी खराब थी और उनमें आपस में राग-द्वेष भी था। बेगम ने अपने मन्त्री से ये

सब बातें कहीं; और कहा कि अब किला बचता हुआ दिखलाई नहीं देता। इसलिये उचित यही है कि हम लोग अपनी कीर्त्ति की रक्षा करें और किला शत्रु के हवाले कर दें। मन्त्री चीता खाँ ने बेगम का यह विचार दूसरे सरदारों को बतलाया; और उन्हें यह कहकर बहकाया कि बेगम अन्दर ही अन्दर अकबर के अमीरों से मिली हुई है। दक्खिनी लोग यह बात सुनते ही बिगड़ खड़े हुए और उस पवित्र तथा सदाचारिणी बेगम को शहीद किया। अकबरी अमीरों ने सुरंगें उड़ाकर धावा किया। तीस गज दीवार उड़ गई। उन लोगों ने बाबुली बुर्ज से किले में प्रवेश किया। चीता खाँ और हजारों दक्खिनी वीर मार डाले गए। चीता खाँ के साथ उसके सब सिपाहियों की भी हत्या की गई। जिस लड़के को लोगों ने निजाम उल्मुल्क बहादुर शाह बनाकर सिंहासन पर बैठाया था, वह पकड़ लिया गया। खान-खानाँ उसे लेकर हाजिर हुए और बुरहानपुर में उसे दरबार में उपस्थित किया। राज्यारोहण के पैंतालिसवें वर्ष में चार महीने और बीस दिन के घेरे के उपरान्त अहमदनगर का किला जीता गया। इस विजय का वर्णन करते हुए सभी लोगों ने लिखा कि जो कुछ किया, वह सब खानखानाँ ने किया। और वास्तव में उन्होंने जो कुछ लिखा था, वह बिलकुल ठीक लिखा था।

बादशाह ने आसीर जीत लिया और तब आगरे की ओर प्रस्थान किया।

उस देश का नाम शाहजादा दानियाल के नाम पर रखा गया। दानियाल शब्द के विचार से खान्देश का नाम दानदेश रखा गया।

खानखानाँ ने फिर पेच मारा। उन्होंने शेख की योग्यता और कार्य-कुशलता की बहुत अधिक प्रशंसाएँ लिखवाईं और उन्हें बादशाह से माँग लिया। अब वहाँ की हालत बहुत ही नाजुक हो गई। शाहजादा साहब तो देश के मालिक ही थे और खानखानाँ उनके श्वसुर तथा प्रधान सेनापति थे। अब शेख साहब को उनके अधीन होकर रहना पड़ा। खानखानाँ को अधिकार था कि वह शेख को जहाँ चाहें, वहाँ भेज दें; और जब वे बुला भेजें, तब शेख चले आवें। यदि खानखानाँ चाहें तो शेख की जगह किसी और को भी भेज दें। शेख साहब लश्कर में बैठे मुड़ मुड़कर मुँह देखा करें और जला करें! जब किसी विकट समस्या पर विचार होने लगता था और लोगों से परामर्श लिया जाता था, तब कभी तो शेख की सम्मति ठीक समझी जाती थी और कभी रद्द हो जाती थी। शेख मन ही मन बहुत दुःखी होते थे। पहले वे जिस कलम से खानखानाँ पर अपने प्राण निछावर करते थे, अब उसी कलम से वे उनके सम्बन्ध में बादशाह को ऐसी-ऐसी बातें लिखते थे जो हम शैतान के सम्बन्ध में भी नहीं लिख सकते। परन्तु धन्य है शेख की प्रकृति की शोखी कि उसमें भी उसने ऐसे-ऐसे काँटे चुभाए हैं जिन पर हजारों फूल निछावर हो जायँ।

यह संसार भी बड़े-बड़े अद्भुत कार्य कर दिखलाता है। जो मित्र आपस में सदा प्रेमी और प्रिय बने रहते थे, उन्हें आपस में कैसा लड़ा दिया! अब यह अवस्था हो गई थी कि एक दूसरे पर कपट के प्रहार करता था और उसके लिये अपने मन में अभिमान करता था। पर यह भी ध्यानपूर्वक देखना चाहिए

कि ये लोग किस प्रकार चलते थे। इसमें सन्देह नहीं कि शेख भी बुद्धिमत्ता के पर्वत और युक्ति के सागर थे और खानखानाँ उनके आगे पाठशाला में पढ़नेवाले लड़के थे; पर फिर भी आफत के टुकड़े थे। इनकी युवावस्था की बारीक बातें और छोटी-छोटी चालें भी ऐसी होती थीं कि शेख की कुशाग्र-बुद्धि सोचती ही रह जाती थी।

पाठक भी अपने मन में यह बात अवश्य सोचते होंगे कि क्या कारण था कि पहले तो इन दोनों आदमियों में इतना अधिक प्रेम था और अब आपस में इस प्रकार कैसे शत्रुता हो गई। कहाँ तो प्रेम का वह आवेश था, और कहाँ यह विरसता आ गई!

मेरे मित्रो, बात यह है कि पहले दोनों की उन्नति के दो अलग-अलग मार्ग थे। एक तो अमीरी और सेनापतित्व के दरजे में ऊपर चढ़ना चाहता था। बादशाह की मुसाहिबी और उसकी सेवा में उपस्थिति उसकी आरम्भिक सीढ़ियाँ थीं। दूसरा विद्या, पांडित्य, ग्रन्थ-रचना, गद्य, पद्य, परामर्श और मुसाहिबी के पदों को ही अपनी प्रतिष्ठा और सेवा समझनेवाला था। अमीरी अधिकारों को इन सब बातों का एक आवश्यक अंग समझो। प्रत्येक दशा में एक दूसरे के काम के सहायक थे, क्योंकि एक की उन्नति दूसरे की उन्नति में बाधक नहीं होती थी। अब दोनों एक ही उद्देश्य के साधक और इच्छुक हो गए। इसलिये पहले इन दोनों में जो मित्रता थी, वह अब प्रतिद्वन्द्विता के रूप में परिणत हो गई थी।

ये तो तीन सौ बरस की पुरानी बातें हैं, जिनके लिये हम

अँधेरे में अनुमान के तीर फेंकते हैं। कलेजा तो उस समय खून होता है, जब मैं अपने ही समय में देखता हूँ कि दो आदमी बरसों के साथी और बाल्यावस्था के मित्र थे। दोनों ने एक ही विद्यालय में साथ-साथ शिक्षा पाई थी। दोनों अलग-अलग क्षेत्रों में चल रहे थे। उस समय दोनों एक दूसरे का बाहु-बल थे। एक दूसरे का हाथ पकड़कर उसे उन्नति के मार्ग पर ले चलते थे। संयोग से दोनों के घोड़े एक ही घुड़दौड़ के मैदान में आ पड़े। अब पहला तुरन्त दूसरे को गिराने के लिये उद्यत हो गया।

अकबर के लिये यह अवसर बहुत कठिन था। दोनों ही उस पर प्राण निछावर करनेवाले थे, दोनों ही उसके नेत्र थे, और दोनों को अपने-अपने स्थान पर दावा था। धन्य है वह बादशाह जो दोनों को दोनों हाथों में खेलाता रहा और उनसे अपना काम लेता रहा। उसने एक के हाथ से दूसरे को गिरने नहीं दिया।

शेख ने अपने पत्र में हृदय के जो धूएँ निकाले हैं, वे वाक्य नहीं हैं। उसने जले हुए कबाबों को चटनी में डुबाकर भेज दिया है। उनसे यह भी पता चलता है कि उसमें हास्य-प्रियता और विनोद की मात्रा कितनी थी। और यह भी पता चलता है कि ये लोग परिहास का कितना नमक-मिर्च और विनोद का कितना गरम मसाला छिड़कते थे। वही अकबर को अच्छा लगता था और उसी के चटखारों में इन लोगों का काम निकल जाता था। मैंने शेख के कुछ निवेदन-पत्र उसके वर्णन के अन्त में दे दिए हैं। खानखानाँ ने भी खूब-खूब गुल और फूल कतरे होंगे। परन्तु दुःख है कि वे मेरे हाथ नहीं आए।

ये रगड़े-झगड़े इसी प्रकार चले जा रहे थे। सन् १००९

हि० में खानखानाँ की युक्ति और चातुरी ने तिलंगाना देश में अपनी विजयों का झंडा जा गाड़ा। सन् १०११ हि० में शेख जी बुलवाए गए; पर दुःख है कि वे मार्ग में से ही परलोक सिधारे। खानखानाँ ने इधर कई बरसों के बीच में दक्खिन का बहुत कुछ अंश जीत लिया था। जब वे वहाँ की व्यवस्था करके निश्चिन्त हुए, तब वे भी सन् १०१२ हि० में दरबार में बुलवाए गए। इस पर बुरहानपुर, अहमदनगर और बरार का देश शाहजादे के नाम हुआ और खानखानाँ को उनके शिक्षक का पद मिला।

सन् १०१३ हि० में इन पर बड़ी भारी विपत्ति आई। शाहजादे को बहुत दिनों से मद्य-पान की बुरी लत लगी हुई थी। भाई की मृत्यु ने भी उसे तनिक सचेत नहीं किया। पिता की ओर से उसको भी और खानखानाँ को भी बराबर ताकीदें होती रहती थीं। पर किसी का कुछ भी फल नहीं होता था।

शाहजादे की दुर्बलता सीमा से बहुत बढ़ गई थी। यहाँ तक कि उसकी जान पर नौबत आ पहुँची। खानखानाँ और अब्बुल-हसन को बादशाह ने इसलिये भेजा कि ये लोग जाकर उसका मद्य-पान रोकें और उसकी इससे रक्षा करें। पर शाहजादे की यह दशा थी कि जरा तबीयत ठीक हुई और फिर पी गया। जब बहुत अधिक बन्दिश हुई और यह प्रबन्ध हुआ कि शराब किसी प्रकार उसके पास पहुँचने ही न पावे, तब उसने एक और ढंग निकाला। वह शिकार का बहाना करके निकल जाता था और वहाँ शराब पीता था। यदि वहाँ भी शीशा नहीं पहुँच सकता था, तो करावल धन के लोभ से कभी बन्दूक की नली में, कभी हिरन और कभी बकरी की अँतड़ी में भरते और पगड़ियों

के पेंच में लपेटकर ले जाते थे। बन्दूक की नली में भरी हुई शराब में बारूद का धूआँ और लोहे की मैल भी कटकर मिल जाती थी; इसलिये वह विष का काम कर गई। संक्षेप यह कि तेंतिस बरस छः महीने की अवस्था में ही वह काल-कवलित हो गया। भला इस शोक का वर्णन कलम कहाँ तक कर सकती है! हाँ, खानखानाँ के हृदय से पूछना चाहिए। दुःख जाना बेगम का है। इसके विषय की कुछ बातें खानखानाँ की सन्तान के वर्णन में दी गई हैं। वह बहुत ही सच्चरित्रा, बहुत बड़ी बुद्धिमती और सुयोग्य स्त्री थी। दुःख है कि ठीक युवावस्था में रँड़ापे की सफेद चादर उसके सिर पर डाली गई। इस दुर्घटना ने उसे ऐसा दुःखी किया, जैसा दुःखी और कोई दुर्घटना बहुत ही कम करती है।

जब जहाँगीर का शासन काल आरम्भ हुआ, तब खानखानाँ दक्खिन में थे। सन् १०१६ हि० में जहाँगीर स्वयं अपनी तुजुक में लिखता है कि खानखानाँ बड़ी कामना से लिख रहा था और सेवा में उपस्थित होने की इच्छा प्रकट करता था। मैंने आज्ञा दे दी। बाल्यावस्था में वह मेरा शिक्षक रह चुका था। बुरहानपुर से चलकर आया। जब सामने उपस्थित हुआ, तब उस पर इतनी अधिक उत्सुकता और प्रसन्नता छाई हुई थी कि उसे इतनी भी खबर नहीं थी कि वह सिर से चलकर आया है या पैर से चलकर आया है। वह बहुत ही विकल होकर मेरे पैरों पर गिर पड़ा। मैंने भी अनुग्रह और प्रेमपूर्वक हाथ से उसका सिर उठाकर उसे गले से लगाया और उसका मुँह चूमा। उसने मोतियों की दो सुमरनियाँ और कुछ लाल तथा पन्ने भेंट किए। सब मिलाकर तीन लाख रुपए के थे। इसके सिवा उसने और

भी बहुत से पदार्थ उपहार स्वरूप सेवा में उपस्थित किए। आगे चलकर एक और स्थान पर जहाँगीर लिखता है कि ईरान के बादशाह शाह अब्बास ने जो घोड़े भेजे थे, उनमें से एक समन्द घोड़ा मैंने उसे दिया। वह इतना प्रसन्न हुआ कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता। वास्तव में इतना लम्बा और ऊँचा घोड़ा, और वह भी इतने अधिक गुणों और विशेषताओं से युक्त, आज तक कभी भारतवर्ष में नहीं आया था। मैंने उसे फ़ुतूह नामक हाथी भी दिया था, जो लड़ाई में अपना जोड़ नहीं रखता। साथ ही बीस और हाथी भी उसे प्रदान किए थे। कुछ दिनों के बाद खिलअत, कमर में लगाने की जड़ाऊ तलवार और खासे का हाथी भी प्रदान किया गया। अब ये दक्खिन जाने के लिये बिदा हुए और यह करार कर गए कि दो बरस के अन्दर मैं वह सारा देश जीत दूँगा। पर हाँ, मेरे पास पहले से जो सेना है, उसके अतिरिक्त बारह हजार सवार और दस लाख रुपयों का खजाना मुझे और प्रदान किया जाय। इसी अवसर पर खाफीखाँ लिखते हैं कि खानखानाँ पहले दीवान थे। पर अब उन्हें वजीर-उल्मुल्क की उपाधि प्रदान की गई; और पंज-हजारी पंज हजार का मन्सब प्रदान करके दक्खिन का काम पूरा करने के लिये भेजे गए। बीस हजार सवार और कई प्रसिद्ध अमीर उनके साथ कर दिए गए। और जो कुछ पुरस्कार आदि मिले, उनका विवरण कहाँ तक दिया जाय।

खानखानाँ के प्रताप का सितारा उसकी उमर के साथ प्रतिष्ठा-पूर्वक ढलता जाता था। वह दक्खिन की लड़ाइयों में लगा हुआ था। सन् १०१७ हि० में जहाँगीर ने शाहजादा परवेज

को दो लाख रुपयों का खजाना, बहुत से बहुमूल्य रत्न, दस हाथी और खासे के तीन सौ घोड़े प्रदान किए और सैयद सैफखाँ बारहा को उसका शिक्षक नियुक्त करके लश्कर साथ कर दिया; और आज्ञा दी कि खानखानाँ की सहायता करने के लिये जाओ। वहाँ फिर वही दशा हुई जो मुराद के समय हुई थी। बुड्ढे सेनापति की बुद्धि भी बुड्ढी थी। इधर नवयुवकों के दिमाग में नई रोशनी थी। दोनों की प्रकृति अनुकूल नहीं पड़ी। काम बिगड़ने लगे। ठीक वर्षा ऋतु में चढ़ाई कर दी गई। और वर्षा भी इतनी अधिक हुई, जो बिलकुल प्रलय का ही दृश्य दिखलाती थी। उस वर्षा के साथ ही साथ विपत्तियाँ, हानियाँ, खराबियाँ और लज्जा आदि भी खूब बरसी। परिणाम यह हुआ कि जिस खानखानाँ ने आज तक कभी पराजय का नाम भी नहीं जाना था, वही तिरसठ वर्ष की अवस्था में पराजित हुआ। वह दुर्दशाग्रस्त, वृद्धावस्था का भार और अप्रतिष्ठा की सामग्री लादकर उसे घसीटता हुआ बुरहानपुर में पहुँचा। वही अहमदनगर, जिसे उसने गोले मारकर जीता था, इस बार उसके हाथ से निकल गया; और तमाशा यह कि शाहजादा परवेज ने अपने पिता को लिखा कि जो कुछ हुआ, वह सब खानखानाँ की स्वेच्छाचारिता और पारस्परिक राग-द्वेष से हुआ। या तो हुजूर मुझे बुला लें और या उन्हें बुला लें। उधर खानखानाँ ने यह इकरार लिख भेजा कि यह सेवक इस युद्ध का सारा उत्तरदायित्व अपने सिर लेता है। मुझे तीन हजार सवार और मिलें। इस समय बादशाह का जो देश शत्रु के अधिकार में चला गया है, वह यदि मैं दो वर्ष के अन्दर न ले लूँ, तो फिर कभी हुजूर के सामने

मुँह न दिखलाऊँगा। अन्त में सन् १०१८ हि० में खानखानाँ बुला लिए गए।

सन् १०२० हि० में कन्नौज और काल्पी आदि का प्रान्त खानखानाँ और उसकी सन्तान को जागीर के रूप में प्रदान किया गया।

जब सन् १०२१ हि० में यह पता चला कि दक्खिन में शाहजादे का लश्कर और उसके सब अमीर इधर उधर मारे-मारे फिरते हैं और सब काम बिलकुल बिगड़ चुका है, तब जहाँगीर को फिर अपना पुराना सेनापति याद आया। दरबार के अमीरों ने भी कहा कि दक्खिन के झगड़ों को जैसा खानखानाँ समझता है, वैसा और कोई नहीं समझता। उसी को वहाँ भेजना चाहिए। ये फिर दरबार में उपस्थित हुए। छः हजारी मन्सब, बहुत बढ़िया खिलअत, जड़ाऊ तलवार, खासे का हाथी और ईरानी घोड़ा उन्हें प्रदान हुआ। शाहनवाजखाँ को तीन हजारी जात और सवार का मन्सब, खिलअत और घोड़े आदि दिए गए। दाराब को पाँच सौ का जाती या व्यक्तिगत मन्सब और तीन सौ सवार बढ़ाए गए। अर्थात् कुल दो हजारी जात का मन्सब और पन्द्रह सौ सवार और खिलअत आदि दी गई। इस प्रकार उसके सभी बड़े-बड़े साथियों को खिलअतें और घोड़े प्रदान किए गए और वे ख्वाजा अब्बुलहसन के साथ बिदा हुए।

सन् १०२४ हि० में उसके लड़के भी बहुत योग्य हो गए। अब पिता को दरबार से देश मिलता था। वह बैठा हुआ वहाँ की व्यवस्था करता था; और उसके लड़के देशों पर विजय प्राप्त करते फिरते थे। शाहनवाजखाँ बालापुर में था। अम्बर की ओर

से कई सरदार आकर उसके साथ मिल गए। उसने बधाइयों के बाजे बजवाए। बहुत मुरव्वत और हौसले से उनका आदर-सत्कार किया। प्रत्येक सरदार की योग्यता और पद आदि के अनुसार उन्हें नगद धन, सामग्री, घोड़े और हाथी आदि दिए। तोपख़ाने का लश्कर रकाब में तैयार था। उन्हीं लोगों के परामर्श से वह सेना लेकर अम्बर की ओर चला। अम्बर के सरदार सिपाही गाँवों में माल की तहसील करने के लिये फैले हुए थे। वे लोग सुनकर गाँव-गाँव से दौड़ पड़े और टिड्डियों की तरह उमड़ आए। अभी यह वहाँ तक पहुँचा भी नहीं था कि शत्रु के सहलदारखाँ, याक़ूतखाँ, दानिशखाँ, दिलावरखाँ आदि कई अमीर और सरदार सेना लेकर आ पहुँचे। मार्ग में ही दोनों पक्षों का सामना हो गया। वे लोग भागे और बहुत ही बुरी अवस्था में अम्बर के पास पहुँचे।

अम्बर सुनकर जल गया। वह आदिलखानी और कुतुब-उल्मुल्की सेनाएँ लेकर बड़े जोरों के साथ आया। ये भी आगे बढ़े। जब दोनों लश्कर लड़ाई के पल्ले पर पहुँचे, तब वहाँ बीच में एक नाला पड़ता था। वहीं उन लोगों ने डेरे डाल दिए। दूसरे दिन परे बाँधकर युद्ध की तैयारी होने लगी। शत्रु के पक्ष में याक़ूतखाँ हब्शी था जो वहाँ के जंगलों का शेर था। सबसे पहले वही आगे बढ़ा और युद्ध-क्षेत्र उसने ऐसे स्थान पर रखा जहाँ नाले की चौड़ाई कम थी। लेकिन किनारों पर दूर-दूर तक दलदल थी। इसी लिये उसने तीरन्दाजों और बानदारों को घाटों पर बैठाकर मार्ग रोक लिया था। पहर भर दिन बाकी था। युद्ध आरम्भ हुआ। पहले तोपें और बान ऐसे जोरों के साथ

चले कि जमीन और आसमान दोनों में अँधेरा छा गया। अम्बर के विश्वसनीय दास हरावल में थे। वे घोड़े उठाकर आए। नाले के इस पार से अकबरी तुर्क भी तीर चला रहे थे। शत्रु पक्ष के जो लोग साहस करके आगे आते थे, उनके घोड़ों को ही ये लोग उलटाकर गिरा देते थे। उनमें से बहुत से लोग दलदल में भी फँस जाते थे। जब अम्बर ने अपने सैनिकों की यह दशा देखी, तब उसकी प्रसिद्ध वीरता ने उसे कोयले की तरह लाल कर दिया। वह चमक कर बादशाही लश्कर पर आया। दाराब अपने हरावल को लेकर हवा की तरह पानी पर से निकल गया। इधर उधर से और सेनाएँ भी आगे बढ़ीं। यह ऐसी कड़क-दमक से गया कि शत्रु की सेना को उलटता-पुलटता उसके मध्य भाग में जा पहुँचा, जहाँ स्वयं अम्बर खड़ा हुआ था। अब गुथकर लड़ाई होने लगी। बहुत देर तक मार-काट होती रही। परिणाम यह हुआ कि अम्बर तलवार की आँच खाकर अम्बर की तरह ही उड़ गया। अकबरी वीर तीन कोस तक मारा-मार चले गए। जब अँधेरा हो गया, तब उन लोगों ने भगोड़ों का पीछा छोड़ दिया। उस दिन ऐसा भारी रण पड़ा था कि देखनेवाले चकित थे।

सन् १०२५ हि० में जहाँगीर ने शाहजादा खुर्रम को शाहजहान बनाकर बिदा किया। साथ ही उसे शाह की भी उपाधि प्रदान की गई थी। तैमूर के शासन काल से आज तक किसी शाहजादे को यह उपाधि प्रदत्त नहीं हुई थी। सन् १०२६ हि० में जहाँगीर ने स्वयं भी मालवे में जाकर छावनी डाली। शाहजहाँ ने बुरहानपुर में जाकर डेरा डाला। वहाँ से चतुर और बुद्धिमान् लोगों को आस-पास के अमीरों के यहाँ भेजकर उन्हें अपने अनुकूल किया।

जब सन् १०२६ हि० में शाहज़ादा शाहजहान की सुव्यवस्था के कारण दक्खिन का सब प्रकार से सन्तोषजनक प्रबन्ध हो गया, तब जहाँगीर को फिर अपने पूर्वजों के देश का ध्यान आया। ईरान के शाह ने कन्धार ले लिया था। जहाँगीर ने सोचा कि पहले ईरान पर ही अधिकार करना चाहिए। खान्देश, बरार और अहमदनगर का इलाक़ा शाहजहान को प्रदत्त हुआ। जहाँगीर का यह लड़का बहुत ही आज्ञाकारी, सुयोग्य और सुशील था, इसलिए वह उससे बहुत अधिक प्रेम रखता था। उसने राजपूताने और दक्खिन में बहुत अच्छी-अच्छी लड़ाइयाँ जीती थीं। विशेषतः राणावाली लड़ाई उसने बहुत ही सफलता-पूर्वक जीती थी। इससे जहाँगीर उस पर बहुत अधिक प्रसन्न हुआ था। वह यह भी जानता था कि शाहजहान बहुत प्रतापी है और जहाँ जाता है, वहीं विजय प्राप्त करता है। इसी लिये शाहजहान दरबार में बुलाया गया। लोगों से परामर्श करने पर यह निश्चय हुआ कि शाहजहान को दरबार में बैठने के लिये स्थान दिया जाय। सन्दली (कुर्सी) का स्थान बादशाह की दाहिनी ओर निश्चित हुआ। बादशाह ने झरोखे में बैठ कर लश्कर का निरीक्षण किया। जब वह सेवा में उपस्थित हुआ, तब बादशाह प्रेम के वश होकर आप ही झरोखे से नीचे उतर आए और लड़के को गले से लगाया। जवाहिरात निछावर होते हुए आए। खानखानाँ के लड़कों ने दक्खिन में ऐसे-ऐसे बड़े काम कर दिखलाए जिनके कारण वंश की कीर्ति फिर से हरी-भरी और उज्वल हो गई। उन्हीं दिनों बादशाह ने खानखानाँ की पोती और शाहनवाज की लड़की का विवाह शाहजहान से कर दिया।

जरवफ्त की बहुत बढ़िया चार-कुबवाली (जिसमें मोतियों की झालर लगी थी) खिलअत, जड़ाऊ कमरबन्द और तलवार और जड़ाऊ कटार आदि परतले सहित प्रदान की गई।

सन् १०२७ हि० में जहाँगीर अपनी तुजुक में लिखते हैं कि जान निछावर करनेवाले मेरे शिक्षक और सेनापति खानखानाँ ने अपने लड़के अमरउल्ला की अधीनता में एक बहुत बड़ी सेना गोंडवाने की ओर भेजी थी। इसमें उसका उद्देश्य यह था कि वहाँ हीरे की जो खान है, उस पर अधिकार कर लिया जाय। अब उसका निवेदन-पत्र आया कि वहाँ के जमींदार ने वह खान हुजूर को भेंट कर दी है। उस खान का हीरा असली और बहुत उत्तम होता है और जौहरियों में बहुत विश्वसनीय होता है; और सभी हीरे देखने में बहुत सुन्दर और आबदार होते हैं।

इसी सन् में जहाँगीर ने यह भी लिखा है कि जान निछावर करनेवाले मेरे शिक्षक ने मेरी सेवा में उपस्थित होने का सौभाग्य प्राप्त किया। वह बहुत दिनों से हुजूर से दूर था। जिस समय विजयी लश्कर खान्देश और बुरहानपुर से होकर जा रहा था, उस समय उसने सेवा में उपस्थित होने के लिये प्रार्थना की थी। आज्ञा हुई थी कि यदि सब ओर से तुम निश्चिन्त हो तो बिना लश्कर को लिए अकेले ही चले आओ। जहाँ तक शीघ्र हो सकता था, वह आकर सेवा में उपस्थित हुआ। अनेक प्रकार के राजोचित अनुग्रहों तथा कृपाओं से वह सन्मानित हुआ। हजार मोहर और हजार रुपया नजर करवाया। कई दिन के बाद फिर लिखता है कि मैंने एक समन्द घोड़े का नाम सुमेर रखा था। वह मेरे खासे के घोड़ों में प्रथम श्रेणी का घोड़ा था।

यह मैंने खानखानाँ को प्रदान किया। भारतवासी सुमेर सोने के पहाड़ को कहते हैं। मैंने उसके रंग और आकार की विशालता के कारण उसका यह नाम रखा था। फिर लिखते हैं कि मैं पोस्तीन पहने हुए था। वही मैंने खानखानाँ को प्रदान कर दिया। फिर कई दिन बाद लिखते हैं कि आज खानखानाँ को खासे की खिलअत, कमरबन्द सहित जड़ाऊ तलवार, सुनहली झूल और सुनहले सामान के साथ खासे का हाथी और हथिनी प्रदान करके फिर खान्देश के सूबे और दक्खिन की सनद प्रदान की। सात हजारी जात और सात हजार सवार, असल और वृद्धि के सहित, मन्सब प्रदान किया। अमीरों में से किसी को अभी तक यह मन्सब नहीं मिला था। लश्करखाँ दीवान से उसका साथ ठीक नहीं बैठता था। उसकी प्रार्थना के अनुसार हामिदखाँ को उसके साथ कर दिया। उसे भी हजारी जात का मन्सब, चार सौ सवार और हाथी तथा खिलअत प्रदान की गई।

आजाद कहता है कि इस संसार के लोग धनवान् होने की कामना में मरे जाते हैं। वे यह नहीं समझते कि धन क्या चीज़ है। सब से बड़ा धन तो स्वास्थ्य है। सन्तान भी एक धन है। विद्या और गुण भी एक धन है। अधिकार और अमीरी भी एक धन है। इसी प्रकार और भी बहुत से धन हैं। उन्हीं में से एक धन नगद और सम्पत्ति भी है। इन सबके साथ सब प्रकार की निश्चिन्तता और हृदय की शान्ति भी एक धन है। इस संसार में ऐसे लोग बहुत ही कम होंगे, जिन्हें यह बेदर्द जमाना सारे धन एक साथ ही दे। और फिर उनमें से कोई

धन किसी समय दगा न दे जाय। यह दुष्ट एक ही ऐसा दाग या दुःख देता है जिससे सभी धन मिट्टी हो जाते हैं। इस दुष्ट ने खानखानाँ के साथ भी ऐसा ही किया। सन् १०२८ हिजरी में उसने खानखानाँ को पुत्र-शोक दिया। पुत्र भी नवयुवक ही था। देखनेवालों के कलेजे काँप गए। जरा उसके हृदय को कोई देखे कि उसकी क्या दशा हुई होगी। वही मिरजा ऐरज, जिसकी योग्यता ने अकबर से बहादुर की उपाधि ली थी, जिसके प्रयत्नों और कठोर परिश्रमों ने जहाँगीर से शाहनवाजखाँ की उपाधि प्राप्त की थी और जिसे सब लोग कहते थे कि यह दूसरा खानखानाँ है, वही ठीक युवावस्था में शराब के पीछे अपने प्राण गँवा बैठा।

दूसरे ही वर्ष खानखानाँ को इसी प्रकार का दूसरा शोक हुआ। यह पुत्र यद्यपि ज्वर के प्रकोप से मरा था, तथापि सेवा करने के आवेश में वह उचित सीमा का उल्लंघन कर गया था। तो भी उसे जो कुछ सेवा करनी चाहिए थी, वह सब कर गया। (देखो खानखानाँ की सन्तान का वर्णन)

एक बार किसी कवि के पास कोई आदमी आया था। उसने आँखों में आँसू भर कर कहा कि मेरा लड़का मर गया है। आप उसके मरने की तारीख कह दीजिए। उस प्रकाशमान मस्तिष्कवाले कवि ने उसी समय सोच कर कहा—"दागे जिगर"। इससे सन् १०२८ हि० निकलता है। दूसरे वर्ष वही जले हुए हृदयवाला फिर आया और बोला कि हजरत, तारीख लिख दीजिए। कवि ने कहा कि अभी थोड़े ही दिन हुए, तुम तारीख लिखाकर ले गए थे। उसने कहा कि हज़रत एक और लड़का

था; वह भी मर गया। कवि ने कहा अच्छा—"दागे दिगर" (अर्थात् दूसरा दाग या शोक)। इससे सन् १०२९ हि० निकलता है। जहाँगीर ने ये दोनों घटनाएँ अपनी तुजुक में लिखी हैं। इसके एक एक अक्षर से शोक दमकता है। (देखो परिशिष्ट)

खानखानाँ का भाग्य-नक्षत्र अस्त होता है

दुःख है कि जिस खानखानाँ ने अपना सारा जीवन आनन्द की वसन्त ऋतु के फूल के रूप में बिताया था, उसी के लिये वृद्धावस्था में ऐसा समय आया कि संसार की दुर्घटनाएँ उस पर वगूले बाँध-बाँध कर आक्रमण करने लगीं। सन् १०२८ हि० में ऐरज मरा था। दूसरे वर्ष रहमानदाद मर गया। तीसरे वर्ष तो विपत्तियों ने ऐसा नहूसत का छापा मारा कि उसका प्रताप मैदान छोड़ कर भाग गया। और इस बार ऐसा भागा कि फिर उसने पीछे की ओर मुड़ कर भी न देखा। मेरे मित्रो, यह संसार बहुत ही बुरा स्थान है। बेमुरव्वत संसार यहाँ मनुष्य को कभी किसी ऐसे अवसर पर ला डालता है कि उसे केवल दो ही पक्ष दिखाई पड़ते हैं और दोनों में भय रहता है। और परिणाम तो केवल ईश्वर ही जानता है। बुद्धि कुछ काम नहीं करती कि क्या करना चाहिए। पाँसा भाग्य के हाथ में होता है। वही उसे जिस ओर चाहे, पलट दे। यदि सीधा पड़ गया तो आदमी बड़ा बुद्धिमान् है। और यदि उलटा पड़ा तो छोटे-छोटे बालक तक मूर्ख ठहराते हैं। और जो हानि, लज्जा, विपत्ति और दुःख उसे उठाना पड़ता है, वह तो उसका हृदय ही जानता है। पहले यह बात सुन लो कि जहाँगीर का लड़का शाहजहान इतना अधिक

सुयोग्य और आज्ञाकारी तथा सुशील था कि अपनी तलवार और कलम की बदौलत सभी से अपनी योग्यता और गुणों की प्रशंसा कराता था। इन सब बातों के अतिरिक्त वह भाग्यवान् और प्रतापी भी था। जहाँगीर भी उसके किए हुए अच्छे-अच्छे काम देख कर मारे प्रसन्नता के फूला नहीं समाता था। और इसी लिये वह उसी को अपना उत्तराधिकारी बनाने के योग्य समझता था। उसे उसने शाहजहान की उपाधि दी थी और बादशाहों के योग्य पद दिए थे। उसके नौकरों को भी उसने बहुत ऊँचे ऊँचे मन्सब या पद दिए थे। अकबर भी जब तक जीता रहा, तब तक उसे सदा अपने पास रखता था। और उसके सम्बन्ध में ऐसी ऐसी बातें कहता था, जिनसे बहुत बड़ी बड़ी आशाएँ होती थीं। अपने व्यक्तिगत गुण और सेवाएँ आदि जो उसके पास थीं, वह तो थीं ही। इसके सिवा खानखानाँ जैसा अमीर उसका ददिया ससुर था; और आसफखाँ वजीर-कुल उसका ससुर था।

नूरजहाँ बेगम का हाल भी सब लोग जानते ही हैं कि वह सारे साम्राज्य की स्वामिनी थी। केवल खुतबे में बेगम का नाम नहीं था। पर सिक्कों पर छाप और आज्ञा-पत्रों पर मोहर भी बेगम की ही होती थी। वह भी बहुत अधिक दूरदर्शी और बुद्धिमती थी और अच्छी-अच्छी युक्तियाँ सोचती थी। जब उसने देखा कि जहाँगीर की मस्ती और मद सरीखे रोग उस पर हाथ डालने लगे हैं, तो वह ऐसी युक्तियाँ सोचने लगी कि जहाँ-गीर के शासन में भी अन्तर न आने पावे। उसके पहले पति शेर अफगनखाँ से उसकी एक कन्या थी। सन १०३० हि० में

उसने उस कन्या का विवाह शाहज़ादा शहरयार के साथ कर दिया। इस प्रकार वह उसके साम्राज्य की नींव डालने लगी। इसमें मुख्य उद्देश्य यह था कि शाहजहान की जड़ उखाड़ दे। परन्तु शहरयार जहाँगीर के सब लड़कों में छोटा था। वह स्वभाव से बहुत रसिक और ऐयाश था, इसलिये उसके विचार आदि निम्न कोटि के होते थे। जो कुछ उसमें रही सही बात थी, वह भी उसकी सास की बादशाही ने गँवा दी थी।

सन् १०३१ हि० में शाहजहान इसलिए दरबार में बुलाए गए कि कन्धार की चढ़ाई पर जायँ और अपने पूर्वजों के देश को अपने अधिकार में करें। वह खानखानाँ और दाराब को अपने साथ लेकर दरबार में उपस्थित हुए। बहुत कुछ परामर्श और मन्त्रणा आदि होने पर यही निश्चय हुआ कि यह लड़ाई और चढ़ाई उन्हीं के नाम पर रखी जाय।

परन्तु विधि ने कुछ और ही शतरंज बिछाई। बाजी यहाँ से आरम्भ हुई कि शाहजहान ने अपने पिता से धौलपुर का इलाका माँग लिया। बेगम ने पहले से वही इलाका शहरयार के लिये माँग रखा था; और शहरयार की ओर से शरीफउल्मुल्क वहाँ का हाकिम था। शाहजहान के सेवक वहाँ अपना अधिकार करने के लिये गए। संक्षेप यह कि वहाँ दोनों पक्षों के अमीरों में तलवारें चल गईं। उसी लड़ाई में शरीफ उल्मुल्क की आँख में एक ऐसा तीर लगा कि वह काना हो गया। यह दशा देख कर शहरयार का सारा लश्कर मारे क्रोध के आपे से बाहर हो गया और वहाँ बड़ी भारी लड़ाई हो गई।

शाहजहान ने अपने दीवान अफजलखाँ को वहाँ भेजा और

बहुत ही नम्रतापूर्वक जबानी सँदेसे भेजे और निवेदन-पत्र लिख कर अपना अपराध क्षमा कराने के लिये प्रार्थनी की। वह चाहता था कि किसी प्रकार यह आग बुझ जाय। परन्तु उधर बेगम तो आग और कोयला हो रही थी। यहाँ आते ही अफजलखाँ कैद हो गया। साथ ही बेगम ने बहुत कुछ लगा-बुझाकर बादशाह से कहा कि शाहजहान का दिमाग बहुत चढ़ गया है। उसे कुछ ऐसा दंड देना चाहिए जिससे उसे वास्तव में शिक्षा मिले। उस मस्त बादशाह ने अपनी मस्ती की दशा में ईश्वर जाने कुछ हूँ हाँ कर दी होगी। तुरन्त सेना के पास तैयार होने के लिये आज्ञा पहुँची और अमीरों को आज्ञा मिल गई कि शाहजहान को जाकर पकड़ लाओ।

इधर थोड़े ही दिन हुए थे कि ईरान के शाह ने कन्धार पर अधिकार कर लिया था। वह चढ़ाई और लड़ाई भी शाहजहान के ही नाम रखी गई थी। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यदि वह वीर और योग्य शाहजादा अपनी सारी सेना और सामग्री के साथ जाता, तो कन्धार के सिवा समरकन्द और बुखारा तक अपनी तलवार की चमक पहुँचाता। वह चढ़ाई भी बेगम ने शहरयार के नाम करा ली। बारह हजारी जात और आठ हजारी सवार का मन्सब दिलाया। वह जहाँगीर को भी लाहौर में ले आई। यहाँ आकर शहरयार अपना लश्कर तैयार करने लगा। शाहजहान के दिल पर चोटें पड़ रही थीं, पर वह बिलकुल चुप था। बड़े-बड़े विश्वसनीय और अमीर सरदार इस अभियोग में कैद कर लिए गए कि ये शाहजहान के साथ मिले हुए हैं। बहुत से लोग जान से भी मारे गए। आसफखाँ बेगम का सगा

आई था। पर उसका भी विश्वास केवल इस कारण जाता रहा कि उसकी लड़की शाहजहान की प्रिय बेगम थी। तात्पर्य यह कि बेगम ने यहाँ तक आग लगाई कि अन्त में शाहजहान सरीखा सुशील, आज्ञाकारी और प्रतापी पुत्र भी अपने पिता का विद्रोही हो गया। पर इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि वह बिलकुल विवश होकर विद्रोही हुआ था।

बेगम भी जोड़ तोड़ की बादशाह थी। वह जानती थी कि आसफखाँ से महाबतखाँ की लाग-डाँट है। उसने बादशाह से कहा कि जब तक महाबतखाँ सेनापति न होगा, तब तक इस चढ़ाई का ठीक-ठीक प्रबन्ध न होगा। उधर उसने काबुल से लिखा कि यदि शाहजहान से लड़ना है तो पहले आसफखाँ को निकालिए। जब तक वह दरबार में हैं, तब तक यह सेवक कुछ भी न कर सकेगा। इस पर आसफखाँ तुरन्त बंगाल भेज दिए गए, और महाबतखाँ सेनापति का झंडा फहराते हुए चल पड़े। पीछे-पीछे जहाँगीर भी लाहौर से आगरे की ओर चले। अमीरों की आपस में शत्रुता तो थी ही। अब उन्हें अच्छा अवसर हाथ आया। जिसका जिस पर वार चल गया, उसने उसी को दरबार से निकलवाया, कैद कराया और यहाँ तक कि मरवा भी डाला। षड्यन्त्र के अपराध के लिये प्रमाण की कोई आवश्यकता ही नहीं थी।

देखो वह पुराना बुड्ढा, जिसकी दो पीढ़ियाँ अनुभवों से भरी हुई थीं, निरा लोभी ही नहीं था, जो जरा-सा लाभ देख कर फिसल पड़ता। उसने दरबारी के हजारों ऊँच-नीच देखे थे। उसने अपनी बुद्धि लड़ाने में कुछ भी कमी नहीं की होगी। उसे

इस बात का अवश्य ध्यान हुआ होगा कि बादशाह की बुद्धि कुछ तो शराब ने खोई और जो रही सही थी, वह बेगम के प्रेम में चली गई। मैं इस साम्राज्य का पुराना सेवक और नमक खानेवाला हूँ, इसलिए इस समय मेरा क्या कर्त्तव्य है। उसके हृदय ने अवश्य पूछा होगा कि साम्राज्य का उत्तराधिकारी कौन है? शाहजहान! मतवाला पिता अपने साम्राज्य को बेगम के प्रेम पर निछावर करके अपने लड़के को नष्ट करना चाहता है। ऐसे अवसर पर साम्राज्य का नमक खानेवालों को यही उचित है कि साम्राज्य का पक्ष लें और उसके कल्याण के उपाय करें। उसके विवेक ने इस बात का निर्णय कर लिया होगा कि ऐसे समय शाहजहान से बिगड़ना, जहाँगीर का पक्ष लेना नहीं है, बल्कि बेगम का पक्ष लेना है। और ऐसा करने में पुरुषानुक्रम से चले आए हुए साम्राज्य को नष्ट करना है।

प्रश्न हो सकता है कि क्या खानखानाँ के लिये यह सम्भव नहीं था। जहाँगीर ने शाहजहान का विवाह शाहनवाजखाँ की कन्या के साथ किया था। और नूरजहाँ के भाई आसफखाँ की कन्या भी जहाँगीर को ही ब्याही हुई थी। इन सब सम्बन्धों का मुख्य उद्देश्य यही था कि यदि साम्राज्य के ऐसे स्तम्भ उसके साथ इस प्रकार का सम्बन्ध रखते होंगे, तो घर के झगड़े उसे उचित अधिकार से वंचित न रख सकेंगे। परन्तु भाग्य की बात है कि जिस बात के सम्बन्ध में जहाँगीर ने सोचा था कि यह मेरे मरने के बाद होगी, वह जीते जी ही उसके सामने आ गई।

जब शाहजहान ने अपने साथ के लिये कोई अमीर माँगा होगा, तो खानखानाँ ने अपने और जहाँगीरी सम्बन्धों का अवश्य

विचार किया होगा। बेगम के यहाँ तक भी उसकी पहुँच थी और वह भी उसी सम्प्रदाय का था, जिस सम्प्रदाय की बेगम थी। उसने यह भी समझा होगा कि पिता और पुत्र में तो कोई लड़ाई है ही नहीं। जो कुछ खटक है, वह सौतेली माता की है। पर यह कौन सी बड़ी बात है! मैं दोनों में सफाई और मेल करा दूँगा। और इसमें कोई सन्देह नहीं कि वह ऐसा कर सकता था। परन्तु ज्यों-ज्यों वह आगे बढ़ता गया, त्यों-त्यों रंग बेढंग देखता गया। उसने यह भी देख लिया था कि जिस खान आजम का अकबर भी लिहाज करता था, उसे भी ग्वालियर के किले में कैद रहना पड़ा था। ऐसे विकट अवसर पर उसे स्वयं अपने लिए भला क्या भरोसा हो सकता था!

खानखानाँ के बहुत पुराने और विश्वसनीय सेवक मुहम्मद मासूम ने जहाँगीर के पास गुप्त रूप से यह समाचार पहुँचाया कि खानाखानाँ अन्दर ही अन्दर दक्खिन के अमीरों के साथ मिला हुआ है। (मलिक अम्बर ने खानखानाँ के नाम जो पत्र भेजे थे, वे लखनऊवाले शेख अब्दुलसलाम के पास हैं।) जहाँगीर ने महाबतखाँ को आज्ञा दी। उसने शेख को गिरिफ्तार कर लिया। जब उससे पूछा गया, तब उसने साफ इन्कार कर दिया। उस बेचारे पर बहुत अधिक मार पड़ी, पर उसने कुछ भी न बतलाया। ईश्वर जाने कि उसके पास कुछ था भी या नहीं था। या उसने जान बूझकर खानखानाँ का भेद छिपाया। जो हो, दोनों ही दशाओं में उसका कार्य बहुत प्रशंसनीय रहा।

खानखानाँ और दारा दक्खिन से शाहजहान के साथ आए। जहाँगीर को देखो कि कितना दुःखी होकर लिखता है कि जब

खानखानाँ जैसे अमीर ने, जो मेरे शिक्षक के श्रेष्ठ पद पर रहकर विशिष्टता प्राप्त कर चुका था, सत्तर वर्ष की अवस्था में विद्रोह और धर्मभ्रष्टता से अपना मुँह काला किया, तब यदि और लोग भी ऐसा ही करें, तो मुझे उनके सम्बन्ध में क्या शिकायत हो सकती है ! इसी प्रकार के विद्रोह और पापपूर्ण आचरण से उसके पिता ने जीवन के अन्तिम काल में मेरे पूज्य पिताजी के साथ अप्रिय और अनुचित व्यवहार किया था। उसने अपने पिता का अनुकरण करके इस अवस्था में अपने आपको सृष्टि के आदि से अन्त तक अभिशप्त और नष्ट किया।

बेगम ने शाहजादा मुराद को बहुत बड़ी सेना देकर अपने भाई के मुकाबले पर भेजा। महाबतखाँ को सेनापति नियत किया। वाह रे बेगम, तेरी बुद्धि और दूरदर्शिता। दोनों भाइयों में से चाहे जो मारा जाय, शहरयार के मार्ग का एक काँटा दूर हो जाय।

जब दोनों बड़े-बड़े लश्कर पास पहुँचे, तब एक-एक भाग दोनों पहाड़ों में से अलग होकर टकराया। बहुत अधिक मार-काट और रक्तपात हुआ। बड़े-बड़े अमीर मारे गए। बहुत से लज्जाशील अपने नाम और प्रतिष्ठा पर अपने प्राण निछावर करके बिना इस संसार का कुछ सुख भोगे ही परलोक सिधारे। शाहजहान की सेना पराजित हुई। वह अपने लश्कर को साथ लेकर किनारे हटा। वह दक्खिन की ओर जाना चाहता था। अब इस अवसर पर बुरे विचार और सन्देह या अच्छी नीयत का मुकाबला होता है। खानखानाँ या तो अपनी अच्छी नीयत के कारण दोनों पक्षों में मेल कराने की युक्ति कर रहा था और

या हद से ज्यादा चालाकी कर रहा था कि वह जहाँगीर के सामने भी बहुत अच्छा और निष्ठ बना रहना चाहता था, और सेनापति महावतखाँ के पास भी उसने सलाम और सँदेसे भेजे थे। यह बहुत ही विकट स्थान है। जरा देखो तो पिता और पुत्र का तो बिगाड़ है और वह भी सौतेली माता की स्वार्थपरता और मतवाले पिता की मत्तता के कारण। लश्कर के सरदार भी दिन रात एक ही जगह रहने-सहनेवाले ठहरे। एक ही थाल में भोजन करनेवाले और एक ही कटोरे में पानी पीनेवाले ठहरे। भला उनमें आपस के सँदेसे कैसे बन्द हो सकते थे! कठिनता यह उपस्थित हुई कि इस विषय में चतुर सेनापति की प्रतिभा-रूपी नदी ने लेखन-कौशल की लहर मारी। उसने अपने हाथ से एक पत्र लिखा और बादशाह की शुभचिन्तना की बातें लिखकर उसमें एक शेर यह भी लिखा—

صد کس به نظر نگاه میدارندم - ورنه بپریدمی ز بے آرامی -

अर्थात्—मैं इस समय सौ आदमियों के पहरे में हूँ। नहीं तो यहाँ के कष्टों के कारण मैं यहाँ से चला जाता।

यह पत्र किसी ने पकड़कर शाहजहान को दे दिया। उसने इन्हें एकान्त में बुलाकर वह पत्र दिखलाया। भला इनके पास उसका क्या उत्तर हो सकता था! लज्जित होकर चुप रह गए। अन्त में अपने पुत्रों समेत दौलतखाने के पास नजरबन्द हुए; और संयोग यह कि सौ ही मन्सबदारों को इनकी रक्षा का भार दिया गया। आसीर पहुँचकर सैयद मुजफ्फर बारहा को सौंप दिया गया और कहा गया कि ले जाकर किले में कैद कर दो।

लेकिन दाराब का कोई अपराध नहीं था; इसलिये सोच-समझकर दोनों को छोड़ दिया ।

बादशाह ने शाहजादा परवेज को भी अमीरों के साथ सेनाएँ देकर भेजा था । वह नर्मदा नदी पर जाकर रुक गया; क्योंकि वहाँ पर शाहजहान के सरदारों ने घाटों का बहुत अच्छा प्रबन्ध कर रखा था । ये भी साथ थे । ये कोई अपराधी कैदी तो थे ही नहीं; अब्दुलरहीम खानखानाँ थे । कहने को नजरबन्द थे, परन्तु सभाओं और सम्मतियों आदि में भी सम्मिलित होते थे । बराबर ऐसी बातें बतलाते थे जिनसे लाभ और मंगल होता था । सारांश यह कि इनकी सब बातों का मुख्य उद्देश्य यही होता था कि ऐसा काम हो जिससे लड़ाई-झगड़े और वैमनस्य का मार्ग बन्द हो और सफलतापूर्वक मेल के मार्ग निकल आवें ।

उधर से जब महाबतखाँ और शाहजादा परवेज नदी के किनारे पहुँचे, तब उन्हें सामने शाहजहान का लश्कर दिखाई दिया । उन्होंने देखा कि घाटों का प्रबन्ध बहुत पक्का है । और नदी का चढ़ाव उसे और भी जोरों के साथ सहायता दे रहा है । सब नावें पार के किनारे पर खींच ले गए और तोपों तथा बन्दूकों आदि से मोरचे दृढ़ किए । लश्कर के डेरे डलवा दिए और दूसरी आवश्यक बातों का प्रबन्ध करने लगे । महाबतखाँ ने जालसाजी का एक ऐसा पत्र खानखानाँ के नाम लिखा, जिससे बहुत मित्रता का भाव प्रकट होता था । और वह पत्र ऐसे ढंग से भेजा कि शाहजहान के पास जा पहुँचा । महाबतखाँ के पत्र का सारांश यह था कि यह बात संसार जानता है कि हमारे शाहजादे साहब को बादशाह की आज्ञा का पालन करने के सिवा और

कोई वात अभीष्ट नहीं है । जिन लोगों ने यह उपद्रव खड़ा किया है और लड़ाई लगाई है, उन्हें शीघ्र ही उचित दंड मिलेगा । मैं विवश हूँ कि आ नहीं सकता । परन्तु देश की दशा देखकर बहुत दुःख होता है । मैं उसका सुधार और प्रजा के सुख और शान्ति के उपाय करने के लिये जी-जान से तैयार हूँ; और इस काम को अपना तथा समस्त मुसलमानों का परम कर्त्तव्य समझता हूँ । यदि तुम परम प्रतापी शाहजादे को ये सब बातें भली भाँति समझाकर दो-एक ऐसे विश्वसनीय आदमियों को भेज दो जो इन विषयों को बहुत अच्छी तरह समझते हों तो यह बात बहुत ही उपयुक्त होगी कि आपस में बात-चीत करके ऐसी युक्ति निकाली जाय जिसमें यह आग बुझ जाय और रक्तपात बन्द हो । पिता और पुत्र फिर एक हो जायँ । शाहजादे की जागीर कुछ बढ़ा दी जाय और नूर महल लज्जित होकर हमारी इस युक्ति से सहमत हो जाय । आदि आदि । बस यही और इसी प्रकार की कुछ और बातें लिखी थीं; और उनके साथ वचन की दृढ़ता तथा शपथें आदि भी थीं । इस विषय में कुरान को बीच में रखकर उसकी भी शपथ दी गई थी । इस प्रकार की बातों से भरा हुआ वह पत्र एक लिफाफे में बन्द करके उधर की हवा में इस प्रकार उड़ाया कि वह शाहजहान के पल्ले में जा पड़ा । वह तो स्वयं सुख और शान्ति का परम प्रेमी और इच्छुक था । उसने अपने मुसाहबों को बुलाकर उनके साथ परामर्श किया । खानखानाँ से भी बात-चीत हुई । ये तो पहले से ही इन विषयों के कवि थे । शाहजादे को इस काम के लिये इनसे बढ़कर योग्य और समझदार कोई दूसरा आदमी नहीं दिखाई दिया । उसने

कुरान सामने रखकर इनसे शपथें लीं। दाराव और इसके सब बाल-बच्चों आदि को अपने पास रखा और इन्हें उधर विदा कर दिया कि जाकर नदी का बहाव और हवा का रुख फेरो। नदी के उस पार पहुँचो और ऐसे ढंग से मेल कराओ जिससे दोनों पक्षों का मंगल और कल्याण हो।

खानखानाँ संसार रूपी शतरंज के पक्के चालबाज थे। पर वे स्वयं बुड्ढे हो गए थे और उनकी बुद्धि भी बुड्ढी हो गई थी। महाबतखाँ जवान थे और उनकी बुद्धि भी जवान थी। जब खानखानाँ बादशाही लश्कर में पहुँचे, तब उनका आवश्यकता से कहीं बढ़ कर आदर-सम्मान हुआ। एकान्त में उनके साथ बहुत ही सहानुभूति-पूर्ण और उन्हें प्रसन्न करनेवाली बातें की गईं। इस पर खानखानाँ ने बहुत ही प्रसन्न होकर शाहजहान के पास ऐसे पत्र भेजने आरम्भ किए जिनसे सूचित होता था कि इन्हें अपने कार्य में अच्छी सफलता हो रही है और ये परिणाम के सम्बन्ध में बहुत ही सन्तुष्ट तथा निश्चिन्त हैं। जब शाहजहान के अमीरों को यह समाचार मिला, तब वे लोग भी बहुत प्रसन्न हुए। और उन्होंने भूल यह की कि घाटों की व्यवस्था और किनारों का प्रबन्ध ढीला कर दिया।

महाबतखाँ बहुत ही चलता-पुरजा निकला। उसने चुपके-चुपके रात के समय अपनी सेना नदी के उस पार उतार दी। अब ईश्वर जाने कि उसने सहानुभूति और अपनी अच्छी नीयत का हरा बाग दिखलाकर इन्हें भ्रम में डालनेवाली बेहोशी की शराब पिलाई या लालच का दस्तरख्वान बिछाकर ऐसी चिकनी-चुपड़ी बातें कीं कि ये कुरान को निगलकर उससे मिल गए।

जो हो, हर प्रकार से शाहजहान का काम बिगड़ गया। वह बहुत ही हतोत्साह होकर परम विकलता की दशा में पीछे हटा और ऐसी घबराहट में ताप्ती नदी के उस पार उतरा कि उसकी सेना और युद्ध-सामग्री की बहुत अधिक हानि हुई। उस समय प्रायः अमीर भी उसका साथ छोड़कर चले गए।

खानखानाँ के बाल-बच्चे, जिनमें दाराब भी था, शाहजहान के साथ थे और खानखानाँ उधर बादशाही लश्कर में पड़े हुए थे। अब इनके पास सिवा इसके और कोई उपाय नहीं रह गया था कि महाबतखाँ से मेल-जोल रखें। वे उसके साथ बुरहानपुर पहुँचे। पर फिर भी सब लोग खानखानाँ की ओर से होशियार और सचेत ही रहते थे। परामर्श यह हुआ कि इन्हें नजरबन्द रखा जाय और इनका खेमा परवेज के खेमे के साथ बिलकुल सटा रहे। इसमें मुख्य उद्देश्य यह था कि ये जो कुछ काम करें, उसका पता लगता रहे। बुरहानपुर पहुँच कर भी महाबतखाँ नहीं ठहरा और उसने ताप्ती नदी पार करके भी कुछ दूर तक शाहजहान का पीछा किया। इस पर शाहजहान दक्खिन से बंगाल की ओर चल पड़ा।

जाना बेगम भी अपने पिता खानखानाँ के साथ ही थी। उसने इनसे साहस और युक्ति के जो पाठ पढ़े थे, वे सब अक्षरशः स्मरण कर रखे थे। उसने कहा कि मैं अपने पिता को नहीं छोड़ूँगी। जो दशा इनकी होगी, वही मेरी भी होगी। वह भी शाहजादा दानियाल की स्त्री थी। उसके बाल-बच्चे भी उसके साथ थे। भला उसको कौन रोक सकता था! तात्पर्य यह कि वह भी अपने पिता के साथ उनके ही खेमे में रही। खानखानाँ

के पास फहीम नाम का एक खास गुलाम था। वह वास्तव में यथा नाम तथा गुण था (अर्थात् बहुत बड़ा समझदार और अनुपम कार्य-कुशल था)। उसे स्वयं वीरता ने दूध पिलाया था और वह शूरता के नमक से पला था। वह इस झगड़े में जिस प्रकार मारा गया, उसका दुःख खानखानाँ के ही हृदय से पूछना चाहिए। जब शाहजहान के पास ये समाचार पहुँचे, तब उसने इनके बाल-बच्चों को कैद कर लिया; और उनकी रक्षा का भार राजा भीम पर डाला गया, जो राणा का लड़का था। उधर खानखानाँ को यह समाचार सुन कर बहुत दुःख हुआ। उन्होंने राजा के पास सँदेसा भेजा कि मेरे बाल-बच्चों को छोड़ दो। मैं कोई न कोई युक्ति करके बादशाही लश्कर को इधर से फेर देता हूँ। पर यदि यही दशा रहेगी, तो समझ लो कि काम बहुत कठिन हो जायगा। मैं स्वयं आकर उन लोगों को छुड़ा ले जाऊँगा। राजा ने कहा कि अभी तक पाँच छः हजार जान निछावर करनेवाले सैनिक शाहजादे की रकाब में और उनके साथ हैं। यदि तुम चढ़ कर हम लोगों पर आए, तो पहले तुम्हारे बाल-बच्चों की हत्या की जायगी और तब हम लोग तुम पर आ पड़ेंगे। या तुम नहीं और या हम नहीं।

बादशाही लश्कर के साथ भी शाहजहान की कई लड़ाइयाँ हुईं जिनमें बहुत मार-काट और रक्तपात हुआ। दुःख है कि अपनी सेनाएँ आपस में ही कट मरीं और वीर सरदार तथा साहसी अमीर व्यर्थ मारे गए। शाहजहान लड़ते-लड़ते कभी किनारे की ओर हटते थे, कभी पीछे की ओर हटते थे और कभी ऊपर ही ऊपर बंगाल में जा निकलते थे। वहाँ दाराब से शपथ

और वचन लेकर बंगाल का शासन-भार उसे सौंप दिया। उसकी स्त्री, लड़के, लड़की और शाहनवाजखाँ के एक लड़के को ओल में ले लिया और आप बिहार की ओर चल पड़ा। कुछ दिनों के बाद दाराव को भी वहीं बुला भेजा। उसने लिखा कि यहाँ के जमींदारों ने मुझे घेर रक्खा है, इसलिये मैं आपकी सेवा में उपस्थित नहीं हो सकता। शाहजहान की सेना नष्ट हो चुकी थी। वह भग्न-हृदय जिस मार्ग से आया था, उसी मार्ग से दक्खिन की ओर चला। फिर उसके ध्यान में यह बात आई कि खानखानाँ भी बादशाह की ओर मिल गए हैं, इसलिये उसने उनके नवयुवक पुत्र और भतीजे को मार डाला। यहाँ दाराव के पास कोई शक्ति नहीं रह गई थी। बादशाही लश्कर ने वहाँ पहुँच कर देश पर अधिकार कर लिया। दाराव चल कर सुलतान परवेज के लश्कर में उपस्थित हुआ। जहाँगीर की आज्ञा पहुँची कि दाराव का सिर काट कर भेज दो। दुःख है कि उसका सिर एक पात्र में खाद्य पदार्थ की तरह कसवा कर उसके अभागे पिता के पास भेज दिया गया। जिस खानखानाँ के सामने किसी की इतनी भी सामर्थ्य नहीं होती थी कि रहमान दादा के मरने की चर्चा भी कर सके, वही इस समय चुपचाप बैठा था और आकाश की ओर देख रहा था। महाबतखाँ के सेवकों ने उसकी आज्ञा के अनुसार खानखानाँ से जाकर कहा कि हुजूर ने यह तरबूज भेजा है। परम दुःखित हृदय से पिता ने आँखों में आँसू भर कर कहा—ठीक है, शहीदी है। कहनेवालों ने उसके मरने की तारीख कही थी—

شهید پاک شد داراب مسکین –

अर्थात्—बेचारा दाराव पवित्र शहीद हुआ।

दुःख के योग्य तो यह बात है कि वे शूर-वीर, जिनके समस्त जीवन और कई-कई पीढ़ियाँ इस साम्राज्य में अपनी जान निछावर करने और निष्ठा-पूर्ण व्यवहार करने का अभ्यास कर रही थीं, उनके प्राण व्यर्थ गए। यदि शाहजहान के साथ कन्धार पर जाते तो बड़े-बड़े काम कर दिखलाते। यदि उजबक पर जाते तो अपने पूर्वजों का देश छुड़ा लाते और भारत का नाम तूरान में प्रकाशमान कर लाते। दुःख है कि अपने हाथ स्वयं अपने ही हाथों से नष्ट हुए और अपने सिर अपने ही हाथों से कटे। अपनी छुरी से अपने ही पेट फाड़े गए। और ये सब बातें क्यों हुईं? केवल बेगम साहब की स्वार्थपरता और स्वेच्छाचारिता के कारण। इसमें सन्देह नहीं कि बेगम भी एक अनुपम रत्न थी। उसे साम्राज्य का ताज कहना भी उपयुक्त है। बुद्धिमत्ता, युक्ति, साहस, उदारता, गुण-ग्राहकता और परोपकार में वह अपना जोड़ नहीं रखती थी। पर फिर भी क्या किया जाय। जो बात होती है, वह कहनी ही पड़ती है। थोड़े ही दिनों के बाद बादशाह और शाहजादा दोनों पिता पुत्र जैसे पहले थे, वैसे ही फिर हो गए। बेचारे अमीर लज्जित और चकित थे कि कहाँ जायँ और क्या मुँह लेकर जायँ। परन्तु इस घर के सिवा उनके लिये और घर ही कौन सा था!

सन् १०३६ हि० में खानखानाँ बादशाह की सेवा में उपस्थित होने के लिये बुलाए गए। जब महाबतखाँ ने इन्हें बिदा किया, तब जो-जो बातें बीच में हुई थीं, उनके लिये बहुत अधिक दुःख प्रकट किया और इनकी यात्रा के लिये आवश्यक सामग्री

आदि देने में बहुत अधिक उदारता दिखलाई। उसने इन्हें ऐसी ही सामग्री दी थी जो सब प्रकार से इनकी मर्यादा को देखते हुए उपयुक्त थी। उसका अभिप्राय यही था कि आगे के लिये सफाई हो जाय; और इनके मन में मेरी ओर से किसी प्रकार का दुःख या मैल न रह जाय। जिस समय ये दरबार में पहुँचे, उस समय की अवस्था स्वयं जहाँगीर अपनी तुज़ुक में इस प्रकार लिखता है कि अपने लज्जित मुख को बहुत देर तक पृथ्वी पर रखे रहा। सिर ऊपर नहीं उठाया। मैंने कहा कि जो-जो बातें घटित हुई हैं, वे सब भाग्य की बातें हैं। न तुम्हारे अधिकार की हैं और न हमारे अधिकार की। इस कारण अब तुम अपने मन में व्यर्थ लज्जित और दुःखी मत हो। हम अपने आपको तुम से अधिक लज्जित पाते हैं। जो कुछ हुआ, वह सब भाग्य से ही हुआ। हमारे अधिकार की बात नहीं है।

साम्राज्य के स्तम्भ बड़े-बड़े अमीरों को आज्ञा हुई कि इन्हें ले जाकर उपयुक्त स्थान पर ठहराओ। कई दिन के बाद एक लाख रुपया पुरस्कार दिया और कहा कि इससे अपनी अवस्था ठीक करो। थोड़े दिनों के बाद कन्नौज का सूबा भी प्रदान किया गया। खानखानाँ की जो उपाधि उनसे छीन कर महाबतखाँ को दी गई थी, वह फिर इन्हें मिल गई। इन्होंने धन्यवाद में यह शेर कह कर मोहर पर खुदवाया—

مرا لطف جہانگیری بتائیدات یزدانی –
دوبارہ زندگی دادو دوبارہ خانخانانی –

अर्थात्—जहाँगीर की कृपा और ईश्वरीय समर्थन ने मुझे पुनः जीवन प्रदान किया और पुनः मुझे खानखानाँ की पदवी मिली।

दूसरे ही वरस पल्ला उलट गया। बेगम की महावतखाँ से विगड़ गई। आज्ञापत्र गया कि सेवा में उपस्थित हो और अपनी जागीर तथा सेना आदि का हिसाव-किताव समझा दो। वादशाह लाहौर से काश्मीर की सैर करने के लिये चले जा रहे थे। वह हिन्दुस्तान की ओर से आया। उसके साथ छः हजार तलवार-मार राजपूत थे। लाहौर होता हुआ हुजूर की सेवा में चला। पर उसके तेवर विगड़े हुए थे और वह क्रोध में भरा हुआ था। खान-खानाँ वहाँ उपस्थित थे। वे संसार की नाड़ी खूव पहचानते थे। वे समझ गए कि आँधी आई है। अव खूव धूल उड़ेगी। साथ ही वे यह भी जानते थे कि छः हजार सैनिकों की विसात ही क्या है, जिसपर यह मूर्ख अफगान कूदता है। ये जान निछावर करने-वाले उसके निजी सेवक थे। यह अवश्य विगड़ वैठेगा, पर अन्त में स्वयं ही विगड़ जायगा; क्योंकि इसकी कोई जड़ नहीं है। अन्त में वाजी बेगम के ही हाथ रहेगी। संक्षेप यह कि खानखानाँ उस समय महावतखाँ से भेंट करने के लिये नहीं गए। वल्कि कुशल-प्रश्न के लिये अपना प्रतिनिधि तक नहीं भेजा। उसका ध्यान भी सव ओर था। समझ गया कि ये खानखानाँ हैं और इन्होंने यह भी प्रकट कर दिया कि इनके मन में मेरी ओर से अभी तक मैल वनी है। हृदय शुद्ध नहीं हुआ है। ईश्वर जाने वहाँ क्या परिस्थिति उपस्थित हो और ऊँट किस करवट वैठे। यदि ये पीछे से आ गिरे तो वहुत कठिनता होगी। इसलिये जव झेलम के किनारे पहुँचकर वादशाह को कैद किया, तव उसी समय आदमी भेजे कि खानखानाँ को रक्षा-पूर्वक दिल्ली पहुँचा दो। आज्ञा का पालन करने के सिवा और हो ही क्या

सकता था। ये चुपचाप दिल्ली चले गए। वहाँ से विचार किया कि अपनी जागीर को चले जायँ। उसके मन में फिर कुछ सन्देह हुआ और उसने मार्ग में से ही इन्हें बुलवा लिया और कहला दिया कि लाहौर में बैठो। इसे महावतखाँ की चाहे नमकहरामी कहो और चाहे यह कहो कि वह एक मस्त और बेहोश आदमी के घर का प्रबन्ध करना चाहता था, पर फिर भी इसमें सन्देह नहीं कि वहाँ पहुँच कर उसने जो कुछ किया, वह शायद ही किसी नमक खानेवाले अमीर ने किया हो। यहाँ तक कि उसने बादशाह और बेगम दोनों को अलग-अलग कैद कर लिया। बेगम की बुद्धिमत्ता और युक्ति से धीरे-धीरे उसकी आँधी धीमी पड़ी। अन्त में वह भागा। खानखानाँ का हृदय उसके घावों से छलनी हो रहा था। उसने बहुत ही नम्रता तथा हार्दिक कामना-पूर्वक हुजूर की सेवा में निवेदनपत्र भेजा कि इस नमकहराम को दंड देने की सेवा मुझे प्रदान की जाय। बेगम ने उसकी जागीर खानखानाँ के वेतन में प्रदान कर दी। सात हजारी सवार का मन्सब, दो और तीन घोड़ोंवाली खिलअत, जड़ाऊ तलवार, जड़ाऊ जीन सहित घोड़ा, खासे का हाथी, नगद बारह लाख रुपए, घोड़े, ऊँट और बहुत सी सामग्री प्रदान की। साथ ही अजमेर का सूबा भी प्रदान किया। साथ में सेनाओं सहित अमीर भी कर दिए। बहत्तर बरस का बुड्ढा; और उसपर भी इतनी-इतनी विपत्तियाँ पड़ चुकी थीं, इतने-इतने सोग देख चुका था, इसलिये शक्ति ने साथ नहीं दिया। खानखानाँ लाहौर में ही बीमार हो गए। दिल्ली पहुँचने पर दुर्बलता बहुत बढ़ गई और सन् १०३६ हि० में इन्होंने इस लोक से प्रस्थान किया। हुमायूँ

के मकबरे के पास गाड़े गए। तारीख कही गई—"खान-सिपह-सालार को"। सभी इतिहास-लेखकों ने जिस प्रकार उत्तमता-पूर्वक इनके पिता की बातों का उल्लेख किया है, उसी प्रकार इनकी बातों का भी उल्लेख किया है। और उसपर विशेषता यह है कि ये सबके प्रिय और प्रशंसा-भाजन रहे।

जहाँगीर ने अपनी तुजुक में इस दुर्घटना का उल्लेख करते हुए भिन्न-भिन्न संकेतों के रूप में इनकी सेवाओं का कुछ वर्णन बहुत ही दुःख के साथ किया है और साथ ही शाहनवाज की वीरता और शूरता का भी उल्लेख किया है। अन्त में लिखा है कि खानखानाँ योग्यता और गुणों में सारे संसार में अनुपम था। अरबी, तुरकी, फारसी और हिन्दी भाषाएँ जानता था। अनेक प्रकार की विद्याओं और साथ ही भारतीय विद्याओं का भी बहुत अच्छा ज्ञान रखता था। शूरता, वीरता और सरदारी में झंडा बल्कि ईश्वरीय कृति का झंडा था। फारसी और हिन्दी में बहुत अच्छी कविता करता था। पूज्य पिताजी की आज्ञा से वाकआत बाबरी का फारसी भाषा में अनुवाद किया था। कभी कोई शेर, कभी कोई रुबाई और कभी कोई गजल भी कहता था। और उदाहरण स्वरूप एक गजल और एक रुबाई भी उद्धृत की है।

निजामउद्दीन बख्शी ने तबकाते नासिरी में अपने समय के अमीरों के जो संक्षिप्त वर्णन दिए हैं, उनमें इनका भी वर्णन है। उसका अनुवाद यहाँ दिया जाता है—

"इस समय खानखानाँ की अवस्था ३७ वर्ष की है। आज दस वर्ष हुए, इसने खानखानाँ का मन्सब और सेनापति का पद प्राप्त किया था। इसने बहुत बड़ी-बड़ी सेवाएँ की हैं और

बड़े-बड़े युद्धों में विजयी हुआ है। इस सुयोग्य और मान्य पुरुष के ज्ञान, विद्या और गुणों के सम्बन्ध में जो कुछ लिखें, वह सब सौ में एक और बहुत में से थोड़े हैं। इसने सब लोगों पर दया करने का गुण, बड़े-बड़े विद्वानों और पंडितों की शिक्षा, फकीरों का प्रेम और कवि का हृदय या प्रकृति मानों अपने पिता से उत्तराधिकार में पाई है। लौकिक ज्ञान और गुण की दृष्टि से इस समय दरबार में इसके जोड़ का और कोई अमीर नहीं है।"

बहुत सी ऐसी बातें थीं जो विशेष रूप से मानों इन्हीं के वंश के लिये थीं और कहीं नहीं पाई जाती थीं। और उनमें से भी प्रायः बातें ऐसी थीं जिनका आविष्कार स्वयं इनकी बुद्धि और प्रकृति ने किया था। और कुछ बातें ऐसी थीं जो बादशाही विशेषता की मोहर रखती थीं। दूसरे लोगों को वह मर्यादा प्राप्त ही नहीं हुई थी। उदाहरणार्थ हुमा के पर की कलगी बादशाह और शाहजादों के सिवा और कोई अमीर नहीं लगा सकता था। पर इनके वंश के लोगों को वह कलगी लगाने की भी आज्ञा थी।

खानखानाँ का धर्म

मआसिर उल् उमरा के लेखक लिखते हैं कि ये अपने आप को लोगों पर सुन्नत सम्प्रदाय का अनुयायी प्रकट करते थे और लोग कहते थे कि शीया हैं, तक़ैया * करते हैं। पर इसमें सन्देह नहीं कि इनसे शीया और सुन्नी दोनों ही सम्प्रदायों के

* अपने प्राणों तथा धन के नाश के भय से अपना वास्तविक धार्मिक सिद्धान्त प्रकट न करना।

लोगों को समान रूप से लाभ पहुँचा करता था। इनकी उदारता किसी विशेष सम्प्रदाय के लिये नहीं होती थी। हाँ, इनके लड़के कुछ ऐसे धार्मिक पक्षपात की बातें करते थे, जिनसे प्रमाणित होता था कि वे सुन्नी सम्प्रदाय के अनुयायी हैं। खानखानाँ साधारणतः शरअ की सभी आज्ञाओं को मानते थे; और जहाँ तक हो सकता था, उनका पालन भी करते थे। परन्तु यदि दरबार की मद्य-पानवाली मंडली में पहुँच जाते थे, तो शराब भी पी लेते थे। जिस समय खानखानाँ को दक्खिन और कन्धार आदि पर चढ़ाई करने के लिये खान्देश से बुलाया गया था और वे डाक की चौकी बैठा कर आए थे, उस समय यहाँ एकान्त में मन्त्रणा करने के लिये सभाएँ हुई थीं। एक रात को खानखानाँ और मानसिंह आदि विशेष विशेष और बड़े अमीरों को भी एकत्र किया गया था। इसका वर्णन करते हुए मुल्ला साहब कैसे मजे से चुटकी लेते हैं—"इसी जल्से में एक दिन मुहर्रम की नवीं तारीख की रात थी; मद्य पिलानेवाले ने बादशाह के सामने मद्य का पात्र उपस्थित किया। उन्होंने वह पात्र खानखानाँ को दे दिया।" मुल्ला साहब जो चाहें, सो कहें। पर यह भी तो कहें कि वह कैसा समय था, जब मंडली में एकत्र होने पर शरीयत के प्रधान और समस्त इस्लाम के मुफ्ती, जिनका धार्मिक अधिकार सारे भारत पर था, स्वयं माँग कर मद्य का पात्र लें, वहाँ यदि बादशाह का दिया हुआ मद्य का पात्र लेकर खानखानाँ पी न जायँ, तो क्या करें? और यदि सच पूछो तो अकबर भी परम पवित्र बननेवाले धर्माधिकारियों से व्यर्थ ही दुःखी नहीं था। उन लोगों ने उसके साम्राज्य का नाश करने में कौन सी कसर उठा रखी थी?

शील और स्वभाव

ये लोगों के साथ मित्रता करने और मित्रता का निर्वाह करने में परम कुशल और निपुण थे। शील और स्वभाव बहुत ही अच्छा था और सबके साथ बहुत ही प्रेम और तपाक से मिलते थे। अपनी मनोहर और मनोरंजक बातों से अपने और पराए सभी लोगों को अपना दास बना लेते थे। बातों-बातों में कानों के मार्ग से लोगों के हृदय में उतर जाते थे। बहुत ही मिष्ट-भाषी थे, सदा सुन्दर और चोज भरी बातें कहते थे और बहुत ही तेज और चलते हुए थे। दरबार और बादशाही न्याया-लयों के समाचारों का इन्हें बहुत अधिक ध्यान रहता। यदि सच पूछो तो ये सदा सभी प्रकार की बातें और समाचार जानने के लिये परम उत्सुक और लालायित रहते थे। राजधानी में इनके कई ऐसे नौकर रहते थे जो दिन और रात के सभी समाचार बराबर डाक चौकी में भेजते जाते थे। अदालतों, कचहरियों, चौकियों, चबूतरों यहाँ तक कि चौक और गली-बाजारों में भी जो कुछ सुनते थे, वह सब इनके पास लिख भेजते थे। खानखानाँ रात के समय बैठकर वे सब पत्र पढ़ा करते थे और पढ़कर उन्हें जला देते थे।

बादशाह के साथ सम्बन्ध रखनेवाले अथवा अपने किसी निजी विषय में वे किसी की ओर प्रवृत्त होने में अपने उच्च पद का कभी ध्यान नहीं करते थे। वे अपने शत्रुओं के साथ भी कभी बिगाड़ नहीं करते थे। परन्तु यदि अवसर पाते थे, तो फिर चूकते भी नहीं थे। ऐसा हाथ मारते थे कि उसे साफ ही कर देते

थे। इन्हीं सब बातों के कारण लोग कहते हैं कि वे जमाना-साज आदमी थे; जब जैसा समय देखते थे, तब वैसा काम करते थे। और उनकी नीति का यही मुख्य सिद्धान्त था कि शत्रु को उसका मित्र बनकर मारना चाहिए। और इसका कारण यह है कि वे अपने पद और मर्यादा की वृद्धि तथा सम्पत्ति और वैभव अर्जित करने के हर समय इच्छुक रहते थे। मआसिर उल् उमरा में लिखा है कि वीरता, उदारता, बुद्धिमत्ता, युक्ति और सेना तथा देश का प्रबन्ध करने में वे परम प्रवीण थे। भिन्न-भिन्न समयों पर वे तीस बरस तक दक्खिन में रहे थे और ऐसे ढंग से रहे थे कि दक्खिन के बादशाहों और अमीरों को अपने मेल-मिलाप के द्वारा सदा अपनी अधीनता और प्रेम के फन्दे में फँसाए रहते थे। बादशाही दरबार से जो अमीर या शाहजादा जाता था, वह यही कहता था कि ये शत्रु-पक्ष के साथ मिले हुए हैं। ये चगताई साम्राज्य के बहुत बड़े और उच्च अमीरों में से थे। प्रसिद्धि के पृष्ठ पर इनके प्रसिद्ध नाम ने चिरस्थायी स्थान प्राप्त किया है। इन सब बातों के उपरान्त मआसिर उल् उमरा में एक शेर भी लिखा है, जो किसी शत्रु या शत्रुओं के खुशामदी ने कहा था और जो इस प्रकार है—

یک وجب قد و صد گرہ در دل –
مشتکے استخوان و صد مشکل –

अर्थात्—यह छोटी सी आकृति और दिल में सौ गाँठें। मुट्ठी भर हड्डी और इसपर सौ कठिनाइयाँ हैं।

मैं कहता हूँ कि हाय-हाय, निर्दय संसार और कठोर-हृदय सांसारिक लोग, गड्ढों में बसनेवाले और मोरियों में सड़नेवाले

लोग बादशाही महलों में रहनेवाले लोगों पर बातें बनाते हैं। उन्हें इस बात की क्या खबर कि बादशाहों को राजसिंहासन पर बैठानेवाले उस अमीर के सामने कैसे-कैसे कठिन अवसर और पेचीले मामले आते थे और वह साम्राज्य की समस्याओं को युक्ति के हाथों से किस प्रकार सँभालता था! यह कमीना, गन्दा और अपवित्र संसार! इसकी बस्ती उपद्रव और उत्पात का मैला है। अधिकांश लोग बुरी नीयतवाले, दूसरों की बुराई की बातें सोचनेवाले और बुरे कर्म करनेवाले हैं। उनके अन्दर कुछ है और बाहर कुछ। हृदय में कपट, जबान पर क़समें; तिस पर वे अयोग्य लोग स्वयं कुछ भी नहीं करते, बल्कि यों कहना चाहिए कि कुछ कर ही नहीं सकते। और फिर योग्य व्यक्तियों और काम करनेवाले लोगों को देख भी नहीं सकते। वे लोग जान लड़ाकर जो परिश्रम और काम करते हैं, उन्हें मिटाकर भी वे लोग सन्तोष नहीं करते। बल्कि उसके पुरस्कार के स्वयं अधिकारी बनते हैं। यदि ऐसे दुष्टों के मुकाबले में मनुष्य स्वयं भी वैसा ही न बन जाय, तो उसका किस प्रकार निर्वाह हो सकता है? यूनान के हकीम अरस्तू ने क्या अच्छा कहा है कि मनुष्य के सज्जन और भले बने रहने के लिये यह आवश्यक है कि जिन लोगों के साथ उसे व्यवहार करना पड़े, वे लोग भी सज्जन और भले हों। नहीं तो उसकी सज्जनता और भलाई कभी निभ ही नहीं सकती। इसमें सन्देह नहीं कि उसका यह कहना बहुत ही ठीक है। यदि मनुष्य स्वयं अपनी ओर से सदा सज्जन और भला बना रहे तो दुष्ट शैतान उसके कपड़े क्या बल्कि खाल तक नोच ले जाय। इसलिये उचित है कि बेईमानों के साथ उनसे भी बढ़कर बेईमान बने।

खानखानाँ यद्यपि नाम को सात हजारी मन्सवदार थे, पर देशों में वे स्वाधीन शासकों की भाँति शासन करते थे। सैकड़ों हजारी मन्सवदारों से उन्हें काम पड़ता था। यदि वे इस प्रकार काम न निकालते तो देश का शासन कैसे कर सकते थे? यदि वे ऐसे कायरों से इस प्रकार अपने प्राण न बचाते तो वे कैसे जीवित रहते? यदि वे ठट्ठ के ठट्ठ शत्रुओं को इस पेच से न मारते, तो स्वयं क्योंकर जीवित रहते? वे स्वयं ही अवश्य मारे जाते। बैठकर कागजों पर लिखना और बात है और लड़ाइयाँ जीतना तथा साम्राज्य के कार्यों का निर्वाह करना और बात है। वही थे जो सब कर गए और नेकी ले गए। स्मृति के लिये अपना सुनाम छोड़ गए। उस समय भी बहुत से अमीर थे और उसके बाद अब तक भी बहुतेरे अमीर हुए, पर किसी के जीवन-चरित्र में उसके कार्यों का पासंग भी तो दिखला दो।

विद्वत्ता और रचनाएँ

इसकी विद्या सम्बन्धी योग्यता के विषय में हम केवल इतना ही कह सकते हैं कि यह अरबी भाषा बहुत अच्छी तरह समझता था और बोलता था। फारसी और तुर्की तो इसके घर की भाषाएँ थीं। यद्यपि उसे अन्न देनेवाला स्वामी भारतीय था, परन्तु उसका सारा घर, दरबार और नौकर-चाकर आदि सब तुर्क और ईरानी थे। उसका स्वभाव और विचार बहुत उच्च तथा विस्तृत थे। मैंने उसके बहुत से ऐसे निवेदन-पत्र आदि देखे हैं जो उसने बादशाह या शाहजादों के नाम भेजे थे। वे खरीते आदि भी देखे हैं जो अपने मित्र अमीरों के पास भेजे थे;

और वे निजी पत्र आदि भी देखे हैं जो मिरजा ईरज आदि पुत्रों के नाम लिखे थे। उन सबसे यही प्रमाणित होता है कि यह फारसी भाषा का बहुत अच्छा लेखक था। उस समय के लोग अपने पूर्वजों की सभी बातों की और विशेषतः उनकी भाषा की बहुत अधिक रक्षा करते थे। और सबसे बड़ी बात यह थी कि उस समय का बादशाह तुर्क था। जहाँगीर अपनी बाल्यावस्था का वर्णन करता हुआ लिखता है कि मेरे पिता को इस बात की बहुत चिन्ता थी कि मुझे तुर्की भाषा आ जाय। इसी कारण उसने मुझे कूकी को सौंप दिया था; और उनसे कह दिया था कि इससे तुर्की में ही बातें किया करो और तुर्की ही बुलवाया करो।

मआसिर उल् उमरा में लिखा है कि खानखानाँ अरबी, फारसी और तुर्की भाषाएँ बहुत अच्छी तरह जानता था; और अनेक भाषाएँ जो संसार में प्रचलित हैं, उनमें भी बातें करता था।

(१) तुज़ुक बाबरी नामक ग्रन्थ तुर्की भाषा में था। अकबर की आज्ञा से फारसी भाषा में इसका अनुवाद करके सन् ९९७ हि० में भेंट किया और प्रशंसा तथा धन्यवाद के बहुत से फूल समेटे। इसकी भाषा बहुत ही सरल और सब लोगों के समझने योग्य है। बाबर के विचार इसने बहुत सुन्दरतापूर्वक प्रकट किए हैं। यह स्पष्ट ही है कि उस ऊँचे दिमागवाले श्रेष्ठ अमीर ने न आँखों का तेल निकाला होगा और न दीपक का धूआँ खाया होगा। मुफ्त का माल खानेवाले बहुत से मुंशी साथ रहते थे। किसी से कह दिया होगा। एक दो उजबक उनके साथ कर दिए होंगे। सब मिल-जुलकर लिखते होंगे। आप सुना करता होगा और सूचनाएँ देता जाता होगा। तब यह

इतनी सुन्दर और उत्तम प्रति प्रस्तुत हुई होगी। भला मौलवियों और मुल्लानों से क्या हो सकता था!

(२) अकबर का शासन-काल मानों नई रोशनी का समय था। उसने संस्कृत विद्या का भी ज्ञान प्राप्त किया था। ज्यौतिष सम्बन्धी उसकी एक मसनवी है जिसमें एक चरण फारसी का और एक संस्कृत का है।

(३) फारसी में कोई दीवान नहीं है। फुटकर गजलें और रुबाइयाँ हैं। पर जो कुछ हैं, वे बहुत अच्छी हैं। वे स्वयं भी बहुत अच्छी हैं और उनकी बातें भी बहुत अच्छी हैं *।

सन्तान

पिता तो प्रायः युद्धों आदि पर रहता था और बच्चों का पालन-पोषण अकबर के हुजूर में ही होता था। खानखानाँ अपने लड़कों आदि के साथ बहुत प्रेम रखता था। इसी लिये अकबर भी अपने प्रायः आज्ञापत्रों में किसी न किसी प्रकार ईरज और दाराब आदि का नाम ले दिया करता था। अब्बुलफजल को ये नाम अकबर की अपेक्षा भी अधिक लेने पड़ते थे; क्योंकि उन दिनों उनमें और खानखानाँ में बहुत अधिक प्रेम था। सन् ९९८ हि० में अब्बुल फजल अकबरनामे में लिखते हैं कि खानखानाँ को पुत्र की बड़ी कामना थी। जब तीसरा पुत्र हुआ, तब अकबर ने उसका नाम क़ारन रखा। आनन्द और प्रसन्नता की धूमधाम से जशन किया और हुजूर को भी बुलाया। प्रार्थना

---

* 'रहीम' के नाम से खानखानाँ की हिन्दी में जो अनेक उत्तमोत्तम रचनाएँ हैं, उनसे कदाचित् हजरत आजाद परिचित नहीं थे। —अनुवादक

स्वीकृत हुई। उनका मान-सम्मान भी बहुत बढ़ाया गया। लेखों के ढंग से ऐसा जान पड़ता है कि खानखानाँ अपने लड़कों आदि के साथ जितना प्रेम रखता था, उतना ही उनकी शिक्षा-दीक्षा आदि पर भी ध्यान रखता था।

मिरजा ईरज सब लड़कों में बड़ा था। इसकी शिक्षा-दीक्षा आदि के सम्बन्ध में कुछ ज्ञात नहीं है। जिन दिनों खानखानाँ और अब्बुलफ़जल में बहुत अधिक प्रेम था, उन दिनों अब्बुल-फजल ने खानखानाँ के नाम एक पत्र भेजा था। उसमें वे लिखते हैं कि दरबार में ईरज को भेजने की क्या आवश्यकता है? तुम समझते हो कि इससे उसके धार्मिक विचार और विश्वास में सुधार होगा? पर यह आशा व्यर्थ है।

जो लोग शेख पर बे-दीन या धर्म-भ्रष्ट होने का अभियोग लगाते हैं, वे उसके इन शब्दों को देखें, और इस बात पर विचार करें कि उसके मन में दरबार की ओर से इन विषयों में क्या विचार थे जो उसकी कलम से ये वाक्य निकले थे।

अकबर के राज्यारोहण के ४० वें वर्ष खानखानाँ दक्खिन में था। उस समय ईरज भी उसके साथ था। अम्बर हब्शी सेना लेकर तिलंगाने को मारता हुआ चपरे आया। अमीरों ने खानखानाँ के पास लगातार पत्र भेजकर उससे सहायता के लिए सेना माँगी। खानखानाँ ने ईरज को भेजा। वहाँ बहुत मारके की लड़ाई हुई। नवयुवक वीर ने ऐसी वीरता से तलवारें मारीं कि बाप-दादा का नाम रोशन हो गया। पुराने-पुराने सैनिक उसकी प्रशंसा करते थे। इसी तलवार की सिफारिश ने उसे दरबार से बहादुर की उपाधि दिलवाई थी।

सन् १०१२ हि० में जब आदिल शाह ने शाहजादा दानियाल के साथ अपनी कन्या का विवाह करना स्वीकृत किया, तब यह कुछ अमीरों के साथ अपने पाँच हजार सैनिकों को लिए हुए बरात में गया; और वहाँ से दुलहिन की पालकी के साथ दहेज की बहुत सी बहुमूल्य सामग्री लिए हुए आनन्द की शहनाइयाँ बजाता हुआ आया। जब बारात पास पहुँची, तब खानखानाँ चौदह हजार सवारों को साथ लिए नगाड़े बजाते हुए गए और बारात को वापस लेकर लश्कर में आए।

जहाँगीर के शासन काल में भी उसने और उसके दाराब तथा दूसरे भाइयों ने भी ऐसे-ऐसे काम कर दिखलाए कि उसके पिता का हृदय और दादा की आत्मा परम प्रसन्न और सन्तुष्ट होती थी। विशेषतः ईरज की वीरता, साहस और ऊँचा दिमाग देखकर सभी लोग लिखते हैं कि यह दूसरा खानखानाँ कहाँ से आ गया! जहाँगीर अपनी तुजुक में स्थान-स्थान पर उसकी बहुत प्रशंसा करता है; और ऐसा जान पड़ता है कि वह बहुत ही प्रसन्न हो-होकर वह प्रशंसा करता है और भविष्य के लिए आशा रखता है कि यह जान लड़ाकर बहुत से अच्छे-अच्छे काम करेगा।

जब एशिया के प्राचीन बादशाहों के सिद्धान्तों और नियमों आदि की आज-कल के नियमों और सिद्धान्तों के साथ तुलना करते हैं, तो बहुत से अन्तर देखने में आते हैं। पर विशेष रूप से दिखलाने के योग्य बात यह है कि वे लोग अपने सेवकों के गुण, सेवाएँ और सम्पन्नता आदि देखकर उसी प्रकार प्रसन्न होते थे, जिस प्रकार कोई जमींदार अपने उपजाऊ खेत को हरा-

[illegible] देखकर प्रसन्न होता है, या माली अपने लगाए हुए वृक्ष की छाया में बैठकर प्रसन्न होता है, या कोई स्वामी अपने घोड़ों, गौओं और बकरियों आदि को अच्छा या अधिक दूध देनेवाली देखकर प्रसन्न होता और उनके लिए अभिमान करता है। यह अलौकिक पदार्थ है जो भाग्यवान जान निछावर करनेवालों को प्राप्त होता है, और जिनकी हम लोगों को कदापि आशा नहीं हो सकती। इसका कारण क्या है ? कारण यही है कि वे जान निछावर करनेवाले अपने बादशाह के सामने जान लड़ाया करते थे। इसी लिए उन्हें उन बादशाहों तथा उसकी सन्तान से स्वयं अपने लिए ही नहीं, बल्कि अपनी सन्तान के लिए भी हजारों आशाएँ होती थीं। और हम ? हमारा बादशाह तो वह हाकिम है, जिसकी थोड़े ही दिनों बाद बदली हो जायगी या जो विलायत चला जायगा। फिर वह कौन और हम कौन !

सन् १०२० हि० में ईरज को जहाँगीर ने शाहनवाजखाँ की उपाधि दी। सन् १०२१ हि० में तीन हजारी जात, तीन हजारी मन्सब की उपाधि दी। सन् १०२४ हि० में उसने अम्बर पर किसी अच्छी विजय प्राप्त की, जिसकी हजारों प्रशंसाएँ और साधुवाद तलवार और कटार की जबान से भी निकले। और दाराब ने तो इस प्रकार जान लड़ाकर युद्ध किया कि वह ईर्ष्या की सीमा के भी उस पार पहुँच गया। सन् १०२६ हि० में उसे बहुत अच्छे-अच्छे घोड़ोंवाले बारह हजार बहादुर सवार प्रदान किए गए। उसने बालाघाट पर घोड़े उठाए। इसी सन् में इनकी कन्या का शाहजादा शाहजहान के साथ विवाह हुआ था।

सन् १०२७ हि० में इसे पंज-हजारी मन्सब मिला था